प्रकाशक
अध्यापक प्रकाशन मण्डल
१६१, गड़बड़झाला पार्क,
लखनऊ।

प्रथम संस्करण, १२००
मूल्य : तीन रुपया

मुद्रक
गौरीशंकर प्रेस
बनारस।

अपनी ओर से

महामानव गाधी और पं० नेहरू भारतवर्ष के उन महान नेताओं तथा मूर्तिमान आदर्शों के रूप मे माने जाते हैं, जिन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ-साथ मानव-जाति को शान्ति-दूत की तरह सत्य, अहिंसा और मानवता का दिव्य सन्देश सुनाया है। बड़े-बड़े संघर्ष मे दोनो ही व्यक्ति एक दूसरे के पूरक हो कार्य करते रहे, जैसे दोनो एक दूसरे के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हों। दोनो एक दूसरे के बिना अपूर्ण लगते थे। उन्ही के सफल नेतृत्व मे देश ने पराधीनता की अन्धकारमयी निशा से निकल कर स्वाधीनता-सूर्य की स्वर्णिम रश्मियों से जगमगाते हुए सुनहरे प्रभात के दर्शन किये।

परन्तु उन दोनो व्यक्तियों की मानवीय मान्यताओं और जीवन के प्रति दृष्टिकोण मे अन्तर था। यद्यपि दोनो व्यक्ति के एक ही महान लक्ष्य थे परन्तु उस तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न रास्ते थे। दोनो ही व्यक्तियो के विचारो मे असमानता और कार्यक्रम मे विषमता होते हुए भी उनमे अपूर्व सामंजस्य था। दोनो को ही कभी-कभी एक दूसरे के विचार अपरिचित से लगते थे तथा मतभेद की गरम हवा से झुलस कर दोनों ही तिलमिला उठते थे, लेकिन फिर भी दोनो ही के दिल एक दूसरे पर विश्वास करते थे। एक स्थान पर स्वयं नेहरू जी ने ही स्वीकार किया है "प्राय: प्रत्येक बात मे मेरा उनका मतभेद है। तो भी वे अनमोल हैं, मै उनका अनुसरण करता हूँ।" महात्मा गाधी ने एक बार कुछ विश्वास और गर्व से लिखा था "विचारो मे मतभेद होने के पश्चात् भी मै यह जानता हूँ कि जब मै न रहूँगा, तो वह मेरी ही भाषा बोलेगे।" सचमुच यद्यपि आज युग-पुरुष महामानव गाधी न रहे, किन्तु उनके व्यक्तित्व और आदर्श का मूर्तमान रूप नेहरू मे व्याप्त हो देश की रक्षा कर रहा है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी वे आज अहिंसा और सत्य की बुनियाद

लेकर, भ्रातृप्रेम और समानता के धरातल पर, सुख-शांति से परिपूर्ण महान भारत के निर्माण में, महात्मा गाधी के निदेशानुसार, रत है। पं० नेहरू के जीवन के साथ आज हम पैंतीस कोटि भारतीयों का भाग्य बँधा हुआ है। उनके जीवन की प्रत्येक साँस स्पन्दित हो, आज राष्ट्र के कण-कण को जीवन-दान दे रही है। उनके जीवन का प्रत्येक अंग हमारे लिए आराध्य बन गया है, और उनके इङ्गित मात्र पर उन्हीं के पद-चिह्नों का अनुसरण करता हुआ राष्ट्र का कारवाँ आज उन्नति की मंजिल तय कर रहा है।

महात्मा गाधी ने वर्षों पहले नेहरू जी के सम्बन्ध मे कहा था, "बहादुरी में उनसे बढ़ कर कोई नही है। देश-प्रेम मे उनसे बढ़ कर कौन हो सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि वे जल्दबाजी करनेवाले गरम मिजाज के हैं। वर्तमान समय में तो यह गुण है। यदि उनमे योद्धा की तीव्रता और उतावलापन है, तो साथ ही एक राजनीतिज्ञ की विलक्षण बुद्धि भी है।.....निःसंदेह वे ऐसे उग्र विचार के हैं, जो अपने चारों ओर के वातावरण से बहुत आगे सोचते हैं। किन्तु वे इतने विनम्र और व्यावहारिक भी हैं कि इतना पग नहीं बढ़ाते कि वैमनस्य पैदा हो जाये। वे स्फटिक के समान निर्मल हैं और उनकी सच्चाई सन्देह से परे है। वे निर्भय एवं अनिंद्य योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथो में सुरक्षित है।" सचमुच गाधी जी के राजनीतिक गणित मे नेहरू जी एक विशेष अंक थे।

१९४२ में स्वयं डा० पट्टाभि सीतारमैय्या ने पं नेहरु और महात्मा गाधी के बारे में लिखा था, "शारीरिक रचना, विश्वास और तर्क-विद्या मे एक दूसरे में पृथ्वी के ध्रुवों का सा अन्तर है।.. ....गाधी जी एक तत्वज्ञानी हैं, जब कि जवाहरलाल एक राजनीतिक और सासारिक पुरुष हैं। तो भी गाधी जी प्रेरणा हैं और जवाहरलाल साधन हैं।. . गाधी जी और जवाहरलाल गंगा-यमुना के संगम के समान हैं, एक अहिंसा के अपने निर्मल जल के साथ है और दूसरे मे रोष, क्रोध और आवेग का किंचित् मटमैलापन है। लेकिन दोनो ही दो धार की तरह थोडी देर तक

एक दूसरे से अलग-अलग चल कर एक हो जाते हैं, जिससे कि चौड़ाई और गहराई का ऊँचाई के साथ, विज्ञान का तर्क शास्त्र के साथ, भौतिकता का आध्यात्मिकता के साथ . ... और हिंसा का अहिंसा के साथ मिलाप हो जाता है।"

गांधी जी के एक विश्वस्त शिष्य और सहयोगी होने के कारण नेहरू जी ने अपनी असाधारण योग्यता से देश की राजनीति में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। भारत के लिए पं० नेहरू की सेवायें अपूर्व हैं। उनके विचार अपना पृथक् और महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय जनता उन विचारों की तरंगों में बहती हुई स्वर्णिम विहान का स्वप्न देख रही है।

गांधी जी के विपरीत नेहरू जी के विचारों की पृष्ठभूमि धार्मिक नहीं है। परन्तु उन्हीं की तरह नेहरू जी को भी उन धार्मिक मनुष्यों से घृणा है, जो समाज की आवश्यकताओं की उपेक्षा कर केवल अपनी ही मुक्ति में लगे रहते हैं। वे उन धार्मिक बंधनों तथा रूढ़ियों की बेड़ियों को झनझना कर तोड़ डालना चाहते हैं जो समाज में वर्ग और वर्ण-व्यवस्था को आश्रय देती है। नेहरू जी तथाकथित धर्म को अफीम मानते हैं जो व्यक्तियों में अन्धविश्वास, कट्टरता, साम्प्रदायिक धार्मिक मनोवृत्ति और असहायों के शोषण की शिक्षा देता है। वे मानवमात्र के लिए धर्म की परिभाषा बदलना चाहते हैं तथा उसे संसार में प्रेम, साहचर्य और सहायता का प्रतीक बनाना चाहते हैं। वे फ्रेन्च दार्शनिक रोम्यों रोला की धर्म सम्बन्धी निम्न परिभाषा से कदाचित् अत्यन्त प्रभावित हुए हैं, "सत्य की खोज में समस्त कष्ट उठा कर और एकचित्त होकर ईमानदारी के साथ आत्मत्याग करने के लिए तैयार रहो, मानव-प्रयत्न के एक अंतिम उद्देश्य में विश्वास रखो, जो वर्तमान समाज और समस्त मानव जाति के जीवन से भी अधिक ऊँचा है।"

नेहरू जी पाश्चात्य संस्कृति और रहन-सहन में स्थित अच्छे तत्वों से भी प्रभावित है, और वे समझते हैं कि यदि भारत विकास और उन्नति की

दौड़ में आगे बढ़ना चाहता है तो उसे पाश्चात्य संस्कृति के उच्च गुणों को ग्रहण करना होगा। वे नागरिक जीवन को उन्नत करना चाहते हैं तथा किसान और मजदूरों की अवस्था में परिवर्तन करना चाहते हैं। उन्हें अधनंगे और अधभूखे कृषकों की दैन्य अवस्था से अरुचि है। वे इन शोषित-शापित मानवों को पशु की तरह जीवन व्यतीत करने से मुक्त करना चाहते हैं।

नेहरू जी औद्योगीकरण के पक्ष में हैं और वे सोचते हैं कि आज के मशीन के युग में देश की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन मशीनों द्वारा ही हो सकता है। परन्तु भारत के यान्त्रिक विकास के द्वारा, उनका उद्देश्य किसी अन्य निर्बल राष्ट्र पर, पश्चिम के बड़े राष्ट्रों की भाँति, अपना आर्थिक प्रभुत्व (Economic Imperialism) स्थापित करना नहीं है। वे भारत के साथ ही सभी राष्ट्रों को सुखी और समृद्धिशाली देखना चाहते हैं। वे गरीबी को अभिशाप समझते हैं, तथा सोचते हैं, कि व्यक्ति के मान-वांछित गुणों का विकास इस स्थिति में कदापि नहीं हो सकता। उनके अनुसार किसानों को अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अवकाश के समय चरखे चलाना तथा अन्य उद्योग-धन्धे करना चाहिए।

नेहरू जी कार्ल मार्क्स के साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुयायी अवश्य हैं किन्तु लाल रूस के बौद्धिक दास नहीं। वे मानवीय प्रवृत्तियों के पूर्ण विकास के लिए सभी व्यक्तियों में समता आवश्यक समझते हैं। उनके अनुसार जिन लोगों को केवल पेट भरने के लिए परिश्रम करके केवल दो पैसा कमाने की चिन्ता है, वे बेचारे नैतिक सुधार, राष्ट्रप्रेम, साहित्य, कला और सौंदर्य की बातों को कहाँ तक समझ कर उनमें योग दे सकते हैं? वे उन व्यक्तियों की ओर करुण दृष्टि से देखते हैं जो गरीबी और रोग के शिकार हैं, जिनकी गर्दन और पीठ झुकी हुई है और आत्मा कुचली हुई। वे उनकी उन्नति के लिए अपने को जिम्मेदार समझते हैं अतः उन्हें उनकी चिन्ता है। वे जानते हैं कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन होने पर व्यक्तियों के रहन-सहन में स्वयं परिवर्तन होने लगेगा

और तब व्यक्तियो को आत्मोन्नति का अवसर मिलेगा। आज के वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति के युग मे किसी देश में गरीबी को रहने का कोई अधिकार नहीं है। वे समझते हैं कि यदि किसी राष्ट्र मे इस कोढ़ के कीटाणुओं ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है तो इसके लिये दोषी उस देश की जनता तथा जन-नेता हैं।

नेहरू जी धार्मिक आधार पर बने हुए, भारत के सम्पूर्ण पोंगा पंथी सामाजिक ढाँचे के विरोधी हैं तथा उसे उत्साहपूर्वक नये प्रगतिशील आधार पर निर्मित करना चाहते हैं। वे वर्ण-व्यवस्था भंग कर दलित अछूतो को सवर्णों की श्रेणी में बैठाना चाहते हैं। वे उन्हे वह सभी सुविधाये प्रदान करना चाहते है जिन्हें रूढ़िवादी धर्म ने सिर्फ सवर्णों को ही सौंप दिया है। वे पशु सा जीवन व्यतीत करने वाले दलित वर्ग को समता के सिद्धान्त के अनुसार पुनः मानव की श्रेणी मे खडा करना चाहते हैं। वे जानते हैं कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम उनकी आर्थिक स्थिति सुधार कर उनमें शिक्षा का प्रसार करना आवश्यक है।

राजाओं, पूँजीपतियो और जमींदारों से नेहरू जी की कभी भी सहानुभूति नहीं थी। नेहरू जी ने अपनी एक पुस्तक म लिखा है, "राजा, नवाब और जमींदार आदि 'मध्यकालीन युग की स्वेच्छाचारिता' के यादगार हैं, जो अपने निजी ऐश-आराम के लिए दीन प्रजा का धन पानी की तरह बहाते हैं। उन्हे अपनी प्रजा के सुख-दुख की कोई भी चिन्ता नहीं है।" नेहरू जी का यह विश्वास था कि यह वर्ग कभी भी सुधारा नहीं जा सकता अतः इसका अन्त भारत की उन्नति के लिए आवश्यक है। वे स्वतंत्र भारत मे स्वेच्छाचारी राजाओं तथा जमींदारो के लिए कोई भी स्थान नही रखना चाहते थे। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् उन्होंने अपने निश्चयानुसार इस दिशा मे कदम बढ़ाया तथा भारत के इन देशी राज्यों के स्वतंत्र अस्तित्व को भारतीय राष्ट्र मे विलीन कर उन्हें नौ प्रान्तो का रूप दे दिया। इसी प्रकार उनके प्रयत्न से भारतीय धारासभा मे

जमीदारी-उन्मूलन-बिल भी पास हो गया तथा इस दिशा मे अनेक प्रान्तो मे काफी कार्य भी हो चुका है, और मुफ्तखोर जमीदारों का अनेक स्थानो पर पूर्णतः अन्त भी हो चुका है। पूँजीवाद का अन्त करने के लिए कोई सुदृढ़ तथा परिवर्तनकारी कदम अभी नेहरू-सरकार की ओर से नही लिया गया है परन्तु इस दिशा में भी वे प्रयत्नशील है। राष्ट्र के पूर्ण विकसित हो जाने के पश्चात् सभी बड़े उद्योग-धन्धो का राष्ट्रीयकरण कर लेने की घोषणा सरकार की वाणिज्य नीति में हो ही चुकी है।

यद्यपि नेहरू जी गाधी जी के अहिंसा के सिद्धान्त को मानते हैं किन्तु इसका यह कदापि तात्पर्य नही कि वे राष्ट्रीय हित को सकट मे देख कर भी उसका राग अलापते रहेगे। नेहरू जी की अहिंसा की नीति एक सिद्धान्त है जिसका उद्देश्य है शान्ति, तथा अकारण ही दूसरो पर अपनी शक्ति और सत्ता का प्रयोग न करना। परन्तु यदि आवश्यकता होगी और परिस्थितियाँ बाध्य करेगी तो वे अपने देश और जनता की रक्षा के लिए तलवार उठाने मे कदापि न हिचकेंगे। जैसा कि वे लुटेरे आततायी आक्रमणकारियो के विरुद्ध काश्मीर में, वहाँ की जनता की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कर रहे है, और हैदराबाद मे सफलतापूर्वक कर चुके है। वे जानते हैं कि साम्राज्यवादी शोषण और आक्रमण के लिए उठी तलवार का जवाब तलवार से ही देना होगा, तथा साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की जर्जर भित्तियो को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से महत्वाकांक्षी पश्चिम के उठे कदमो को, विश्व-कल्याण के लिए थोड़ा-थोड़ा छोटा कर देना होगा।

१६।४६ ठठेरी बाजार, काशी। } प्रमोद कुमार अग्रवाल

धन्यवाद-प्रकाशन

सर्वप्रथम मैं श्री सुधाकर पाण्डेय के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिनके अदम्य परिश्रम के फलस्वरूप यह पुस्तक इतनी शीघ्रता के साथ मुद्रित हो सकी। पाठकों के समक्ष इस रूप मे पुस्तक उपस्थित होने का सारा श्रेय श्री कृष्णचन्द्र बेरी को है, अतः वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। अंत मे मै उन लेखकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी बहुमूल्य रचना से मैंने इस पुस्तक के निर्माण मे सहायता ली। उन सभी मित्रों तथा सहयोगियों को भी, जिन्होंने किसी न किसी रूप मे अपने श्रम अथवा प्रोत्साहन से इस कार्य मे मुझे सहायता दी है, मै धन्यवाद देता हूँ।

अत्यधिक शीघ्रता के कारण मुद्रण मे त्रुटियाँ रह गयी हैं, अतः पाठको से मै क्षमा-प्रार्थी हूँ। पुस्तक के सम्बन्ध मे आपके विचारों तथा सुझावों का मै स्वागत करूँगा।

—लेखक

समर्पण

उसी महान् आत्मा को, जिसने
समर्पण की मेरी किञ्चित्
आकाङ्क्षा को निर्ममता
पूर्वक ठुकरा
दिया।

अकिञ्चन—
प्रमोद

सूचीपत्र

ये हैं हमारे राष्ट्रनायक जवाहरलाल नेहरू

जनतंत्रात्मक महान् भारत के प्रथम प्रधान मंत्री। एकहरा किन्तु भरा हुआ बदन, उन्नत ललाट पर खल्वाट खोपड़ी और चेहरे पर एक अपूर्व हँसता हुआ पश्चिम सागर की ओर झुकते हुए सांध्य रवि सा तेज। आकृति मे स्पष्ट काश्मीरी या योरोपीय। अब भी युवा, भावुक, विनोदी, उत्साही, सुदर्शन और फक्कड़!

एक!

* * *

स्वभाव फुर्तीला, किन्तु थोड़ा सहसाकर्मी मिलनसारी के साथ ही साथ झुँझला पड़ने की आदत। थोड़े जिद्दी· तब तक किसी की बात न मानेंगे जब तक कोई उनसे भी अधिक झुँझलाकर वह बात उन्हें मनवा न दे। जब हँसते हैं तो बिल्कुल मासूम बच्चों की तरह, प्रधान मंत्री की तरह नहीं, और बिल्कुल जी खोलकर।

दो!!

* * *

वेश-भूषा तीन प्रकार की सफेद गांधी टोपी, खादी का कुर्ता, धोती और सदरी। विदेश में जाते हैं तो सूट और हेट पहन लेते हैं।

तीन!!!

* * *

कट्टर देशभक्त, पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के समर्थक। भारत-विरोधी बात से चिढ़; जीवन के प्रत्येक पहलू में मनोविज्ञान का पुट। अनु-

शासन और नियंत्रण के पुजारी और निश्चित समय पर निश्चित काम; कुछ जल्द बाज। देश-द्रोहियों की सूरत से नफरत। जो कहेंगे वही करेंगे। व्यर्थ की बात सुनते ही झुँझला पड़ेंगे। जरा सा मन के विरुद्ध काम होने पर सब को डाँट देंगे, परन्तु कुछ क्षण पश्चात् ही उससे क्षमा भी माँगेंगे। तर्क में गांधी जी से नहीं चली नहीं तो सभी को दबा दिया, सदैव।

चार !

* * *

पत्थर से कठोर और नवजात पुष्प से भी कोमल। क्रोध की मूर्ति, पर करुणा के अवतार। धनी कुल में उत्पन्न होकर निर्धन से निर्धन और दलित से दलित से भी भाईचारा जोड़नेवाले, तथा उनके दिल की दशा समझनेवाले। मानवता के पुजारी पर दानवता के कट्टर शत्रु। रहस्यमय, किन्तु स्पष्टवादी। उच्चश्रेणी के आत्माभिमानी, किन्तु देश और पीड़ितों के लिए अपमान सहनेवाले। हृदय में दो विरोधी भावों और विचारों में सदा संघर्ष तथा अन्तर्द्वन्द्व, किन्तु उसे प्रकट करने में बिल्कुल स्पष्ट।

पाँच !!

* * *

साम्राज्यवाद और सम्प्रदायवाद के कट्टर शत्रु, किन्तु समाजवाद के समर्थक। अपनी मौलिकता के लिए प्रसिद्ध, पर बहुमत के आगे नत-मस्तक। कठोर शासक किन्तु प्रजातंत्र के पुजारी।

छः !!!

* * *

विधुर। दो बहिनें और भाजियाँ। एक मात्र पुत्री और दो नन्हे दौहित्र का छोटा सा परिवार। राजनीतिक और देश सम्बन्धी कार्यों से जब अवकाश मिलता है तब कभी-कभी छोटे-छोटे दौहित्रों से खेल लेते

हैं—कभी कंधे पर चढ़ाते हैं, और कभी एक को सवार बनाकर स्वयं घोड़ा बन जाते हैं।—इतने महान् व्यक्ति का यही छोटा सा पारिवारिक जीवन है।

सात !

* * *

उनसे बात करना क्या उनके दर्शन मात्र से हृदय प्रसन्न हो जाता है। वे कभी-कभी भूल से जाते हैं कि उनपर इतने बड़े देश का इतना महान् उत्तरदायित्व है। उस समय वे बच्चों से भी सरल मालूम होते हैं। उनकी मुस्कुराहट से बरबस उनकी ओर प्रत्येक व्यक्ति आकर्षित हो जाता है।

आठ !!

* * *

लेखक हैं और कविताओं से प्रेम करते हैं। अंग्रेजी साहित्याकाश के चमकते हुए नक्षत्र हैं। कई महान् ग्रंथों के प्रणेता। उनकी लेखनी में ओज है, और है विचारों का अन्तर्द्वन्द्व। उनके विषय में मैडम च्याङ्काई शेक ने लिखा है कि जब उनका राजनीतिक कार्य समाप्त होगा तो वे साहित्यिक की भाँति जीवित रहेंगे।

नौ !!!

* * *

पक्षियों, फूलों और पर्वतों, झरनों और हिम प्रदेशों से विशेष प्रेम, परन्तु अपने प्रिय स्थानों को देखने का अवकाश नहीं है। कभी-कभी उदास और अंतस की गहराइयों का अनुभव करने वाले।

दस !

* * *

स्त्रियाँ आकृति पर विशेष आकृष्ट होती हैं; क्योंकि उनके रूप के अलावा उनकी हँसती हुई आँखों में एक अजीब आकर्षण है। कोई-कोई

प्रगल्भा तो मुस्कराकर यहाँ तक कहती है कि कमला दीदी की मृत्यु के पश्चात् इतने दिनो तक अकेले रहने का उन्हे कोई 'हक' नहीं था।

ग्यारह !!

*   *   *

आने वाले युग उनके त्याग की कहानियाँ अपने बच्चों को सुनाकर उन्हे राष्ट्र-प्रेम के लिए बावला बनाते रहेंगे। देश के इतिहास मे उनका नाम तब तक स्वर्ण अक्षरों मे लिखा रहगा, जब तक भारत का एक बच्चा भी जीवित रहेगा।

बारह !!!

*   *   *

———

वंश-परिचय

अठारहवीं शताब्दीके आरम्भ मे काश्मीर की सुन्दर, शस्य श्यामला तलहटी मे उन अभागों की बस्ती थी जो प्रकृति की परिपूर्ण श्री पाकर भी सैकड़ों वर्षों से धैर्यपूर्वक केवल दुसह दारिद्र मे पलने के आदी हो चुके थे, और जिनमे भावी उन्नति की कभी एक किरण भी नहीं दिखलायी पड़ी। धरती के उस एकान्त कोने के उन अपढ़ पर निश्छल परिवारो में कुछ ऐसे ब्राह्मण परिवार भी थे जो अपनी ज्ञान-गरिमा से सम्पूर्ण काश्मीर में प्रसिद्ध थे। उन्हीं प्रतिष्ठित परिवारों मे से एक कौल वंश भी था। जीवन की अलभ्य आवश्यकताओं की कड़ी चोट से आक्रान्त इस काश्मीरी समाज के कुछ परिवारों ने अपने दिल पर पत्थर रखकर साहसपूर्वक अपना सुन्दर, पर निर्धन देश छोड़ कर समतल भूमि पर जीविका की खोज के लिए उतर आये। यह छोटा सा प्रवासी समाज अपनी आदि भूमि, अपने शारीरिक सौन्दर्य और अपनी कुशाग्र बुद्धि पर आज भी उचित गर्व करता है। यद्यपि पं० नेहरू के पूर्वज कौल वंशियों को अपनी जन्मस्थली से काफी स्नेह था और वे साधारण ऐश्वर्य की लालसा मे पड़ कर अन्य लोगों की भाँति अपने प्रदेश को छोड़ने के लिए प्रस्तुत न थे; किन्तु नियति को यह अभीष्ट न था। उसे तो उनकी आगत संन्तानों से राष्ट्र का भाग्य संचालन कराना था।

१८ शताब्दी के आरम्भ होते होते मुगल सल्तनत का पूर्ण पतन हो चुका था। मुगल औलादों के रक्त ठंडे पड़ चुके थे। विलास की आँधी में यद्यपि वे शौर्य और कर्तव्य का मार्ग भूल चुके थे फिर भी परम्परागत

संस्कारों से प्राप्त मानव-रत्न को परखने की सहज बुद्धि अभी उन्होंने खोयी न थी। औरंगजेब की सल्तनत का नाम मात्र का वारिस फर्रुखसियर जब काश्मीर गया तब उसकी दृष्टि कौल वंश के तत्कालीन कुलपति राज-कौल पर पड़ी। वह उनका संस्कृत और फारसी का ज्ञान देख कर मुग्ध हो गया। बादशाह के प्रस्ताव पर राजकौल ने कुछ तो कुतूहलवश और कुछ महत्वाकांक्षा के वश होकर उनके साथ दिल्ली चलना स्वीकार कर लिया।

दिल्ली आगमन के पश्चात् बादशाह ने अपने स्नेहभाजक राजकौल के निवास के लिए एक भवन तथा कुछ जागीर देकर दिल्ली दरबार में सम्मानित किया। मकान नहर के किनारे होने से स्वभावतः परिवारवाले 'नेहरू' शब्द से सम्बोधित किये जाने लगे। यहाँ तक कि 'कौल' शब्द के अंत में 'नेहरू' लगाकर अब उन्हे 'कौल-नेहरू' कहा जाने लगा, परन्तु कालान्तर पश्चात् 'कौल' शब्द लोप गया और सिर्फ 'नेहरू' ही रह गया। उसी प्राचीन कौल वंश में हमारे राष्ट्र नायक जवाहरलाल नेहरू का १४ नवम्बर, सन् १८८६ को जन्म हुआ!

जमाने की तेज रफ्तार के साथ-साथ राजनीतिक उथल-पुथल का युग आरम्भ हुआ फलस्वरूप नेहरू परिवार के कौटुम्बिक वैभव-सूर्य का अवसान हो गया और सम्पूर्ण जागीर तहस-नहस हो गयी। जवाहरलालजी के प्रपितामह श्री लक्ष्मीनारायण नेहरू दिल्ली बादशाह के क्षयग्रस्त, नाम मात्र के दरबार में कम्पनी सरकार की ओर से पहले वकील नियुक्त हुए। लक्ष्मीनारायण जी के पुत्र तथा जवाहरलाल जी के पितामह पं० गंगाधर नेहरू गदर के कुछ वर्ष पूर्व तक दिल्ली नगर के कोतवाल थे। परन्तु अकाल ही ३४ वर्ष की अल्पायु में, सन् १८६१ में उनकी मृत्यु हो गयी।

सन् ५७ के विद्रोह के पश्चात् मुगल साम्राज्य ने अंग्रेजों से अंतिम बार लोहा लेने के पश्चात् दम तोड़ दिया! जो लोग उन लोगों के प्रभुत्व से चिढ़ते थे उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया इस प्रकार अंग्रेजों को अपना प्रभुत्व स्थापित करने में पर्याप्त सहायता मिली। मुगल दरबार के नष्ट हो

जाने के पश्चात् नेहरू-परिवार का दिल्ली से सम्बन्ध टूट गया। जागीर के साथ साथ वंश के जरूरी कागज-पत्र और दस्तावेज आदि भी नष्ट हो गये, और इस तरह अपना सब कुछ—सम्मान और वैभव—खो कर हत-प्रभ नेहरू परिवार ने आगरे की ओर प्रस्थान कर दिया। अंग्रेजों के बढ़ते हुए साम्राज्य तथा चतुर्दिक सफलता ने उनकी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति कितनी निरंकुश तथा निर्दय बना दी थी उसका चित्रण स्वयं जवाहरलाल जी ने अपनी जीवन-गाथा में अपने ही परिवार पर घटित एक दुर्घटना से इस प्रकार दिया है। "तब मेरे पिताजी का जन्म नहीं हुआ था. लेकिन मेरे दो चाचा जवान थे और कुछ अंग्रेजी जानते थे। उनके इस अंग्रेजी जानने की बदौलत मेरे छोटे चाचा और परिवार के कुछ दूसरे लोग एक बुरी और अचानक मौत से बच पाये। हमारे परिवार के कुछ लोगो के साथ वे दिल्ली से कही जा रहे थे, उनके साथ उनकी एक छोटी बहन भी थी, जिसका रूप रंग गोरा और बहुत खूबसूरत था जैसा कि अक्सर काश्मीरी बच्चों का हुआ करता है। इत्तिफाक से कुछ अंग्रेज सिपाही उन्हे रास्ते में मिल गये। उन्हे शक हुआ कि हो-न-हो यह लडकी किसी अंग्रेज की हो और ये लोग इसे भगाये लिए जा रहे हैं। उन दिनों सरसरी तौर पर बिना मुकदमा किये सजा ठोंक देना मामूली बात थी। इस-लिए मेरे चाचा तथा परिवार के दूसरे लोग किसी नजदीकी पेड पर जरूर फाँसी दे दिये गये होते; मगर खुशकिस्मती से मेरे चाचा के अंग्रेजी ज्ञान ने मदद की, जिससे इस फैसले मे कुछ देरी हुई। इतने में उधर से एक शख्स गुजरा, जो मेरे चाचा वगैरह को जानता था, उसने उनकी तथा परिवार के दूसरे लोगों की जान बचायी।"

पं० गंगाधर नेहरू की मृत्यु के तीन मास पश्चात्, आगरे मे ६ मई १८६१ को पं० मोतीलाल नेहरू का जन्म हुआ। ठीक उसी दिन, उसी महीने तथा उसी वर्ष महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भी जन्म हुआ था। वास्तव मे यह एक मजेदार और अजीब संयोग है। कौन जानता था कि पिता के स्नेह और आश्रय से वंचित बालक मोतीलाल वंश की मर्यादा को

उन्नति के शिखर पर पहुँचायेगा; और भारत के भाग्य विधायक के पिता के नाते उसका नाम विश्व के इतिहास मे स्वर्णाक्षरों से लिखा जायेगा।

पितामह की मृत्यु के पश्चात् परिवार के पोषण का भार पं० जवाहर लाल के दोनों चाचाओं, श्री वंशीधर तथा श्री नंदलाल नेहरू पर आ पड़ा। श्री वंशीधर अंग्रेज सरकार के न्याय विभाग में नौकर थे; और नंदलाल राजपूताना मे खेतड़ी राज्य के दीवान। परन्तु १० वर्ष पश्चात् उन्होंने पद त्याग कर कानून का अध्ययन आरम्भ किया तत्पश्चात् आगरे में ही वकालत आरम्भ की। इन्हीं व्यक्तियों की स्नेह पूर्ण छत्रच्छाया में बालक मोतीलाल का लालन-पालन हुआ। माता और भाइयों के अनन्य प्रेम से उन्हें कभी कोई अभाव न हुआ तथा उनकी उच्च शिक्षा का भी पूर्ण ध्यान रखा गया। मोतीलाल जी की शिक्षा का आरम्भ अरबी और फारसी मे हुआ। उनकी अंग्रेजी की शिक्षा १२-१३ साल की उम्र के पश्चात् आरम्भ हुई। कालेज मे उनका मन पढ़ने में कम तथा खेल-कूद, धीगा-कुश्ती में अधिक लगता था। कालेज के प्रोफेसर उनकी इस 'स्पिरिट' को पसन्द करते थे।

इसी बीच हाईकोर्ट का स्थानान्तर प्रयाग हो गया। फलस्वरूप नेहरू परिवार भी आगरे से प्रयाग चला आया। कुछ ही दिन पश्चात् पं०नंदलाल की वकालत चल निकली और परिवार पहले से अधिक सम्पन्न हो गया। अब उनकी गिनती प्रयाग के बड़े-बड़े वकीलों मे होने लगी थी। मोतीलाल के अध्ययन का भी क्रम उसी प्रकार चलता रहा; परन्तु बी० ए० मे एक परचा खराब हो जाने के फल स्वरूप वे अन्य परचों को हल करने के लिए परीक्षा भवन मे उपस्थित नहीं हुए। बाद मे उन्हें इस कार्य के लिए अपने अध्यापकों की ताड़ना भी सहनी पड़ी थी। अंत में वे बी० ए० करने की फिक्र छोड़कर वे हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा मे बैठे और ससम्मान सर्वप्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुए। उन्होंने कानपुर में ही परिश्रम के साथ प्रैक्टिस आरम्भ किया। अध्यवसाय और लगन से उनकी वकालत चमक उठी। ३ साल पश्चात् उन्होंने प्रयाग मे

प्रैक्टिस करना आरम्भ कर दिया। इसी बीच उनके बड़े भाई पं० नन्दलालजी का स्वर्गवास होगया। पं० मोतीलालजी पर इसका जबरदस्त धक्का लगा। वह उनका भाई ही नहीं वरन पिता की तरह सम्मान करते थे। परिवार का सम्पूर्ण भार उनके तरुण कंधों पर आ पड़ा। सचमुच व्यक्ति के चरित्र की दृढ़ता, उसकी महानता, कठिनाइयों की प्रज्जवलित वह्नि मे परिपूर्ण तप कर ही कचन सी निखरती है, और फिर भौतिक जगत के कालकूट उस नीलकंठ पर अपनी विजय-पताका फहराने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः कर्मठ पुरुष पं० मोतीलाल इससे कब विचलित होने वाले थे! थोड़े ही दिनों के परिश्रम से उन्हे अपने बड़े भाई के सभी मुकदमे मिल गये, तथा उनमें यथा योग्य सफलता प्राप्त करने पर उनकी वकालत चमक निकली और वे प्रयाग के प्रमुख ऐडवोकेटों मे गिने जाने लगे। युवावस्था में ही यश के साथ ही धन का भी अच्छा आगमन हुआ। प्रयाग में उस समय कई अच्छे वकील थे जिनमे मोतीलालजी के अलावा सर सुन्दरलाल, सतीश बनर्जी, आलस्टन तथा सर सप्रू प्रमुख थे। मोतीलाल अपने प्रतिद्वन्दी सर सुन्दरलाल की भाँति कानून के विशारद नही थे; परन्तु उनका व्यक्तित्व, उनकी अद्‌भुत मेधा शक्ति और पेंचीदे मामले को आसानी से समझने और सुलझाने की शक्ति ने उन्हे देश के प्रमुख वकीलों का स्थान दे दिया था।

उन दिनों स्वभावतः एक सफल वकील पाश्चात्य रहन-सहन की कृत्रिमता को अपना लेता था। भारत पर इगलैंड ने सिर्फ शासकीय ही नहीं वरन पूर्ण सामाजिक आधिपत्य भी स्थापित कर लिया था, क्योंकि भारत के रुढिवादी जीवन और विचार मे भी पाश्चात्य रीति ने घर कर लिया था। भारतीयो में एक नये समाज का जन्म हो रहा था, जिसके सदस्य संस्कृति के लिए पश्चिम का मुँह जोहते थे, और अपने से कम ऐश्वर्यशाला और भाग्यवान बंधुओं से क्रमशः अलग होते जा रहे थे। यह समाज शासक वर्ग के रहन-सहन की नकल करता था, क्योंकि शिक्षा और संस्कृति का मापदंड यह हो गया था कि कौन कितनी अच्छी

अंग्रेजी और किस हद तक अंग्रेजी लहजे में बोल सकता है। पं० मोती-लाल भी प्रारम्भ मे इस विपाक्त वातावरण के पंजे से न बच सके और वैभव के साथ ही साथ वे पाश्चात्य रहन-सहन और ठाठ की ओर पूर्णतः मुखाकृत हुए।

कांग्रेस उन दिनों मध्यम श्रेणी के अंग्रेजी पढ़े लिखे कुछ लोगों की संस्था थी। प्रारम्भ मे उसकी ओर मोतीलालजी का ध्यान अवश्य खिंचा, परन्तु कार्याधिक्य के कारण न तो वह उसकी ओर विशेष ध्यान ही दे सके न उनकी कार्यवाही मे पूर्ण रूप से भाग ही ले सके। साधारण अर्थ में वे राष्ट्रवादी अवश्य ही थे परन्तु अंग्रेजी संस्कृति के कद्रदाँ भी थे। जवाहर-लाल के शब्दों मे ही "प्रारम्भ मे उनका यह ख्याल था कि हमारे देशवासी ही नीचे गिर गये हैं और वे जिस हालत मे है बहुत कुछ उसी के लायक भी हैं। जो राजनैतिक नेता सिर्फ जबानी जमा खर्च किया करते थे उनसे उनको मन-ही-मन सख्त नफरत थी, यद्यपि वे नहीं जानते थे कि उससे ज्यादा वे कर ही क्या सकते हैं? हाँ! एक और ख्याल भी उनके दिमाग मे उस समय था जो कि उनकी कामयाबी के नशे से पैदा हुआ था; वह यह कि जो राजनीति मे पड़े हैं, उनमे अधिकतर-सब नहो—वे लोग हैं, जो अपने जीवन में नाकामयाब साबित हुए हैं।" पाश्चात्य संस्कृति की अनन्य भक्ति, उपर्युक्त विचारधारा तथा सफलता के नशे ने उस समय उन्हें इस प्रकार के राजनैतिक वातावरण से अलग ही रखा परन्तु भविष्य और भारत-माता ने अपने क्रोड़ के इस रत्न को अपनी दैन्य स्थिति से अधिक दिन तक अनभिज्ञ नहीं रखा।

बचपन और शिक्षा

श्री मोतीलालजी के सम्पन्न परिवार में १४ नवम्बर, सन् १८८९ ई० को जवाहरलाल ऐसे पुत्र रत्न का जन्म हुआ। छुटपन में ही वे हमजोली भाई-बहनों अथवा मित्रों के धमा-चौकड़ी पूर्ण स्नेह से वंचित रहे। दुनिया के हर मासूम बच्चे अपने माँ-बाप के दुलारे होते हैं, फिर वे तो घर की रोशनी, मोतीलालजी के एक मात्र पुत्र थे, उनके लाड प्यार का क्या कहना। परिवार के उस जीवन-सर्वस्व का नाम माता-पिता ने बचपन में प्यार से नन्हा रखा। नन्हा की तोतली बोली सुनकर घरवालों की हृदय-कली उल्लास से खिल जाती। लगता सूने जीवन में बसंत की प्रभाती बोल उठी हो।

माँ की गोद में खेलते अपने नन्हे-नन्हे भाई और बहनों को देखने की जवाहर की बाल-इच्छा ११ वर्ष की उम्र तक पूरी न हुई। कृष्णा और विजयालक्ष्मी जी भाई से काफी छोटी थीं; वे उसके बाल-हृदय की इच्छा,—हम उम्र साथी के साथ खेलने की इच्छा—को पूर्ण न कर सकती थी। भाग्य की मार, उन्हें कोई स्कूल का साथी भी न मिला, क्योंकि वे अन्य बच्चों की तरह किसी पाठशाला या किंडर गार्टन में पढ़ने के लिए नहीं बैठाये गये। उनकी प्रारम्भिक पढ़ाई अंग्रेज और हिन्दोस्तानी मास्टरों के अन्तर्गत हुई। उनके सभी चचेरे भाई स्कूल की उच्च कक्षाओं या विश्वविद्यालयों में पढ़ते थे। वे उनसे उम्र में काफी बड़े थे। उनकी नजरों में बालक जवाहर भले प्यार करने योग्य हो परन्तु उनकी बात चीत, कामों, तथा खेल-कूद में शरीक होने लायक नहीं था। बालक जवाहर प्रायः अपने चचेरे भाइयों की बात ध्यान पूर्वक सुनता

यद्यपि सभी बातें उसकी नन्ही सी बुद्धि में घुस न पाती थी। अक्सर उसके भाई अंग्रेजों की निरंकुशता तथा उनका हिन्दुस्तानियों के साथ अपमान पूर्ण बर्बर, व्यवहार की बात करते और इसे 'हरगिज बर्दास्त न होने वाली बात' कहकर अपने दिल का गुब्बार निकालते। यह वह युग था जब रेलगाड़ियों में अंग्रेजों के लिए डिब्बे और सीटें अलग होती थी जिनमे कोई हिन्दुस्तानी चढ़ नहीं सकता था। अंग्रेजों को एक प्रकार से 'सात खून तक' माफ थे। भाइयों की सुना सुनी बालक नेहरू का मासूम दिल, मन ही मन ऐसी सत्ता के प्रति बगावत करता रहता, और भविष्य मे उसे उखाड़ फेकने के सपने हर रोज देखा करता। परंतु तब भी उसे अंग्रेजों से व्यक्तिगत घृणा न थी और वह उन्हें इज्जत की निगाह से देखता।

घर में रोज शामको मोतीलाल जी के अंग्रेज और हिन्दुस्तानी मित्र आते। जिनके साथ मोतीलाल जी स्वच्छंद रूप से अट्टहास करते। बालक जवाहर को वे आदमी, उनकी बात और पिता की हँसी अजीब सी लगती। वह पर्दे की ओड में छिपा उनकी ओर कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा करता और जब कभी उसकी यह 'चोरी' पकड़ा जाती तो वह मासूम खिलौना मित्रों द्वारा जबरदस्ती पिता की गोद मे बैठा दिया जाता।

अबोध बालक नेहरू अपने पिता की बहुत इज्जत करता था परन्तु साथ ही उनसे डरता भी बहुत था। वह पिता की भाँति महान होने का, तथा नाम कमाने का मंसूबा शुरु से ही बाँधने लगा था। पं० मोतीलाल जी जब नौकरों पर बिगड़ते तब उनकी लाल आँख और क्रोधित मुखाकृति देखकर उसके तो देवता ही कूँच कर जाते थे। कभी कभी उसे पिता के इस व्यवहार पर मन ही मन क्रोध भी आता, परन्तु पिता की स्वच्छन्द हँसी पल भर बाद ही उसके इस रोष को दूर कर देती। जवाहर लाल ने स्वयं पिता के उग्र स्वभाव की एक विचित्र घटना वर्णित की है। नन्हें जवाहर की आयु करीब ५-६ वर्ष की रही होगी।

एक दिन उसने अपने पिता की मेज पर दो पैसे देखे। पता नहीं लालच वश अथवा साम्यवादी स्वाभाविक मनोवृत्ति से, बालक ने उनमें से एक, यह सोचते हुए कि पिता दो पैसों का क्या करेंगे, उठाकर अपनी जेब में डाल लिया। खासी तलाशी होने पर भी भयभीत बालक ने अपनी करनी के बारे में पिता को न बतलाया। भेद उनकी जेब में मिल गया: और उस नन्हें गुनहगार की खूब मरम्मत हुई। पिता के क्रोध से बचाने के लिए, दुनिया के कुल नादान बच्चों की तरह, माँ की अगाध ममता ने उन्हें भी अपने दूध भरे अंचल में छिपा कर विश्राम दिया: और अपने स्नेह-जल से सिंचित करती हुई कई दिन तक उस मार से दर्द करते सुकुमार बदन पर, क्रीम और मक्खन की मालिश करती रही।

बालक जवाहर का एक अन्य व्यक्ति से भी खास स्नेह था; और वे थे उसके पिता के मुंशी मुबारकअली। दुर्दिनों ने उन्हें घर-बार और सुख-शान्ति से अलग कर अनन्त दुख-सागर में ढकेल दिया था। उनका बालक जवाहर पर खासा स्नेह था। वे उसे अलिफ-लैला के किस्से प्रायः सुनाया करते थे। किन्तु उनकी बड़ी सी बढ़िया सफ़ेद दाढ़ी जवाहर की आँखों को उन काल्पनिक परीदेश की कहानियों से भी अधिक भली लगती, और स्वयं मौलवी साहब उसे पुरानी बादशाहियों के खजाने लगते।

धर्म के विषय में घर के अन्य पुरुष व्यक्तियों की तरह उन्हें भी विशेष दिलचस्पी न थी; यद्यपि उनके समारम्भ को वह [illegible] और कौतूहल की आँखों से देखा करते, और प्रायः घर की बूढ़ी औरतों के साथ उसमें भाग भी लेते। उनकी एक विधवा चाची कभी कभी उन्हें पौराणिक कथायें सुनाया करतीं जिन्हें चुपचाप बैठ कर वे बड़े चाव से सुना करते।

साल के त्योहारों की चहल-पहल और चमक-दमक में उन्हें बड़ा आनंद आता। परंतु उन सभी उत्सवों में एक ऐसा उत्सव भी था जिसमें वे विशेष दिलचस्पी लेते; और उत्सुकतापूर्ण हृदय से उसके

आगमन की प्रतीक्षा किया करते। यह विशेष उत्सव था उनके जन्म दिवस का वार्षिक समारोह। उस दिन के वे राजा होते. और सभी उन्हें हाँथों हाँथ उठाकर प्यार करते तथा कुछ न कुछ सौगात अवश्य देते। उनको कभी कभी झुंझलाहट होती और साथ ही दुख भी होता कि ऐसा अवसर साल मे एक ही बार क्यों आता है, और हर रोज उनका ऐसा ही स्वागत क्यों नहीं होता? उस समय उस अबोध बालक को क्या मालूम था कि हर आने वाली वर्षगाँठ बुढ़ापे की याद दिलाती है, और उस दिन जिन्दगी का एक अनमोल साल मौत की ओर चुपचाप झुक जाता है।

जब जवाहरलाल १० साल के थे तभी वह एक नये तथा काफी भव्य प्रासाद में आ गये थे। वह इमारत आनंद भवन के नाम से प्रयाग मे प्रसिद्ध थी—"जिस जगह पर यह प्रासाद बना है उसे बहुत ही पवित्र माना जाता है, क्योंकि हिंदू जनता का आम विश्वास है कि यही वह स्थान है जहाँ रामचंद्र जी के चौंदह वर्ष के बनवास से लौटने पर भरत जी से उनका मिलाप हुआ था। करीब ही भारद्वज आश्रम भी है।" (श्रीमती कृष्णा हठी सिंह) उस इमारत के बाग के तालाब मे अक्सर उनके पिता के चंद दोस्त शाम को नहाने आते। उनमे कभी-कभी सर तेज बहादुर सप्रू भी आया करते। वे तैरना नही जानते थे, अत. सीढ़ी पर, १५ इंच पानी म ही बैठ जाते, और कसम खाने को एक सीढ़ी भी नीचे नहीं उतरते थे। यदि कोई उन्हे आगे खींचनें की कोशिश करता तो वे जोर से चिल्ला पडते। बालक जवाहर को उन नहाने वालों के झुण्ड में बडा मजा आता, और जो तैरना नहीं जानते थे उनमे से किसी को आगे धक्का देकर या पीछे खीच कर डराने में इसे बडा आनंद आता। इस प्रकार आनंद भवन मे काफी चहल पहल रहती। कालातर पश्चात जब महात्मा गाधी के नेतृत्व मे पं० मोतीलाल जी असहयोग आदोलन मे शरीक हुए, तो उन्होंने आनंद भवन का एक भाग कांग्रेस-कार्यों के लिए राष्ट्र-सेवियो को दे दिया, और उसका नाम 'स्वराज्य भवन' रखा।

इस 'स्वराज्य भवन' में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का प्रधान कार्यालय अनेक वर्षों तक रहा। यह एक ऐसा सुंदर तथा पवित्र स्मृति-भवन है जिसे प्रयाग में बाहर से आने वाले यात्री एक बार आवश्य देखते है।

उन दिनों बोअर युद्ध हो रहा था। स्वाभाविक था कि भावुक बालक नेहरु को बोअरों के प्रति हमदर्दी हो। वह रोज लडाई की खबरें जानने के लिए अखबार पढ़ता। उसे बोअर स्वातंत्र के प्रति सहानुभूति थी क्योंकि वह अपने बड़े भाइयों से, परतंत्र देशमें नाबदान के कीड़े सी जिंदगी बिताने वाले इंसानों की दर्द कहानी सुन चुका था।

उन दिनों अंग्रेजो के सम्पर्क के फलस्वरुप, पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता से प्रभावित, एक सम्पन्न परिवार की सन्तान के लिए जैसा कि स्वाभाविक था, जवाहरलाल नेहरु को भारतीय स्कूलों मे शिक्षा नहीं दी गयी। ग्यारह वर्ष की आयु मे एफ. टी. ब्रुक्स नामक एक नये शिक्षक अध्यापन कार्य के लिए नियुक्त हुए। अच्छा गुरु भी भाग्य से ही मिलता है। यह सौभाग्य था कि ब्रुक्स महोदय थियोसाफिस्ट थे। उनके उच्च आदर्शों तथा सरल जीवन ने बालक नेहरु के ऊपर अपना स्थायी प्रभाव किया; तथा उसकी अन्तरात्मा में एक नवीन ज्योति जगा दी। जब निर्दोष स्वच्छ दर्पण पर सूर्य की किरणें पडती हैं तब उसका तेज और प्रकाश द्विगुणित आभा के साथ विकीर्ण होता है। उसकी ओर देखनेवालो की नश्वर आँखे असह्य ज्योति के कारण बन्द हो जाती हैं, और उसका मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। मिस्टर ब्रुक्स उन शिक्षकों मे न थे जो विद्यार्थी को केवल अक्षर और अर्थ ज्ञान देना ही अपना कर्तव्य समझते हों, उनकी दृटि में उनका कर्तव्य था जवाहर को मनुष्य बनाना। वे स्वय थियोसॉफिस्ट थे और उन्हीं भावो का प्रवेश अपने शिष्य की विचारधारा मे भी किया करते थे। मि० ब्रुक्स के साहचर्य से बालक जवाहर को आरम्भ से ही विज्ञान तथा अन्य विषयों की पुस्तक को पढ़ने की चाव लग गयी। वह मि० ब्रुक्स के साथ थियासॉफिस्टो की सभाओं में जाया करता और उनके नेताओं का भाषण ध्यानपूर्वक सुनता था।

थियासाफिकल सोसाइटी उन दिनों उन इनी-गिनी संस्थाओं में से थी जो योरोपीय संचालकों द्वारा संचालित होने पर भी भारत के गौरवपूर्ण सुनहरे अतीत को अत्यन्त महत्व देती थी और उसे मानव मात्र की प्रेरणा तथा उनमें जीवन संचार करनेवाली मानती थी। इसमें भारतीय भी सदस्य होकर गोरे सदस्यों के साथ समानता पाते थे। पं० मोतीलाल जी भी इस संस्था के सदस्य हो गये थे, यद्यपि उसकी मीटिंगों में उन्होंने सक्रिय भाग कभी नहीं लिया। मिसेज बेसेंट के भाषणों से अत्यन्त प्रभावित हो स्वयं जवाहरलाल ने १३ वर्ष की अवस्था में श्रीमती बेसेन्ट के ही करकमलों द्वारा थियोसोफी की दीक्षा पायी थी। आज की पीढ़ी के लिए थियासाफी के आन्दोलन का महत्व आँकना कठिन है। 'समय के प्रभाव में पड़ कर अपने नेताओं को भूल जाने वाली दुनिया यह भी ठीक ठीक नहीं समझ सकती कि अपनी सुदूर मातृभूमि आयरलैण्ड से सेवा का व्रत लेकर भारत में आनेवाली इस अद्भुत् महिला ने, जिसका मानवमात्र की सेवा के हित समर्पित भौतिक जीवन मद्रास के अड्यार नदी के तट पर शेष हो गया, भारत की कितनी महत्वपूर्ण सेवा की, जिसे आनेवाले इतिहास के पृष्ठ कदापि भुला नहीं सकते।'

आगमन के तीन वर्ष पश्चात् मि० ब्रुक्स का संरक्षण जवाहर लाल पर से उठ गया। ब्रुक्स के अलग होते ही थियासाफी की विचारधारा का नशा भी उनके मस्तिष्क से उतर गया। इन्हीं दिनों जब मि० ब्रुक्स शिक्षक रखे गये थे, एक और शिक्षक, बूढ़े पंडितजी, जवाहरलाल को हिन्दी और संस्कृत पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए, परन्तु कई वर्ष पश्चात् भी इन भाषाओं का ज्ञान उन्हें विशेष न हो सका।

पहले ही कहा जा चुका है कि बालक जवाहर के मन में अज्ञात रूप से देश-भक्ति का बीजांकुर बहुत पहले से ही उग चुका था। बोअर युद्ध में उन्हें बोअरों के प्रति सहानुभूति भी थी। रूस और जापान के युद्ध में भी जवाहर की सहानुभूति पूर्णतः जापान की ओर गयी। वे जापान की विजय चाहते थे। इतनी छोटी अवस्था में ही उन्हें न केवल भारत के राष्ट्रीय

स्वातंत्र से ही प्रेम था, बल्कि योरोप के हाथों से एशिया को भी वे अलग देखना चाहते थे। उनका मासूम दिल बड़े-बड़े बहादुरी के मंसूबे बाँधता कि कैसे हाथ में तलवार लेकर मैं भी हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ूँगा। इसी कारण जापान के प्रति उनकी सहानुभूति बढ़ गयी और वे जापान के सरदारों की वीरोचित कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ते।

यौवन के गर्म रक्त के संचार के साथ साथ रहस्यपूर्ण नारी-सौन्दर्य कौतूहलपूर्ण दृष्टि से उनके अंतर में झाँकने लगा। यद्यपि अब भी लड़कियों से सम्पर्क बढ़ाना वे अपनी शान के खिलाफ समझते थे। लेकिन कभी-कभी काश्मीरी दावतों में जहाँ सुन्दर लड़कियों का अभाव न था— निगाह या बदन के आपस में छू जाने से एक अज्ञात भावना से। उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो जाता।

विदेश यात्रा तथा उच्च शिक्षा

वह समय था विलायत प्रेम का। शासकों की प्रत्येक बात आदरणीय और अनुकरणीय समझी जाती थी। उनके साथ उनके ही देश में शिक्षा पाना एक गौरव की बात समझी जाती थी। महत्वाकांक्षी और बड़े बाप अपने बेटों को भविष्य के अनेक सुनहरे स्वप्न सजाये विदेश भेजते थे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर जवाहरलाल जी के माता-पिता ने भी १९९५ में इंगलैंड के लिए प्रस्थान किया। कुछ दिनों के विदेश-पर्यटन के पश्चात्, अपने प्रिय पुत्र को सुप्रसिद्ध हैरो विद्यालय में भरती कराकर माता पिता स्वदेश लौट आये। हैरो इंगलैंड का वह सुप्रसिद्ध पब्लिक स्कूल है, जहां उच्च कोटि के धनाढ्य पुरुषों के सौभाग्यशाली बालकों को ही स्थान दिया जाता है! इस स्कूल ने इंगलैंड के राजनैतिक इतिहास मे प्रसिद्ध अनेकों महापुरुषों की रचना की है। स्पेन्सर पर्सीवेल, राबर्टपील, पामर्सटन, स्टेनली, बाल्डविन आदि बृटिश साम्राज्य के स्तम्भ स्वरूप प्रधान मंत्रियों की प्रारम्भिक बौद्धिक रचना इसी स्कूल द्वारा हुई थी। इसी स्कूल के पढ़े हुए कई विद्यार्थी भारत के वायसराय भी हुए; जिनमें, डलहौजी, वेलजली, लिटन और हार्डिंग के नाम प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रसिद्ध साहित्यकारों की भी रचना-भूमि यही थी! यह एक पहाड़ी पर बसा हुआ है तथा प्रकृति ने इसकी स्थिति बड़ी ही रमणीय बना दी है।

लेटिन कि आवश्यक जानकारी न होने के कारण आरम्भ मे जवाहरलाल छोटी कक्षा म भरती किये गये परन्तु शीघ्र ही उन्हे उन्नति मिल गयी। वे अपने हम उम्र विद्यार्थियों से, समाचार पत्र और पुस्तकों का

अधिक पठन-पाठन करने से, आम बातों मे अधिक जानकारी रखते थे। एक बार कुछ गर्व के साथ उन्होंने अपने पिता को एक पत्र में लिखा भी था कि अंग्रेज लड़के खेल-कूद मे बड़े सुस्त, और कुन्द-जेहन होते हैं। स्कूल में वे औसत दर्जे के ही विद्यार्थी रहे यद्यपि इनकी बुद्धि काफी प्रखर थी एक अंग्रेज लेखक के शब्दों में "स्कूल मे आप क्रमशः जीवन की गुत्थियों का अध्ययन करते और सासारिक अनुभव को प्राप्त करते थे।"

आरम्भ मे माँ-बाप के वरदहस्त और स्नेहछाया के नीचे रहनेवाले जवाहरलाल को वह अजनबी वातावरण सूना-सूना सा लगा। परन्तु कुछ ही दिनों पश्चात वे स्कूल के जीवन मे हिल मिल गये और दैनिक कार्य तथा खेल कूद मे पूरा पूरा हिस्सा लेने लगे।

एक बार एक मनोरंजक घटना घटित हुई। १९०५ मे इंगलैण्ड में नया चुनाव हुआ और लिबरल दल की जीत हुई। कुछ दिनो पश्चात् नयी सरकार के विषय मे अध्यापक ने कक्षा के विद्यार्थियो से कई प्रश्न पूछे। नेहरु के अतिरिक्त कोई भी ठीक उत्तर न दे सका अध्यापक को एक हिन्दुस्तानी लड़के के इस ज्ञान पर आश्चर्य हुआ। इन राजनीतिक विषयों के अतिरिक्त उनकी रुचि विज्ञान की ओर विशेष थी। वायुयानों के प्रति उनका विशेष आकर्षण था। एक बार उन्होंने उत्साह से अपने पिता को लिखा था कि अब विमान द्वारा प्रति सप्ताह मैं आप से मिलने आ सकूँगा।

हैरो विद्यालय में जब जवाहर लाल पढ़ते थे उसी समय से उनका आकर्षण भारत की राजनैतिक अवस्था की ओर था। सन् १९०६ और १९०७ में नौकरशाही के द्वारा जो उत्पात भारत में हो रहे थे उन समाचारों को अंग्रेजी पत्र मे पढ़ कर उनके युवा-हृदय मे एक अमिट पीड़ा उठती। बंगाल और पंजाब की घटनायें उनके हृदय पर साँप सी लोटती। उस समय तक भारतीय नेता लाला लाजपत राय और सरदार अजित सिंह को देश निकाला हो चुका था। पूना मे तिलक का नाम बिजली की तरह चमक रहा था और स्वदेशी का इस्तेमाल तथा विदेशी

माल का बहिष्कार गगनभेदी-नाद से पूना के उस सिंह के स्वरों में गूँज रहा था। तमस-निद्रा में सोया देश, माता की पुकार सुन कर करवट बदल कर जाग उठा था। तिलक की आवाज 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, हर जवामर्द हिन्दुस्तानी के दिल और दिमाग में अपना स्थान बना चुकी थी। फिर भला जवाहरलाल, जो एक स्वतंत्र देश के स्वतंत्र वातावरण में उस समय पल तथा शिक्षित हो रहे थे, इस प्रभाव से अपने को कैसे बचा सकते ? हैरो में एक भी ऐसा व्यक्ति न था जिससे वे दिल खोल कर इस विषय पर बात कर सकते। उन्हीं के शब्दों में, अपने भविष्य के कार्यक्रमों का मन ही मन काल्पनिक बाँधनू बाँधते हुए "मैं आजादी की बहादुराना लड़ाई के अजीब ख्वाब देखने लगा।" हैरो के उस संकुचित वातावरण से त्राण पाकर अब वे जीवन और उसमें स्थित आदर्शों को बृहत पृष्ठभूमि पर देखना चाहते थे। उन्होंने पिता से विश्वविद्यालय में दाखिल होने की आज्ञा माँगी।

१७-१८ वर्ष की आयु में, १९०७ में उन्होंने कैम्ब्रिज के ट्रिन्ट्री कालेज में पदार्पण किया। हैरो को छोड़ते समय उनकी आँखे सजल हो गयी थी, और वहाँ की परम्परा और सुमधुर गीत उनके भावुक हृदय को बहुत काल तक उसकी याद दिला-दिला कर कचोटते रहे। धीमी धीमी बहने वाली कैम नदी की भाँति उनके ३ वर्ष विश्वविद्यालय में बीत गये।

बीसवीं शती के पहले दशाब्द में कैम्ब्रिज का जीवन सुखी और बौद्धिक जिज्ञासा से भरा हुआ था। कालेज का वातावरण निःसन्देह उन भारतीयों के लिये विशेष स्फूर्तिप्रद था जो उस काल विद्यालय में थे। जवाहरलाल जी को भी इस वातावरण से उत्साह मिला। उनका प्रिय विषय प्राकृतिक विज्ञान था। अपनी पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त वे अन्य विषयों की पुस्तक भी पढ़ते थे; और अपने अन्य मित्रों की ही भाँति अपनी मंडली में, उन विषयों का अपरिपक्व ज्ञान होने पर भी बड़े गर्व से, एक 'बुजुर्ग अक्लमंद' की भाँति वाद-विवाद किया करते थे। वहाँ

पढ़ने वाले भारतीय युवक स्वाभावतः भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन पर बड़ी सूक्ष्मता से तर्क करते, और सभी एक स्वर से अंग्रेजो की नीति के विरुद्ध तर्क पेश करते। सभी बिना किसी अपवाद के तिलक दल-या गरम दल कहो—के पक्ष मे थे।

केम्ब्रिज मे भारतीयो का एक संगठन 'इंडियन मजलिस' नाम का था। जो कि उनका सामाजिक क्लब भी था और राजनैतिक विवादो का केन्द्र भी, परंतु जवाहरलाल इतने संकोची तथा समाभीरु थे, जैसा कि प्रायः युवको मे पाया जाता है, कि उन्होंने न तो कभी इस मजलिस मे भाग ही लिया न अपने कालेज की विवाद सभा 'मैगपाई एएड स्टम्प' मे ही। फलस्वरूप उन्हे नियमानुसार इसके लिये जुर्माना भी देना पड़ता था।

उन दिनो भारत-स्वातंत्र-युद्ध के नामी राजनैतिक योद्धा अपनी इंगलैएड यात्रा मे इन विद्यालयों मे भी जाया करते तथा हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों से मिला करते। एकबार श्री गोखले, लाला लाजपतराय तथा विपिन चन्द्र पाल, नेहरु के अध्ययन काल मे ही वहाँ गये थे, तथा उन लोगों ने उनकी मजलिस मे भाषण भी दिया था। नेहरु जी को विपिनचन्द्र पाल से अधिक लाला लाजपतराय के भाषण मे आनन्द आया तथा वे उनसे प्रभावित भी हुए। भारत के सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल उन दिनों वहीं थे। नेहरु जी ने स्वयं उनसे दो तीन बार भेंट भी किया था। यद्यपि सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्यामजी वर्मा उन दिनों विलायत मे ही रह रहे थे परंतु वहाँ उनसे नेहरु जी की कभी भेंट न हुई। कभी कभी वे उनका समाचार पत्र 'इंडियन सोसियालाजिस्ट' देखने का अवसर अवश्य पा लेते थे। इसके बहुत दिनों बाद सन् १९३६ मे नेहरु जी ने उनसे जेनेवा मे भेंट की थी।

तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन की बंगाल-विभाजन-नीति से भारत मे आन्दोलन की लहर ने भीषण रूप धारण कर लिया था। अहंकारी कर्जन का विश्वास था कि निर्बल देशों पर ईश्वर ने इंगलैंड को

शासन करने का अधिकार न दिया है। उसके कथनानुसार 'भारत तलवार-के बलपर जीता गया था और तलवार के बल पर ही आधीन रखा जायेगा।' नेहरू इन्हें बराबर समाचार पत्र में पढ़ते रहते और वृटिश शासन के विरुद्ध विद्रोहाग्नि उनके ्वा हृदय में सुलगा करतीं।

उन्हीं दिनों देश की स्थिति तथा अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारो को देख कर पं० मोतीलाल भी कांग्रेस के लिबरल दल की ओर मुखाकृत हुए थे। वे अब भी अंग्रेजो को आदर्श तथा अनुसरणीय समझते थे। वे गरम दल वालो को 'कल के छोकरे' और 'देश को तबाह करनेवाले, समझते थे। एक बार उन्होंने कुछ इसी प्रकार का लेख एक पत्रिका में लिखा था। कैम्ब्रिज के विद्यार्थी युवा पुत्र ने जब यह लेख पढा तब वह पिता से बहुत ही असन्तुष्ट हुआ, और उन्माद में उसी समय अपने पिता को एक धृष्टतापूर्ण पत्र लिख डाला, जिसमें उसने उनको यह कह कर अपने दिल का गुव्वार निकाला था कि आपकी राजनैतिक काररवाइयो से अवश्य ही वृटिश सरकार अत्यन्त प्रसन्न हुई होगी। पिता, पुत्र की इस ढीठाई पर काफी नाराज भी हुए थे, और करीब करीब उन्हें इगलैंड से वापस बुला लेने का निश्चय ही कर चुके थे, ताकि धृष्ठ पुत्र को पिता के साथ अधिक आदर और सद्व्यवहार करने की शिक्षा और ताडना मिल सके। पर बाद में पुत्र के भविष्य को सोच कर उन्होंने यह विचार त्याग दिया।

१९१० में जवाहरलाल जी कैम्ब्रिज से विज्ञान के तीन विषयो में ससम्मान द्वितीय श्रेणी में पास हो गये। तत्पश्चात् कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे लंडन के ही 'इनर टेम्पुल' मे भरती हुए। इसी बीच कानून की पढ़ाई से समय निकाल कर उन्होंने फेबियन और समाज-वादी विचार धाराओं का अध्ययन किया।

१९१० में कैम्ब्रिज से डिगरी लेने के पश्चात् जवाहरलाल नार्वे सैर-सपाटे के लिए गये जिसमें एक दुर्घटना से वे बाल-बाल बचे। एक दिन एक नौजवान अग्रेज मित्र के साथ वह एक पहाडी झरने में नहाने गये थे।

नहाते समय दुर्भाग्य वश उनका पाँव फिसल गया। तूफानी धारा के साथ वे वेग से बहने लगे। काफी देर बहने के बाद उस अंग्रेज मित्र ने उन्हें बड़ी कठिनाई से बाहर निकाला। झरना थोड़ी दूर और बहने के पश्चात् एक जल प्रपात के रूप में काफी नीचे पहाड़ी में गिरता था। यदि कुछ मिनटों तक और उनकी जीवन-रक्षा न हो पाती तो शायद भारत के भविष्य का यह आशा-दीप उस दिन बुझ जाता।

१९१२ में उन्होंने 'इनर टेम्पुल' से बार-एट-ला की डिग्री पा ली, और ७ साल से अधिक विदेश में रह कर वे शरद ऋतु में भारत लौटे। सात वर्ष के पूर्व के नेहरू और अब के सम्मानित नेहरू में जमीन-आसमान का अंतर था, जब वे भारत के लिए रवाना हुए तो उनके शारीरिक परिधान का वाह्यरूप तो विदेशी अवश्य था पर भीतर हृदय में भारतीयता की चिनगारी बुझने न पायी थी। यही चिनगारी यहाँ लौटने पर विशाल स्वदेश-प्रेम की अग्नि सी प्रज्वलित हो उठी।

—※—

भारतीय राजनीति में पदार्पण

१९१२ में जब नेहरू जी भारत लौटे उस समय भारतीय-राष्ट्रीय आन्दोलन में जीवन न था। सभी चोटी के नेता जेल में थे। तिलक के जेल में होने के कारण, सुयोग्य नेता से रहित गरम दल के अनुयायी पूर्णतः कुचल दिये गये थे। बंग-भंग-योजना रद्द कर, संतप्त हृदय भारतीयों को, विशेषतः माडरेटों को अपनी ओर मिलाने में सरकार सफल हो चुकी थी। मार्ले-मिन्टो-योजना विरोध की खाई को पाटने में बहुत कुछ सफल हुई थी। यद्यपि भारत की गृह-राजनीति पर कुछ दिनों के लिए ठंडी राख पड़ चुकी थी, फिर भी चन्द भारतीयों की विदेश में अपने चन्द भाइयों की सेवा, सर्द पड़ रहे खून में गर्मी ला रही थी। उन दिनों अफ्रीका में भारतीयों के साथ अत्याचार किये जा रहे थे; काले और गोरे का भेद जोर पकड़ रहा था, और भारतीय सरकार प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा में अन्यमनस्कता दिखा रही थी। महात्मा गोखले ने भारत के नौनिहालों से अपने अफ्रिकन भाइयों की सहायता के लिए धन की अपील की। उस अपील के अनुसार चंदा एकत्रित करने के लिए प्रयाग में एक समिति बनी, जवाहरलाल जी उसके मंत्री थे। इसके अतिरिक्त भारतीय मजदूरों को अनुचित इकरारनामें लिखाकर विदेश ले जाने के विरुद्ध जो आन्दोलन देश में, विशेषतः प्रयाग में उठा था, उसके आप प्राण थे।

विलायत से लौटने के पश्चात ही १९१२ में नेहरू जी एक डेलिगेट की हैसियत से बाँकीपुर कांग्रेस में उपस्थित हुए थे। उसके पहले बचपन में भी एकबार वे कांग्रेस के उस अधिवेशन को देख आये थे जिसकी

बैठक बम्बई मे सर हेनरी काटन के सभापतित्व मे हुई थी। सन १९१३ मे वे युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मेम्बर बने और उसी समय से प्रांतीय कांग्रेस के कार्यों में उचित भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। उन दिनों कांग्रेस का सगठन, कार्यक्रम और रूप आज कल का सा नहीं था, वरन् धनाढ्य और शिक्षित लोग ही उसके सदस्य होते थे। कांग्रेस अधिवेशन एक तरह के सामाजिक उत्सव से होते थे जहाँ विशेषतः अंग्रेजी जानने वाले उच्च श्रेणी के लोग, सुन्दर इस्त्री किये हुए, कोट-पतलून मे दिखलाई देते थे, जहाँ वे अपनी लच्छेदार अंग्रेजी भाषा का चमत्कार दिखाना ही बहुत बड़ी देश-सेवा समझते थे।

जवाहरलाल जी जब इंगलैंड से आये थे तभी से उनका यह विचार था की वे अपने अमूल्य समय में से आधा तो वकालत के पेशे मे देंगे और आधा देश की सेवा मे। परन्तु इंगलैंड की स्वतन्त्र वायु और विचारधारा मे पले हुए, तथा शिक्षित इस युवक को अपने देश की परतन्त्रता खलने लगी। अंग्रेजों द्वारा दूषित हुई यहाँ की वायु उनका दम घोटने लगी। यद्यपि वे दैनिक जीवन की खानापूरी करने के लिए बेमन से अदालत जाते थे, परन्तु उनके युवा हृदय मे देश की परिस्थिति से असन्तोष का जन्म हो चुका था। पिता और उनके दूसरे बड़े वकील मित्रों का परिश्रम भी जवाहर को अपने पेशे की ओर पूर्णरूप से न खींच सका। उनकी दृष्टि तो गुलामी से जकड़ी हुई भारत-माता की हँथकड़ियों की ओर जा चुकी थी। धन और सम्मान से पूर्ण अपने वकालत के पेशे से दूर, वे प्रायः देश की राजनैतिक परिस्थिति पर विचार करते। उनके हृदय मे क्षोभ था, विषाद था, और था भारतीय संग्राम की रूप रेखा तैयार करने का उत्साह। विदेशी शासन के प्रति वे जोरदार आंदोलन की बात सोचा करते। वे चारों ओर दृष्टि दौड़ाते परन्तु कहीं किनारा नजर न आता। उनकी दृष्टि अपने विचार के से व्यक्ति की खोज में थी—किन्तु उसकी गुंजाइश न दिखलाई पड़ती थी। वे स्वयं अंग्रेजों से किसी प्रकार के लाभ की आशा न रखते थे बल्की देश की समस्त दुर्दशा के लिये

उसी शासक वर्ग को वे एकमात्र उत्तरदायी समझते थे। उन्होने इंगलैंड मे रहकर अंग्रेजो को बहुत निकट से देखा था, और उनकी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति पहचानते थे। भारत में अंग्रेजी शासन के पिछले सौ वर्षों के अन्याय और अत्याचार-पूर्ण नीति का ध्यान कर नेहरू की विचारधारा किसी अन्य दिशा में काम करने लगी थी। भारतीय इतिहास में राष्ट्रीयता पैदा करने वाले गुण मौजूद थे, और उन्हीं के प्रभाव से नेहरू जी सरीखे सच्चे राष्ट्रीयतावादी, भारतीय राजनीति के मंच पर ऐसे समय आये जब उनका आगमन देश के लिए बहुत ही आवश्यक था।

सन् १८८५ मे ही कुछ अंग्रेजो के सहयोग से, विशेषतः मिस्टर ह्यूम के अथक परिश्रम से, राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हो चुका था। उस समय उसका उद्देश्य सिर्फ देश की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का सविनय ज्ञान, शासकों को कराकर, राजभक्ति के साथ सुधारो की माँग करना था। कांग्रेस का उस समय आन्दोलनकारी रूप न था। इसलिए वृटिश सरकार भी उसके इन कार्यों में हस्तक्षेप न करती थी, बल्कि उसे शासन में विशेष हितकर पाकर प्रारम्भ में उसने उसे विशेष सहयोग ही दिया। परन्तु कुछ वर्षों बाद ही उन्हें अपनी गलती महसूस हो गयी। उनके द्वारा ही आरोपित वृक्ष अब उन्हें फल के स्थान पर कॉटे प्रदान करने लगा। वे तिलमिला गये और उसे समूल नष्ट करने की चेष्टा में लग गये परन्तु अब कुछ नही हो सकता था; वृक्ष की जड़े देशभक्ति की धरती में काफी दूर तक फैल चुकी थी। इस राजनीतिक आग की धीरे-धीरे जलती हुई पहली लपट ने १९०७ में, जब सत्ता मदान्ध लार्ड कर्जन ने बंग-विभाजन किया, देश की सोई हुई जनता मे प्रतिहिन्सात्मक ज्योति भर दी जिससे देश-भक्ति और क्रान्ति की एक नवीन लहर सी दौड़ गयी। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के जन-नेतृत्व ने वृटिश सरकार को अपने कदम पीछे हटाने और बंग-भंग करने की भारी भूल को सुधारने के लिए विवश किया। पर अंग्रेजो ने इस आन्दोलन के लिए जो भीषण अत्याचार किये थे, उनकी यादगार भूल सुधारे जाने के बाद भी समस्त भारतीयो के दिल में

कायम रही, और विदेशी शासन के प्रति भारतीयों की विरोधाग्नि धधकती रही।

उन दिनों, जब जवाहरलाल विलायत से लौटे, मॉडरेट (नरम) दल वालों के हाँथ में कांग्रेस थी। वे बंगाल में होने वाले आन्दोलन के ढंग को देश के लिये अहितकर समझते थे। उनकी दृष्टि में भारतीयों को अंग्रेजों से शिष्टमण्डलों, सिफारिशों और अन्य नरम तरीकों द्वारा शासन में सुधार-व्यवस्था करने की मॉग करना चाहिए था। नेहरू तथा अन्य नये और गर्म रक्त वाले नवयुवकों को यह तरीका पसन्द न था। वे अपने अधिकारों को हाथ पसार कर भिखारी की भाँति, नहीं अपितु एक योद्धा की भाँति लेना चाहते थे। वे बृटिश शासक-वर्ग को इतना सभ्य और सहृदय नहीं समझते थे कि वे सिर्फ मॉगों के आधार पर ही उन्हें सभी इच्छित सुधार देने के लिए तैयार हो जायेंगे। अतः जवाहरलाल जी के अनुसार तत्कालीन भारतीय राजनीति का अर्थ विदेशी शासन के विरुद्ध उग्र रूप से आन्दोलन था जिसमें देश की सभी जनता और सभी वर्ग पूर्ण रूप से सहयोग दे सकें। किन्तु उस समय की नरम राजनीति में जवाहर के विचारों की उग्रता कैसे आ पाती जब कांग्रेस के कर्णधार स्वय माडरेट (नरम) दल के थे? स्वयं उनके पिता मोतीलाल जी ही उनके इस विचार परिवर्तन को बहुत सन्देह और भय की निगाह से देख रहे थे।

इन्हीं उग्र विचारों के फल स्वरूप, नेहरू जी ने गोखले द्वारा स्थापित भारत-सेवक-समिति को काफी सम्मान की दृष्टि से देखते हुये भी, उसके नरम विचारों के कारण कभी उसके मेम्बर होकर उसमें शामिल होने की बात न सोची।

१९१४ में यूरोप में विश्वव्यापी युद्ध आरम्भ हुआ, सम्पूर्ण संसार की दृष्टि दत्तचित्त होकर उधर ही लग गई। भारतीयों की दृष्टि भी उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। परन्तु अंग्रेजों ने बिना भारतीयों की मनोवृत्ति और भावनाओं को जाने हुए, बजाये प्रेम और सहानुभति

के, जबरदस्ती उनसे प्रचुर मात्रा में धन और जन की सहायता ली। इससे भारतीयों के दिल में यह बात और भी बैठ गयी कि ये विदेशी शासक न तो कभी अपने थे और न कभी भविष्य में ही उनके दुख सुख के साथी होंगे। अतः युद्ध में अंग्रेजों के साथ उनकी बहुत ही कम हमदर्दी रह गयी। जर्मनी की जीत की खबर सुनकर क्या साहरे और क्या गरम दल वाले, दोनों ही प्रसन्न होते थे। इसलिए नहीं कि उन्हें जर्मनी से प्रेम था, बल्कि इस स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति के कारण कि हमारे इन बलात् आये हुए महाप्रभुओं का गर्व उतर रहा है। कमजोर और असहाय मनुष्यों के मनमें अपने से जबरदस्त को दूसरे से पीटे जाने की खबर सुनकर जैसी खुशी होती है, कुछ वैसा ही यह भाव था।

इन्हीं दिनों पंजाब और बंगाल में नवयुवक क्रांतिकारियों द्वारा किये जाने वाले कार्यों की बड़ी धूम थी। युद्ध के दूसरे वर्ष से ही षड्यन्त्रों और गोलियों से उड़ाये जाने के समाचार मिलने लगे थे। ब्रिटेन के 'डिफेन्स आफ रियल्म एक्ट' की तरह भारत में भी रक्षा कानून बना; पर वह कानून वास्तव में भारत-रक्षा के लिये नहीं, बल्कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता तथा उसकी जड़े और मजबूत करने के लिए बना था। देश में सरकार द्वारा बनाये हुए दमनकारी कानूनों और कार्यों की सर्वत्र धूम थी। पर इस दमन से राजनैतिक जीवन दबने के बदले और अधिक उभरने लगा। जनता एक नवीन चेतना-शक्ति से जाग्रत हो रही थी। ऐसी चेतना-शक्ति जो बार-बार ठोकर लगने के बाद आती है। ऐसा चेतन-ज्ञान जो बच्चों को आग में उँगली जलने के पश्चात् आता है।

धीरे-धीरे राजनैतिक जीवन फिर बढ़ने लगा था, लोकमान्य तिलक जेल से बाहर आ गये थे। उन्होंने तथा मिसेज-बेसेन्ट ने होमरूल लीग की स्थापना का विचार किया। मिस्टर सिन्हा की अध्यक्षता में होने वाली बंबई की कांग्रेस कान्फरेन्स में होमरूल लीग स्थापन का प्रस्ताव भी श्रीमती बेसेन्ट ने रखा था, जिसका उद्देश्य स्वराज्य-प्राप्ति तथा जन-साधारण को कांग्रेस के उद्देश्यों तथा कार्यों से परिचित करना था यद्यपि उस

अधिवेशन मे यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो पाया फिर भी जवाहरलाल जी उसके पक्ष में थे। कांग्रेस में सफल न होने पर भी देवी बेसेन्ट ने कांग्रेस से अलग होमरूल लीग की स्थापना का निश्चय किया, और अथक परिश्रम के पश्चात् म ास में पहले पहल उसकी स्थापना भी कर लिया। अन्य प्रसिद्ध नगरो की भॉ.त थोड़े ही समय मे प्रयाग में भी जवाहरलाल नेहरू तथा श्री मजरअली सोख्ता के अथक परिश्रम, और प० मोतीलाल, सर सप्रू, श्री चिन्तामणि और बाबू ईश्वरशरण के आश्वासन के कारण होमरूल लीग की स्थापना हुई। पं० जवाहरलाल प्रयाग लीग के सयुक्त-मन्त्री थे। धन एकत्रित करने तथा सगठन का भार उन्हें ही दिया गया, जिन्हें उन्होंने सुचारु रूप से सम्पन्न करने मे कोई कसर नही किया। इन सब के फल-स्वरूप कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनो मे कुछ अधिक जोश भर गया और मुस्लिम लीग भी कांग्रेस के साथ-साथ कदम मिलाकर चलने लगी। वायु मडल में बिजली सी दौड़ गयी और अधिकाश नवयुवकों के दिल फड़कने लगे। लगता देशप्रेम के प्रबल झझावात ने अचल और निष्प्रभ तिनकों को भी जीवन दानकर उनमे अपार शक्ति फूक दी है।

होमरूल लीग का यह प्रबल प्रचार देखकर बृटिश सरकार घबडा उठी, साम्राज्यवादी सिंहासन हिल उठा और दमन नीति काम मे लायी गयी। आन्दोलन की प्रमुख नेत्री देवी बेसेन्ट और उनके साथी मि० अरडेल, बी० पी० वाडिया आदि नजर बंद कर लिये गये। देश भर मे इस अन्याय के प्रति क्रोध और घृणा प्रकट किया गया। पढे लिखे लोगों में उत्तेजना काफी बढ़ गयी जिसने होमरूल आन्दोलन मे और भी जान डाल दिया, अनेक माडरेट विचार वाले ज उसके विरोधी थे वे भी इसमें शामिल हो गये। स्वय पं० मोतीलाल जी जो नरम विचारधारा के थे, हो रूल लीग मे शरीक होकर उसकी प्रयाग-शाखा के अध्यक्ष हुए और धीरे-धीरे वे माडरेटो की विचार-धारा से अलग होने लगे।

१९१४ में आरम्भ हुए महासमर मे भारत ने बृटेन के झूठे नारे 'प्रजातन्त्र की रक्षा' के नाम पर, युद्ध के अत के पश्चात् भावी स्वराज्य के

मिलने की किंचित आशा लेकर, माता के लाखो लालो को मैदान में उतार कर मित्रराष्ट्रो की विजय के लिए उन्हें जीवन की बाजी लगाने की प्रेरणा दी थी। किन्तु युद्ध में विजयी होने के पश्चात् उपहार में उन्हें भीगी आँखे पोछने के लिए मिला क्या? सहृदय माटेग्यू की अनन्त चेष्टाओं के पश्चात बृटिश पार्लियामेन्ट से पास एक अधूरा और अनर्थक शासन-विधान; तत्पश्चात् रौलेट एक्ट और मार्शल ला। सम्पूर्ण भारत, इस अपमानपूर्ण विश्वासघात की वेदना से उन्मत्त हो उठा। राष्ट्र ने आँखे खोली, सारे देश मे भीषण तहलका मच गया और उसने प० मोतीलाल को माडरेटो से पूर्ण अलग कर दिया। उनका वकालत मे लगने वाला समय भी अब अधिक से अधिक देश-सेवा मे लगने लगा।

यह सब हुई उस समय की राजनीतिक प्रगति, परन्तु जवाहरलाल अभीतक खुलकर राजनीतिक और सार्वजनिक कार्यों मे आगे नही आये थे। १६१५ में इलाहाब द की एक सार्वजनिक सभा में प्रेस का मुँह बंद करने वाले एक काले कानून के विरोध में वह पहली बार अंग्रेजी में बोले। सभा समाप्त होने के पश्चात् ही वहाँ पर उपस्थित सर सप्रू ने उनके इस साहस पर, सब के सामने ही मच पर उनका आलिंगन कर प्रेम से चुम्बन ले लिया।

नवयुवक जवाहरलाल पर तत्कालीन परिस्थितियों के अतिरिक्त कुछ अन्य नेताओ का भी काफी प्रभाव पडा। महात्मा गाधी से उनकी भेट सर्वप्रथम १६१६ मे लखनऊ-काग्रेस में हुई। दक्षिण अफ्रिका में किये गये उनके कार्यो को अन्य नवयुवकों की भाँति जवाहरलाल जी भी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। जिस उत्साह के साथ वे प्रवासी भारतीयों के मसले को, काग्रेस से अलग रहकर अपना रहे थे उससे बिना प्रभावित हुए नहीं रहा जा सकता था। चम्पारन में निहले गोरों के कारण होने वाले किसानो के कष्ट को दूर करने में उन्होने जैसा साहस दिखलाया और इस मामले में उनकी जो जीत हुई, उससे उनमे और भी उत्साह भर गया। नवयुवक जवाहर ने देखा कि वे हिन्दुस्तान में भी अपने इस तरीके

से कार्य लेने के लिए तैयार है और उससे काफी सफलता की भी आशा है।

गाधीजी के अतिरिक्त, लखनऊ-काग्रेस के पश्चात् प्रयाग मे दिये गये सरोजनी नायडू के भाषणों का भी नेहरूजी पर अच्छा प्रभाव पडा। राष्ट्रीयतापूर्ण और देशभक्ति से सराबोर वे भाषण उनका युवक दिल हिला देते थे। १६१६ मे आयरलैंड की बगावत के नेता ने फाँसी के तख्ते से अपने मुकदमे के बारे मे जो चिरस्मरणीय आश्चर्यजनक भाषण दिया था, और गुलाम जाति के भावो और उनकी निरीह स्थिति की जो व्याख्या की थी, उसने भी निश्चित ही उन्हें अपनी ओर खींचा था। नेहरू के ही शब्दो मे "आयरलैंड मे ईस्टर के दिनो मे जो बगावत हुई, उसकी विफलता ने भी हमे अपनी ओर खींचा, क्योंकि जो वर्तमान विफलता पर हँसता हुआ ससार के सामने यह घोषणा करता है कि एक राष्ट्र की अजेय आत्मा को कोई भी पाशविक शारीरिक शक्ति नही कुचल सकती, वह अद्वितीय सच्चा साहस ही है।"

—❀—
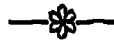
राजनैतिक क्षेत्र में गांधी जी का प्रवेश तथा प्रभाव

अपने दक्षिणी अफ्रीका मे किये गये कार्यों के फलस्वरूप गाधी जी पहले से ही नवयुवक हृदयों को अपनी ओर आकर्षित कर चुके थे। स्वय नेहरू जी भी नये अनुभव और नये साहसिक कार्यों के लिए ललक रहे थे। अतः स्वाभाविक था कि दक्षिणी अफ्रीका से लौटे हुए इस पतले-दुबले और बहुत ही साधारण दीखनेवाले व्यक्ति के अद्भुत और नये ढंग के अपनाये हुए राजनैतिक रास्ते की ओर उनकी दृष्टि जाती। सन् १९१६ में उनकी भेट गाधी जी से सर्वप्रथम लखनऊ काग्रेस मे हुई। सन् १९२७ मे गाधी जी ने अपनी नयी कार्य-पद्यपि के दो प्रयोग, यद्यपि छोटे पैमाने पर ही, कर लिए थे।—एक तो चम्पारन जिले मे और दूसरा खेडा (गुजरात) मे। चपारन और खेडा के किसान-सत्याग्रह पं० जवाहरलाल को कर्मक्षेत्र मे उतरने के लिए आवाहन कर रहे थे। अवध के असहाय किसानो के बहते आँसुओ को देख कर तो उनका धैर्य छूट गया। उन्होंने आनन्द भवन के मुलायम गद्दे और वैभव विलास से पूर्ण मगलमय जीवन को त्याग दिया। पहली बार उन्होने भारत का वास्तविक स्वरूप दीन-हीन, खोखली हड्डियों के साँचे मे ढले, मास-विहीन शरीर पर चिथडे लपेटे, मनुष्य कहे जाने वाले श्रमसिक्त निर्जीव किसानों में देखा जिन्हें दिन रात पिसने के पश्चात् भी भरपेट रोटी स्वप्न थी।

प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने के पश्चात् हिन्दुस्तानियों की आशा के विरुद्ध रौलेट एक्ट का भारत में आगमन हुआ। यह राजनीतिक नेताओं का दमन करनेवाली तथा पत्रों का खुला वाचाल मुँह बद कर देने वाली सरकार की एक नयी 'लिखित व्यवस्था' थी। इसमे कानूनी कारखाई के

बिना भी गिरफ्तार करने और सजा ठोक देने की धाराएँ रखी गयी थी। हिन्दुस्तानियों के विरोध के बावजूद भी ३ साल के लिए यह एक्ट उन पर लागू हो गया।

सन् १६१६ मे गाधी जी बहुत बीमार थे। उहोंने जब इस नये ऐक्ट के बारे मे सुना तो रोग-शैया से ही इसके विरोध मे आवाज उठायी: और वायसराय से अपील की कि वह इस आपत्तिजनक कानून को अपनी स्वीकृति न दें। अन्य अपीलों की तरह उनकी इस अपील की भी परवाह न की गयी। फलस्वरूप कर्मवीर गाधी को अपनी इच्छा के खिलाफ मैदान मे आना पड़ा। उन्होंने 'सत्याग्रह सभा' का आरम्भ किया और एक ऐसे कार्य क्रम के लिए स्वयसेवक भरती करने शुरू किये जिसमें अप्रीतिकर सम्भावनाएँ स्पष्ट दीखती थीं। उन्होंने जनता को इस अपमानकारी कानून को अमान्य करने की प्रेरणा दी। स्वयसेवकों से प्रतिज्ञा करायी कि वे इसका विरोध करेंगे और हँसते-हँसते जेल जायंगे। यह १८५७ के बाद पहला देशव्यापी आन्दोलन था। तब जवाहरलाल को उस नये व्यक्तित्व से एक नया और अपरिचित ही, परन्तु हृदय को अच्छा लगनेवाला स्वर सुनायी दिया, "जो कि दूसरे स्वरो से सर्वथा भिन्न था। वह शान्त और धीमा था परन्तु भीड़ की चिल्लाहट मे भी सुनायी पड़ता था, मधुर और कोमल था परन्तु उसमें इस्पात की कठोरता भी छिपी हुई थी,...... प्रत्येक शब्द अर्थ भरा और दृढ़ता-सूचक था, ...यह वचन की नहीं, कर्म की राजनीति का स्वर था।" जवाहरलाल जी ने भी गाधी जी का यह आह्वान सुना और उससे पुलकित हो उठे। वे तो तत्काल ही सत्याग्रह के इस नये सगठन मे भर्ती हो जाने के पक्ष मे थे—यौवन परिणाम को नहीं सोचता, उसकी भावुकता नये साहसिक कर्म के अवसर खोजती है। किन्तु अनुभवी मोतीलाल जी कानून-भग करने और साम्राज्य की शक्ति से लोहा लेने वाले इस आन्दोलन के परिणाम को खूब जानते थे। यह स्वाभाविक ही था कि वे अपने एकमात्र पुत्र के किसी भी ऐसे कार्य में सहयोग देने का विरोध करते।

गये रक्त ने महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन की शपथ को और पक्का कर दिया। अपनी अजेयता का दाम्भिक दावा करने में ही वृटिश सत्ता ने अपना समाधि-लेख भी तैयार कर लिया था।

सत्याग्रह आन्दोलन के कारण जो घटनाये घटी उनसे गांधी जी को गहरा क्षोम हुआ। उन्होंने यह स्वीकार किया कि उनसे महान् भूल हुई है। उनके अनुसार उन्होंने सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग ऐसे समय किया जब कि सम्पूर्ण देश उसके लिए तैयार न था; जिसके कारण ऐसे लोगों को गड़बड़ फैलाने का अवसर मिला जो वास्तव में सत्याग्रही नहीं, अपितु अवसरवादी थे। अतः उन्होंने आन्दोलन उचित समय तक के लिए स्थगित कर दिया।

कांग्रेस का अगला वार्षिक अधिवेशन अमृतसर में हुआ था। लोकमान्य तिलक तथा अन्य पुराने नेता भी उपस्थित थे, लेकिन भारत के राजनैतिक आकाश पर गांधी के रूप में एक नये सूर्य का उदय हो चुका था। सम्पूर्ण वातावरण 'गाधी जी की जय' के उस नारे से गूँजने लगा था जो १९४८ मे गाधी जी की मृत्यु के पश्चात् भी समाधि न ले सका और राजनीतिक वायुमंडल में, जन-जन के हृदय मे, अब भी गूँज रहा है। उनकी विचारधारा उस समय भारतीय विचार परम्परा को प्रभावित कर रही थी और कदाचित आज भी कांग्रेस की सबसे बड़ी पूँजी है।

अमृतसर कांग्रेस के सभापति पं० मोतीलाल नेहरू हुए। यहाँ का कार्यक्रम विशेष नहीं था, क्योंकि सारा देश 'हंटर कमेटी' की रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रहा था, जो पंजाब की दुर्घटना की जाँच के लिए नियुक्त हुई थी। अमृतसर की इस कांग्रेस में अली-बंधु भी उपस्थित थे जो अभी हाल मे ही नजरबंदी से छूटे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन एक नया रूप धारण कर रहा था और उसकी नयी नीति-निर्माण करने में गांधी जी का बहुत बड़ा हाथ था।

मौलाना मुहम्मद अली के खिलाफत-डेपुटेशन में योरोप चले जाने के पश्चात, भारत मे गाधीजी ने स्वयं खिलाफ आन्दोलन का साथ दिया

और काग्रेस से साथ देने की अपील की। खिलाफत आन्दोलन से सम्बंधित जो प्रार्थना पत्र वायसराय के पास भेजा जा चुका था, उसकी बहुत से शब्दों मे व्यक्त पर गोल-मोल और अस्पष्ट बातो, तथा बहुत सारी माँगो के गाधीजी खिलाफ थे। उन्होने स्पष्ट शब्दो में कह दिया था कि वह वायसराय से मिलने जाने वाली खिलाफत डेपुटेशन का साथ तभी देगे जब उसमे उनके कथनानुसार उचित रद्दोबदल किया जाय। बहुत वादा-विवाद के पश्चात् मुसलमानो ने उनकी बात मान ली और एक नया मसौदा तैयार कर वायसराय के पास भेजा गया जिसे गाधी जी ने मंजूर किया तथा डेपुटेशन का साथ दिया। परन्तु मुसलमानों की माँगे स्वीकार न हुई; फलस्वरूप आन्दोलन की बात उठी। गाधीजी ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि मै आपका नेतृत्व तभी कर सकूँगा जब आप अपने आन्दोलन मे अहिंसक नीति का पालन करें। काफी वादविवाद के पश्चात् मुसलमानो की ओर से यह प्रस्ताव भी मंजूर कर लिया गया। खिलाफत कमेटी ने १ अगस्त लड़ाई जारी करने का दिन मुकर्रर किया। यद्यपि सभी व्यक्तियां ने आन्दोलन निश्चित तारीख को आरम्भ कर देने के लए अपनी राय दे दी थी, परन्तु दिल ही दिल मे खिलाफत आंदोलन के सभी नेता डर रहे थे। इस कायर मनोवृत्ति और ऐसे वातावरण को देखकर युवक जवाहरलाल को उनपर एक अजीब सी खींझ और क्रोध उत्पन्न हो रहा था। वे सोचते थे क्या ऐसे ही लोग क्रान्तिकारी आन्दोलन के अगुवा होगे और बृटिश साम्राज्य को चुनौती देगें? कहाँ तो उन्होने सोचा था कि वहाँ जोश और उत्साह की गरमागरम भाषा और आँखो से आग की चिनगारियाँ निकलती मिलेगी और कहाँ उन्हे वहाँ इसके बजाय पालतू, डरपोक और अधेड लोगो का जमघट दिखलायी दिया।

१ अगस्त को गाधी जी ने असहयोग की शुरुआत की और बंबई में उसका नेतृत्व भी किया, जिसमे जवाहरलाल उनके साथ थे और असहयोग के उस वृहत् जुलूस मे शरीक भी हुए थे!

—o—

किसान-आन्दोलन के नेता

भारत का भविष्य किसानों के हाथ है (जवाहरलाल)

यह एक विचित्र बात थी कि कर्मक्षेत्र के वास्तविक दिशा—किसानों का नेतृत्व और उनके जागृति—की ओर मुड़ने के पूर्व, बुद्ध की भाँति जवाहरलाल जी को भी भारत के दरिद्र और दीनहीन कृषक और मजदूर वर्ग की वास्तविक स्थिति से विशेष परिचय न था। अन्य उच्च मध्यवर्गीय नेताओं की भाँति वे भी राजनीति-सागर की सतह पर ही हाथ पैर मारा करते थे। कल-कारखानो और खेतो मे काम करने वाले जर्द चेहरेवाले मजदूरो की वास्तविक दशा से अनभिज्ञ, उनका दृष्टिकोण भी कुछ कुछ मध्यम वर्गीय रईस नेताओं की भाँति था, जिनके मस्तिष्क में बहुत धुँधले स्वप्न की ही भाँति यह स्पष्ट चित्रित था कि उनका सोने का देश गरीब है, जहाँ बेकारी और भुखमरी है, और जिसका नेतृत्व उन्हें ही करना है। इस अज्ञानता का सब दोष इन नेताओं को ही नही दिया जा सकता। उन दिनो कोई भी ऐसा पत्र न था जो अंग्रेज अफसरों की खुशनुमा जिन्दगी और दिलपसन्द नाच गानों से भरी हुई उनकी पार्टियों की खबर छोड़ कर, इन करोडो भारत की पैबद लगी आत्मा की बात छापते। परन्तु पत्रो की यह स्थिति असहयोग आन्दोलन आरम्भ होने के पश्चात् अधिक दिन तक न रह सकी! हिन्दुस्तान के बढ़ते हुए राजनैतिक आन्दोलन तथा राष्ट्रीय प्रश्नों को अपने अखबार में अंग्रेजी पत्रों को भी स्थान देना पड़ा, क्योंकि यदि वे ऐसा न करते तो जागृति के फलस्वरूप देश की वास्तविक मौजूदा हालत जानने के लिए उत्सुक पढ़ी लिखी जनता उन्हें खरीदना-बंद कर देती, और उन्हें अपनी रोजी के लाले पड़ने पड़ते।

देश की इन करोडो जनता की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ आनन्द भवन में आराम कुर्सी पर बैठे तब के नेहरू एक भूली बात की तरह सोचा करते "उनके देश की जनता गरीब है और उनके दुख भयंकर हैं। राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान के आजाद हो जाने के बाद हमलोगो का पहला काम गरीबी के मसले को हल करना होगा।" उन्हें सबसे पहली सीढी तो राजनैतिक आजादी ही दिखलायी देती थी, जिसमें मध्यम वर्ग की प्रधानता हुए बिना नहीं रह सकती। वे गाधी जी के चम्पारन और खेडा आन्दोलन के पश्चात् किसान समस्या पर अधिक ध्यान देने लगे थे। फिर भी उनका ध्यान १६२० तक राजनैतिक बातो में और असहयोग के आगमन में लगा रहा जिसकी चर्चा से तत्कालीन वायुमडल भरा था। परन्तु १६२० में एकाएक एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना घटी, जिसने नेहरू की जीवन-धारा को मोड दिया। जिसने नेहरू के जीवन को रचनात्मक कार्यों की ओर आकर्षित किया और उनको गरीब देश के प्राण, किसानां और मजदूरों में ला खड़ा किया, जिनसे वे किताबी जानकारी के अलावा एक दम अनभिज्ञ थे। यह महत्वपूर्ण घटना थी नेहरू का मसूरी से निर्वासन।

पजाब से लौटने के पश्चात् नेहरू ने जब माँ और पत्नी के गिरे हुए स्वास्थ्य को देखा तो वे उन्हें लेकर प्रकृति की गोद—मसूरी—में पहुँचे और वहाँ सेवाद होटल में ठहरे। सरकार की क्रूर दृष्टि नेहरूजी पर पड चुकी थी और वह उन पर अपना दमन-चक्र चलाने की घात में थी। उन्हीं दिनो अफगान प्रतिनिधि मडल भी, जो बृटिश-राज-प्रतिनिधियों से संधि की शर्तों को निश्चित करने आया था उसी होटल में टिका था। जिले के अधिकारी प० जी की एकाएक उपस्थिति से भयभीत हुए—यद्यपि उनका यह भय निर्मूल था क्योंकि जवाहरलाल जी ने न तो उनमें से किसी प्रतिनिधि से बात ही की थी और न उन्हें किसी दिन देखा ही था। अधिकारियों ने पडित जी से यह वादा करने के लिए कहा कि वे अफगानियो के किसी प्रतिनिधि से बात न करेंगे। अफगान मडल से पूर्ण

अपरिचित होते हुए भी नेहरू जी को इस प्रकार का प्रस्ताव अपने सम्मान के विपरीत लगा। वे सिद्धान्त के दृढ़ थे, और सिद्धान्ततः इस आज्ञा को अनुचित समझते थे। अतः उन्होंने इस प्रकार के किसी भी प्रस्ताव में वचनबद्ध होने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप उन्हें २४ घंटे के अन्दर ही राजाज्ञा से, माता, पत्नी और बहन को बीमारी हालत मे छोड़कर, मंसूरी से हट जाना पडा। पिता और पुत्र ने तत्कालीन युक्तप्रान्तीय गवर्नर सर हारकोर्ट बटलर को सूचित किया कि चाहे वे इस प्रकार की आज्ञा रद्द करे या न करें; जवाहरलाल, माँ और पत्नी की हालत खराब होने पर, आज्ञा की अवज्ञा कर के भी मसूरी अवश्य जायेंगे। हुक्म वापस ले लिया गया और जवाहरलाल अपने उस छोटे से परिवार से मिलने फिर मसूरी जा पहुँचे। इस घटना से जवाहरलाल जी के सिद्धान्त प्रेम, स्वातंत्रप्रियता और आत्मसम्मान का परिचय मिलता है।

मसूरी-निर्वासन-काल मे ही प० जवाहरलाल नेहरू अचानक ही किसान-आन्दोलन मे जा पडे। जून १९२० के आरम्भ मे, एक दिन एका-एक प्रतापगढ़ के करीब दो सौ किसान-करीब ५० मील चल कर प्रयाग मे किसी उच्च नेता का, अपने प्रति किये जाने वाले जमींदारो के जुल्मों की की ओर ध्यान आकर्षित कराने के उद्देश्य से आये। यमुना-घाट पर उनकी श्री जवाहरलाल से भेंट हो गयी। उन्होंने उनसे गाँवो मे आकर अपने प्रति किये जा रहे अत्याचारों का विरोध करने का वादा करा लिया।

जवाहरलाल जी ने पहले पहल भारत की जनता-जनार्दन की झलक जाकर उन गाँवों मे देखी। उनके आगमन से सम्पूर्ण देहात में उत्साह की एक लहर फैल गयी। उनके आह्वान पर प्रेममग्न जनता की उच्च 'सीताराम' की धुन सुन पड़ती, जो आकाश मे गूँज उठती और चारो तरफ दूर-दूर तक फैल जाती। दूसरे गाँव से उसी की प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती और अपार जन-समुद्र उन्मुक्त अजस्र-धारा की भाँति दौड़ा चला आता। मर्द, औरत और बच्चो की फटी आँखो मे एक नवीन ज्योति दिखलायी पडती, मानो वे किसी देवदूत का पावन सन्देश सुन रहे हो।

वास्तविकता के उस दर्पण मे देश का स्वरूप देखकर नेहरू का भावुक हृदय दुःख से रो उठता। उन्ही के शब्दो मे "मुझे दुःख तो हिन्दुस्तान की जबरदस्त गरीबी और जिल्लत पर, और शर्म मेरी अपनी आराम की जिन्दगी पर और शहरो की उस बेकार राजनीति पर आता था, जिसमें भारत के इन अधनंगे करोड़ों पुत्र-पुत्रियों के लिए कोई स्थान न था।" उसी दिन से उनके युवक दिल ने उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी महसूस की, और अब तक उसे अपने दिल के एक कोने मे पाले वे उस पर अमल करते रहे।

इस नये कर्म-ज्ञान ने उनके दिल में एक नयी ज्योति जगा दी। अतः उन्हें उन गंदे मनुष्यो के बीच कंधे से कधा मिड़ाकर काम करने मे शर्म और सकोच नहीं मालूम होने लगा। गर्मी की तेज धूप और दुपहरिया की तपन मे वे उनकी दर्द कहानी सुनते और अपनी मधुरवाणी से उनके दिल के फफोलों पर मरहम लगाते। उन्ही के साथ गॉव-गॉव घूमते, खाते और कच्चे झोपडे मे सो रहते। खुफिया पुलिस उनके इन कामों को सन्देह की निगाह से देखती और उनके पीछे-पीछे घूमा करती। नेहरु उस निष्कपट और सच्ची जनता के सामने प्रभावशाली ढंग से भाषण देते, यद्यपि उनकी सब बातें जनता की वह भीड़ न सुन पाती, न समझ पाती, लेकिन जैसे उसका दिल, एक एक रोआ उसके मस्तिष्क के अनजाने मे उस तेजस्वी नवयुवक को बात समझ जाता, उसे पी जाता।

दुनिया के हर एक क्रान्तिकारी देश को, जिसने विदेशी सत्ता से अपनी स्वतन्त्रता के लिए मोर्चा लिया, विधाता ने ऐसे ही नेता प्रदान किये थे, जो देश के किसान और मजदूर में, दलित वर्गों में, जाग्रिति उत्पन्न कर सके। असली क्रान्ति तो वास्तव मे वही है जो इन अशिक्षित क्रान्तिकारियो के बीच उत्पन्न की जाये। इसीलिए गॉधी और लेनिन ने भी श्रमजीवी आन्दोलन को ही मुख्य रूप से अपनी क्रान्ति का आधार बनाया था। नेहरू ने भी अहिंसक क्रान्ति-प्रचार के इस कार्य में प्रमुख हॉथ बटाया।

पीडित किसानो में एक नया आत्म विश्वास पैदा हुआ और वे सिर ऊँचा करके चलने लगे। जमींन्दारों के कारिन्दो, और पुलिस का डर उनके दिलो में कम हो गया। यदि किसी किसान का खेत बेदखल कर लिया जाता तो दूसरा किसान उसे लेने से इनकार कर देता। जमींदारो के नौकरो का उन्हें मारना पीटना तथा बेगार आदि लेना काफी कम हो गया। जब कोई इस प्रकार की घटना होती तो उसकी जॉच करने का प्रयत्न किया जाता। इससे जमीन्दारो के कारिन्दो और पुलिस के अत्याचार बहुत घट गये। जमीदार और ताल्लुकेदार घबडाये और अपनी रक्षा का उपाय ढूढ़ने लगे। नेहरू के प्रभाव से किसान आन्दोलन का प्रबल वेग बढ़ते देख, शकित सरकार ने अवध-कास्तकारी-कानून में सुधार करने का वादा किया। कृषक-क्रान्ति का सन्देश दूर-दूर तक के गाँवो में पहुँच गया और किसान पहली बार अब सरकारी आज्ञाओं पर प्रश्न और आपत्ति करने का साहस करने लगे।

'स्वराज्य' एक ऐसा व्यापक शब्द है जिसमे सब कुछ आ जाता है, फिर भी उन दिनों दोनो आन्दोलन—असहयोग और किसान आन्दोलन —बिलकुल अलग-अलग थे। यद्यपि सयुक्तप्रान्त मे दोनो ही एक दूसरे पर पर्याप्त असर डालते थे। काग्रेस के प्रचार, और नेहरू आदि के इन कार्यो का परिणाम यह हुआ कि ग्रामीणो के बीच होने वाली आपसी मुकदमेबाजी एकबारगी कम हो गयी। गॉवों मे पंचायते कायम हो गयी, जो अपने बीच के झगड़ो का फैसला स्वय करने लगे। काग्रेस का असर शान्ति के हक में खास तौर पर ज्यादा पडा, क्योकि जहॉ भी कोई काग्रेसी काय करने जाता वहॉ वह इस नये अहिन्सा के सिद्धान्त पर अधिक जोर देता, इससे किसानो के बीच होने वाले युद्ध अवश्य कम हो गये।

भारत विशेषतः कृषि प्रधान देश है। यहॉ की ८५% जन-सख्या गॉवो मे निवास करती है। तीन चौथाई जन संख्या खेतिहर है, शेष एक चौथाई जन-सख्या भी उन्हीं के खून और पसीने पर आश्रित है। स्वयं जवाहरलाल जी के ही शब्दो मे "सरकार की सारी मशीन किसानो

के पैसे से ही चल रही है। फौज व्यय में, वायसराय, गवर्नरों और दूसरे अफसरों की लम्बी चौडी तन्खाहों मे जो रुपया खर्च किया जाता है वह कहाँ से आता है ? भारत के दरिद्रतापूर्ण देहातो से। हमारे शहर देहातो के व्यय पर ही गुजर बसर करते है।" अस्तु, भारत के किसानो के उद्धार और भारत के उद्धार का अर्थ एक ही है। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखकर संयुक्तप्रान्त, और विशेषतः अवध के किसानो को उन्नतिशील बनाने के लिए महामना मालवीय जी के प्रयत्न से १९१५ मे किसान सभा की स्थापना हुई थी। आगे चलकर इसके श्री जवाहरलाल जी उपसभापति भी हुए थे। किसान-समस्या के सम्पर्क मे आने के पश्चात् उन्हें इन भुखमरो से स्वाभाविक प्रेम हो गया था। तत्कालीन समाज, पूर्जीवाद और बृटिश सरकार से उन्हें पूर्णतः घृणा हो गयी थी, और वे उस व्यवस्था को, जो इन सभी की कारण थी, समूल उखाड़ फेकना चाहते थे। वे इसमें पूर्ण रूप से लग भी गये और किसानो को उनकी वास्तविक दशा का ज्ञान कराने लगे। वे अहिंसक क्रान्ति का संदेश पहुचाते जो किसानो के बीच एक विचित्र जोश भर देता था। नेताओ की एक पुकार पर वे सब कुछ समर्पित करने के लिए तैयार थे। एक चिनगारी पड़ने की देर थी कि आग धधक उठती। फिर भी उन्होंने गजब की शान्ति दिखलायी। यद्यपि कभी-कभी यह अग्नि कुछ छुट-पुट रूप मे फूट पड़ती।

परन्तु अशान्ति की यह वह्नि अधिक दिन तक दिल में न दब सकी। १९२१ की जनवरी मे रायबरेली का हत्या काड हुआ, जो इस आन्दोलन की एक प्रमुख घटना है। अवध के एक ताल्लुके के राजा साहब अत्यधिक विलासी थे, और अपनी रानी को बहुत ही कष्ट देते थे। रानी ने अपने पति के विरुद्ध गाँव की पंचायत से अपील की, पचो ने रानी के पक्ष मे फैसला दिया और राजा को पंचायती न्याय मानने के लिए मजबूर किया। राजा उस समय मान गये पश्चात् पुलिस को 'बगावत' की सूचना देकर, उन पंचों और किसानो के कुछ अन्य नेताओ को गिरफ्तार करा दिया। असंतुष्ट किसानो की अपार भीड़ रायबरेली जा पहुँची। सरकार भी बे-

सुध न थी, किसानों को तुला हुआ देखकर उसे बलवा होने का पूरा भय था। सशस्त्र पुलिस और फौज के जवान उस निहत्थे जनसमूह के विरुद्ध पुल के इस पार तैनात किये गये, किसान-नेताओं और पंचों को छोड़ने की मॉंग करते और पुलिस शस्त्र का भय दिखला कर उन्हें तुरन्त लौट जाने की आज्ञा देती। स्थिति की गम्भीरता देखकर नेहरू जी को प्रयाग पहले ही तार दिया जा चुका था। वे नागपुर कांग्रेस से थक कर लौटे ही थे कि उन्हें तार मिला। नेहरू जी तुरन्त ही रायबरेली की ओर चल पड़े। स्टेशन पर पहुँचते ही उन्हें स्थिति की गम्भीरता की खबर लगी, वे फौरन ही नदी की ओर चल पड़े जिधर सशस्त्र फौजी पुलिस किसानों का सामना करने के लिए खड़ी थी। रास्ते में उन्हें जिला मजिस्ट्रेट का एक लिखित आज्ञा-पत्र मिला कि तुम तुरन्त वापस लौट जाओ। अपने संकट का ख्याल न करते हुए नेहरू जी ने तुरन्त ही उस पुरजे की पीठ पर यह लिखकर, कि 'आप कानून की किस धारा के अनुसार मुझे, वापस लौटाना चाहते हैं बिना यह जाने मैं अपना कार्य जारी रखूँगा' उस पुरजे को संदेश वाहक के हाथ में वापस लौटा दिया। नेहरूजी ने उसपार किसानों के बीच पहुँचने की बहुत चेष्टा की, किन्तु एक फौजी सिपाही द्वारा वे बल-पूर्वक रोक लिए गये। अपार भीड़ पर जिस समय गोली चली, उनका हृदय टूट गया, प्रत्येक गोली जो किसानों को लगी सदा के लिए उनके दिल में बैठ गयी। ५ मिनट तक गोली चलती रही। घबड़ाये हुए किसानों का जत्था उन्हें देख कर एक नवीन आशा से उनकी ओर दौड़ा। उन्होंने तत्काल कुछ हजार किसानों को जमा कर अपने शब्दों से उनकी उत्तेजना और डर कम करने का प्रयत्न किया। नेहरू के जीवन में यह पहला अवसर था जब उन्होंने अपने निहत्थे भाइयों पर नृससता के साथ इस प्रकार गोली चलते देखा था। सारे हिन्दुस्तान की दृष्टि में यह क्षोभप्रद घटना बड़ी मामूली समझी गयी और उसपर कुछ भी ध्यान न दिया गया। यहाँ तक कि अखबारों ने भी उसे एक महत्वहीन घटना समझा और अपना 'सम्मानित पत्र' ऐसी 'छोटी और अनर्गल बातों' से भरना

ठीक न समझा, इन सम्पादकों और अधिकांश शहराती पाठकों के लिए नंगे किसानों की जमातों के उन कामों में कोई 'असली राजनीतिक' या दूसरे प्रकार का महत्व नहीं छिपा था।

किसानों का आन्दोलन प्रबल वेग से बढ़ता रहा। सरकार भी इसे पूर्ण रूप से कुचल देने के लिए कटिबद्ध हो चुकी थी, रायबरेली में दो बार और गोली चली। प्रमुख किसान कार्यकर्ता तथा पंचायत के सदस्य गिरफ्तार होने लगे। कांग्रेस की प्रेरणा से किसानों में चरखा चलाने की प्रवृत्ति आ गयी थी; परन्तु अब जिस ग्रामीण के घर में पुलिस चर्खा देखती, उसे गिरफ्तार कर लेती या अन्य प्रकार से कष्ट देती। बहुतेरे चरखे जला दिये गये। सैकड़ों गिरफ्तारियाँ हुईं और दमन-चक्र का वेग प्रबल हो उठा। किसान-आन्दोलन की सफलता का यही प्रमाण था कि सरकार की बहुमुखी दमन-शक्तियाँ कृषकों को कुचलने में लगी थीं। यद्यपि जाहिर तौर पर यह आन्दोलन बहुत कुछ दब गया, परन्तु कृषकों के हृदय में दमन के साथ असंतोष भी तीव्रता से बढ़ता रहा, और देखते-देखते वह आन्दोलन देश व्यापी हो गया। कांग्रेस के अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ जनतंत्रवादी, समाजवादी, साम्यवादी और क्रांतिकारी सभी प्रकार के आन्दोलन बृटिश सत्ता की जड़ हिलाकर खोखली करने लगे, और देश तीव्रता से स्वतंत्रता एवं समानता की ओर बढ़ने लगा।

—※—

असहयोग-आन्दोलन और जेलयात्रा

असहयोग वह भावना है जो हमे बताती है कि हमारे लिए, विदेशियो को अपनी हुकूमत हम पर जमाये रखने मे सहायता पहुँचाना खतरनाक और शर्मनाक है। (सिर्ल।)

अमृतसर की खूँरेजी ने देश में असन्तोष की आग फूँक दी थी। रौलट एक्ट और मार्शल ला लोगो के हृदय से विष-बाण की तरह चुभ गये थे। जलियाँवाले बाग के हत्यारे डायर को उचित दंड न देकर बृटिश सरकार ने प्रत्येक स्वाभिमानी भारतवासी को अपना शत्रु बना लिया था। मुसलमान, तुर्की के खिलाफत के प्रश्न को लेकर बृटिश सरकार पर बिगडे हुए थे। भारतीय जनता मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधारो से असन्तुष्ट होकर राजनैतिक समस्याओ का स्वय ही निबटारा कर लेने पर तुली हुई थी। इन गुत्थियो को सुलझाने के लिए महात्मा गाधी ने उचित अवसर पर देश का नेतृत्व कर, उसके समक्ष असहयोग का कार्यक्रम उपस्थित किया।

गाधी जी के नेतृत्व में अटल विश्वास होने के फलस्वरूप, असहयोग आन्दोलन की सफलता और सिद्धान्त के प्रति कुछ शंका होने के पश्चात् भी, नेहरूजी ने उसमे आरम्भ से ही सहयोग दिया, और उसके प्रचार मे प्राणप्रण से जुट गये; यद्यपि नेहरूजी को किसी देश के स्वातन्त्र-युद्ध मे, अहिंसात्मक असहयोग से विशेष कार्यसिद्धि होने पर विश्वास नही था। उन्ही के शब्दों मे "मै जिस बात का आदर करता था वह था उस आन्दोलन का नैतिक और सदाचार सम्बन्धी पहलू तथा सत्याग्रह। मैने अहिंसा के सिद्धान्त पर सोलहो आने नही विश्वास कर लिया था, लेकिन हाँ, वह मुझे अधिकाधिक अपनी ओर खीचता जा रहा था, और यह विश्वास मेरे

दिल में पक्का बैठता जा रहा था कि हिन्दुस्तान की जैसी परिस्थिति बन गयी है, हमारी जैसी परम्परा और संस्कार है, उन्हें देखते हुए यही हमारे लिए सही रास्ता है।" और अंत में नेहरूजी ने यही रास्ता पकड़ना उचित समझा, जिसकी ओर बढ़ने के लिए देश के राजनैतिक चौराहे पर खड़े सर्वशक्तिमान नेता गांधी ने इंगित किया था।

यों तो अहिंसात्मक असहयोग का उद्देश्य परतंत्र भारत की बेड़ियों को तोड़ने की गरज से अंग्रेजों से लोहा लेना था: परन्तु उस समय कांग्रेस के सामने दो बड़े प्रश्न थे—पंजाब का हत्याकांड और तुर्की की खिलाफत। उन्हीं के हल के लिए इस आन्दोलन का संगठन और नेतृत्व करने का महात्मा गांधी ने निश्चय किया।

असहयोग-आन्दोलन के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक काशी में हुई। कमेटी ने कार्य-क्रम स्वीकार करते हुए पुनर्विचार के लिए कांग्रेस महासभा का विशेष अधिवेशन कलकत्ते में बुलाना निश्चित किया। सितम्बर १९२० में, कलकत्ता में कांग्रेस का यह पूर्व निश्चित विशेष अधिवेशन लाला लाजपतराय के सभापतित्व में हुआ, जो लम्बे अरसे तक देश से बाहर रहने के पश्चात् हाल में ही अमेरिका से लौटे थे। अधिवेशन में असहयोग के कार्य-क्रम पर प्रकाश डालते हुए गांधी जी ने हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमों से, एक साथ कंधे से कंधा भिड़ाकर आन्दोलन को सफल बनाने की अपील की। उनके अनुसार असहयोग का अर्थ था, शासन यंत्र के संचालन में देश का एक बच्चा भी सरकार का साथ न दे। भारतीय सरकारी नौकर नौकरी छोड़ दें, वकील ब्रिटिश पक्षपात पूर्ण अदालतों में वकालत छोड़ दें। विद्यार्थीगण गुलामी सिखलाने वाले शिक्षा-क्रम से नाता तोड़ लें। प्रत्येक विदेशी वस्तु, और विशेषतः विदेशी वस्त्रों का पूर्ण बहिष्कार किया जाये, और खद्दर को देश का कौमी वस्त्र समझ कर अपनाया जाये। ग्रामीण अपने झगड़ों का फैसला पंचायतों द्वारा करें कौंसिल और उनके चुनाव में भाग लेना त्याज्य समझा जाये।

तत्कालीन कलकत्ता-कांग्रेस के अध्यक्ष तिलक को सहयोग की यह नयी योजना नापसद थी। कांग्रेस के अन्य पुराने प्रतिभाशाली महारथियों के साथ उन्होंने इस नीति का विरोध किया। स्वयं देशबन्धु श्री चितरंजन दास उस विरोध के अगुआ थे, उनका विरोध इसलिये नहीं था कि वे उस आन्दोलन के मूलभाव को नापसंद करते थे—वे तो उस हद तक, बल्कि उससे भी आगे जाने के लिये तैयार थे, वे विरोध खासकर इसलिये कर रहे थे की नयी काउन्सिलों के बहिष्कार पर उन्हें एतराज था। इन सब विरोधो के होते हुये भी श्री मोतीलाल जी ने गांधीजी का साथ दिया अन्त मे उस अधिवेशन में कुछ चोटी के नेताओं—लाला लाजपत राय देश बन्धुदास, श्री मदन मोहन मालवीय आदि—को छोड़कर असहयोग का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस के सदस्य कार्यक्रम को जी जान से पूर्णतः सम्पन्न करने के लिये तत्पर हो गये। सारा देश गांधी की पुकार पर असहयोग के लिये तत्पर हो गया। योग्य नेता के नेतृत्व मे देश मे संगठन आरम्भ हुआ और काश्मीर से कन्याकुमारी तक असहयोग की प्रचड अग्नि जल उठी। गांधी ने अपनी गम्भीर वाणी से भारत की शत-शत जनता के हृदय मे अमूल्य मंत्र फूंका "आजाद हो जाओ, गुलाम मत बने रहो।" हिमालय से टकराकर वह बुलन्द आवाज देश के कोने-कोने तक फैल गयी, और उसकी गम्भीर प्रतिध्वनि से सोये हुये जड राष्ट्र की हृततंत्री झन-झना उठी। नेहरु की आत्मा भी परतंत्रता के असह्य बोझ से छुटकारा पाने की उम्मीद मे खुशी से नाच उठी। एक आकस्मिक झटके के साथ भारतमाता की बेड़ियाँ ढीली होने लगी, और आजादी का विशाल सिह-द्वार धीरे-धीरे खुलने लगा।

बृटिश साम्राज्यवादी शक्ति से जोरदार टक्कर लेने के एक नये रास्ते, 'आसहयोग' को पाकर, अन्य नवयुवको की भाँति जवाहरलाल का भी गर्म और जवान खून और तेजी से उनकी नसों मे दौड़ने लगा। उन्हीं के शब्दो मे, "हमारे उत्साह, साहस और आशावाद का कुछ ठिकाना न था। हमें ऐसे सुख और आनन्द का अनुभव हो रहा था

जैसे हम किसी शुभ कार्य के लिये धर्म-युद्ध में जा रहे हों। हमारे मन में उस समय संकोच और शंका के लिये स्थान न रह गया था। हमारे सामने हमारा मार्ग एक दम स्पष्ट हो गया था, और हम एकदम आगे बढ़े चले जा रहे थे।............हम जानते थे कि एक शक्तिशाली सरकार से शीघ्र ही मुकाबला होनेवाला है, और इससे पहले की सरकार हमें अलग कर दे (अर्थात् जेल में बन्द कर दे) हम अधिक से अधिक कार्य कर डालना चाहते थे।............इन सब बातों से बढ़ कर हमारे अन्दर आजादी का, और आजादी के गर्व का भाव आ गया था। वह पुराना भाव कि हम दबे हुये हैं, और हमें कामयाबी नहीं मिल सकती बिलकुल मिट गया था।"

कलकत्ता के उस विशेष अधिवेशन तथा असहयोग की सफलता ने कांग्रेस की राजनीति में गांधी-युग का आरम्भ किया। असहयोग के तीन मास के सफल आन्दोलन के पश्चात्, दिसम्बर १९२० की नागपुर कांग्रेस में, कलकत्ता कांग्रेस में उसकी उपयोगिता पर संदेह करने वाले देशबन्धु दास आदि अनेक नेताओं ने, उसके समर्थन को मान लिया। तथा चुनाव हो जाने के बाद मतभेद भी दूर हो गया और नागपुर कांग्रेस के इस अधिवेशन में फिर बहुत से पुराने कांग्रेसी नेता असहयोग के मंच पर आ कर मिल गये। इस आन्दोलन की कामयाबी ने बहुतेरे अवि-श्वास और संदेह रखने वालों को इसका कायल कर दिया। फिर भी कल-कत्ते के कुछ पुराने नेता इस नये आन्दोलन के फलस्वरूप कांग्रेस से पीछे ही रहे; जिनमें एक मशहूर और लोकप्रिय मुसलिम नेता थे श्री जिन्ना। नेहरू जी के शब्दों में इसका कारण "कांग्रेस का पूर्णतः जनता का संगठन बन जाना था, जो उन्हें कतई नापसंद थी" अब तक जनता के ये नेता जनता के सम्पर्क से दूर ही थे। अतः यह नवीन वातावरण उन्हें कुछ अजीब तथा अपनी राजनीति के प्रतिकूल सा लग रहा था। "कांग्रेस के इस नये रंग-रूप से उनके स्वभाव का मेल न खाता था। उन खद्दरधारी मन्डली में, जो हिन्दुस्तानी में व्याख्यान देने की माँग

करता था, वे अपने को बिल्कुल बेमेल पाते थे। बाहर लोगों में जो जोश था वह उन्हें पागलों की उछल कूद सा मालूम होता था। उनमें और भारतीय जनता में उतना ही फर्क था जितना कि सेवाइल रोड स्ट्रीट में और भारत के झोपड़े वाले गांवों में है।" इनके अतिरिक्त माडरेट लोग अब पूर्णतः कांग्रेस से अलग हो गये थे तथा इस दल के अधिकतर नेताओं ने राजनीति के रंगस्थल को प्रायः त्याग ही दिया था।

परन्तु यह सब तुच्छ छायाएँ असहयोग के तीव्र तेज को रोक न सकीं। आन्दोलन बढ़ता ही गया और वह पूर्ण रूप से देश व्यापी हो गया। नेहरू जी आदि अनेक वकीलों ने असहयोग के कार्यक्रम के अनुसार अदालत से नाता तोड़ लिया, और अपनी सम्पूर्ण शक्ति कांग्रेस महासभा के सत्कार्य और सेवा में लगा दिया। पं० जवाहरलाल उन दिनों युक्त प्रान्तीय कांग्रेस के महामंत्री थे। प्रान्त के सारे संगठन का भार उन्हीं के कन्धों पर था। नयी कमेटियों को स्थापित करना, प्रान्तीय कार्यालय का सारा कार्य निपटाना, और प्रान्त में घूम घूम कर प्रचार करना उनका दैनिक कार्यक्रम था। 'उनका अविश्रान्त परिश्रम, उनके हृदय का अगाध प्रेम, उनकी तेजी, फुर्ती और गम्भीरता देखकर सहकारियों का हृदय बल्लियों उछल जाता था, उनकी उपस्थिति उनमें उत्साह फूंक देती थी। खादी प्रचार, मद्य-निषेध, पंचायतों की स्थापना, अहिंसात्मक अवज्ञा की तैयारी और किसानों द्वारा कर न देने की व्यवस्था, सभी ओर वे पर्याप्त ध्यान देते थे, और जनता का अभूतपूर्व सहयोग पाकर वे सफलता की सीढ़ियाँ लाँघते अपने लक्ष्य की ओर चले जा रहे थे।' सारे देश में एक बवंडर सा आया था। आधुनिक शासन सत्ता के प्रति लोगों के हृदय में अविश्वास और घृणा के भाव भर गये थे और भारत का बच्चा-बच्चा अपने जीवन की बलि देने के लिए प्रस्तुत था। एक सिरे से दूसरे सिरे तक भारतीय जनता माता को दासता-शृंखला से मुक्त करने के लिए पागल हो रही थी। ज्यों-ज्यों सत्याग्रहियों का नैतिक तेज बढ़ता गया त्यों-त्यों सरकार का तेज घटता गया। नौकरशाही के बल पर चलने वाली सरकार

को ऐसा लग रहा था कि हिन्दुस्तान में उसकी परिचित पुरानी हुकूमत की दुनियाँ दिन-प्रतिदिन ढही जा रही है। हिन्दुस्तानियों में दूर-दूर तक एक नया आक्रामक भाव—आत्मावलंबन और निर्भयता का भाव—फैल रहा था, और भारत में बृटिश हुकूमत का बहुत बड़ा सहारा—'रौब'—स्पष्टतः दूर होता जा रहा था। थोड़े बहुत दमन से आन्दोलन उलटे बढ़ता ही जा रहा था। सरकार बहुत दिनों तक बड़े-बड़े नेताओं पर हाँथ डालते हिचकती रही वह नहीं जानती थी कि उसका अंतिम परिणाम क्या होगा। दिसम्बर १९२१ में लार्ड रीडिंग ने तो यहाँ तक कहा था हम हिन्दुस्तान की मौजूदा हालत से "हैरान और परेशान हो रहे हैं।" इन अंग्रेजी शासकों के इशारे पर दुम हिलाने वाला पुराना पालतू भारत, अहिंसात्मक विद्रोही के रूप में अब उन्हें अपरिचित सा, भय उत्पन्न करने वाला लग रहा था। बृटिश पार्लियामेन्ट में भारत-मंत्री श्री मांटेग्यू पर असहयोग आन्दोलन बढ़ने के कारण प्रबल आक्षेप हो रहे थे। पर दुनिया जानती है इसमें बेचारे मांटेग्यू का कोई दोष न था।

उन्हीं दिनों १९२१ की गर्मियों में, युक्तप्रांतीय सरकार की ओर से जिला अफसरों के नाम, आन्दोलन दबाने के हेतु, एक हिदायती गुप्त गश्ती चिट्ठी भेजी गयी; पर आन्दोलन बराबर बढ़ता रहा और वह एक तीव्र प्रकाश की तरह कुशासन की कालिमा पर ऐसा छा गया कि निरंकुश बृटिश शासकों की आँखें चकाचौंध हो गयीं, और वे किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह चारों ओर हाँथ-पाँव फेंकने लगे। हाकिमों के हृदयाकाश पर चिन्ता के घने बादल मड़रा रहे थे; फिर भी चूँकि कांग्रेस के साधन शान्तिमय थे, उन्हें उसका मुकाबला हिंसात्मक ढंग से करने और जोर के साथ उसे दबाने का मौका नहीं मिलता था।

असहयोग के इस आन्दोलन ने नेहरू को कार्य करने की एक नयी शक्ति प्रदान की। स्वयं उन्हीं के शब्दों में "असहयोग आन्दोलन ने मुझे वह चीज दी जो मैं चाहता था, वह था कौमी आजादी का ध्येय तथा निचले दर्जे के लोगों के शोषण का अंत, और ऐसे साधन जो मेरे नैतिक

भावों के अनुकूल थे तथा जिन्होंने मुझे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का ज्ञान कराया था। इससे मुझे व्यक्तिगत संतोष इतना अधिक मिला कि आन्दोलन के नाकामयाबी के अंदेशों को भी मैं अधिक महत्व न देता था; क्योंकि ऐसी असफलता तो थोड़े समय के ही लिए हो सकती है।"

नेहरू जी स्वयं जी-जान से असहयोग में लगे हुए थे। उन्होंने अपने सब निजी कार्य और सम्बंध, पुराने मित्रों और पुस्तकों का पठन पाठन भी कुछ समय तक के लिए स्थगित कर दिया था। देश और ससार की आवश्यक घटनाओं को जानने के लिए वे केवल समाचार पत्र पढ लिया करते थे। व्यक्ति एक पारिवारिक जीव है। उसमे कौटुम्बिक मोह स्वभाव से ही कुछ अधिक है, पर नेहरू उस आन्दोलन की तीव्रता मे परिवार, पत्नी और प्यारी पुत्री को भी भूल से गये थे। गाधी के नेतृत्व ने उन्हें अपना न रहने दिया था, अब वे एकमात्र राष्ट्रीय सम्पत्ति थे। वह एक व्यक्ति, एक इकाई ही नही रह गये थे, बल्कि भारत के लिए मूर्तिमान आदर्श स्वरूप थे। भारत की भावी धुधली आशाओं का मूर्त रूप उनमें केन्द्रित हो चुका था। कार्यालय, कमेटी और भीड़ का व्यस्त जीवन उनका घर बन गया था। हिमालय के उच्चतम शिखर पर खड़े किसी कर्मयोगी की आवाज की भॉति, गाधी का "गॉवो मे जाओ" स्वर गूँज उठा था, इस स्वर की मद्र ताल पर पैदल ही गॉव की सोंधी मिट्टी कोसो पार कर नेहरू पहुँचते और सरल ग्रामीणो के श्रद्धानत दिल मे वे अपनी स्वरशक्ति से शोले दहका देते।

सरकार अपनी सत्ता की नींव को हिलाते देखकर ऑख मूँदे बैठी कैसे रह सकती थी? असहयोग-आन्दोलन और दमन-चक्र दोनो ही तेजी के साथ चले, लगता जैसे दोनो मे एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की होड़ सी लगी है। सन् १९२१ के वर्ष भर में काग्रेस कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियॉ और सजाये होती रही मगर अब तक सामूहिक गिरफ्तारियॉ नही हुई थी। अली बधुओं को हिन्दुस्तानी फौज मे असन्तोष पैदा करने के जुर्म मे लम्बी-लम्बी सजाये दी गयी थीं। जिन शब्दो के लिए उन्हें सजा मिली

थी उन्हीं को अनेक मंचों से शत-शत नेताओं के कल-कंठों ने फिर से दुहराया। नेहरू पर भी अंततः ग्रीष्म में राजद्रोहात्मक भाषणों के लिए मुकदमा चलाने की धमकी दी गयी। सरकार धमकियों से उस सिंह को दबाना चाहती थी जिसकी दहाड़ से उनका दिल काँप रहा था। परन्तु उस समय सरकार ने न जाने क्या सोचकर उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई न की।

उन्हीं दिनों 'प्रिन्स आफ वेल्स' हिन्दुस्तान आनेवाले थे। कांग्रेस ने उनके आगमन के संबंध में की जानेवाली सभी कार्रवाइयों के बहिष्कार की अपील जनता से की। सरकार सात समुद्रपार से आनेवाले अपने युवराज का धूमधाम से स्वागत करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी। उसने साम, दाम, दंड, भेद, सभी नीतियों से कार्य लेकर आन्दोलन और बहिष्कार की इस उग्रता को दबाना चाहा। फलस्वरूप नवम्बर के अंत तक बंगाल में, कांग्रेस स्वयंसेवक-दल गैरकानूनी करार कर दिया गया, और इसके बाद युक्तप्रांत में भी ऐसी ही घोषणा की गयी। देशबंधु चितरंजन दास ने उस समय समस्त बंगाल को एक मर्मस्पर्शी संदेश दिया, "मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरे हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी हुई हैं, और मेरा सारा शरीर लोहे के वजनी जंजीरों से जकड़ा हुआ है। यह है दासत्व की वेदना और यंत्रणा। सारा हिन्दुस्तान एक बड़ा कारावास हो गया है। कांग्रेस का कार्य हर हालत में जारी रहना चाहिए। इसकी परवाह नहीं कि मैं पकड़ा जाऊँ। इसकी भी चिन्ता नहीं कि मैं मर जाऊँ या जिन्दा रहूँ।" इसके पश्चात् बंगाल में, विशेषतः कलकत्ते में आन्दोलन ने ऐसा जोर पकड़ा कि गवर्नमेन्ट हाउस की दीवारों के भीतर बैठे अंग्रेज अफसर घबड़ा गये। देश के अन्य भागों की तरह युक्तप्रान्त में भी आन्दोलन की गति बहुत तीव्र थी। नेहरू स्वयं एक पटु नेता की तरह सर्वत्र दौड़-दौड़ कर संगठन कार्य में व्यस्त रहते थे। प्रान्तीय कांग्रेस ने घोषणा की कि स्वयं सेवकदल का संगठन कायम रहेगा। दैनिक पत्रों में स्वयंसेवकों की नामावलि भी प्रकाशित हो गयी जिसकी सूची में सर्व प्रथम नाम मोतीलाल

नेहरू का था। वह यद्यपि स्वयं स्वयंसेवक नहीं थे, पर केवल सरकारी आज्ञा की अवज्ञा करने के लिए उन्होंने स्वयंसेवकों में अपना नाम प्रकाशित कराया था। दिसम्बर के प्रारम्भ में युवराज के आगमन के कुछ दिन पूर्व सामूहिक गिरफ्तारियाँ आरम्भ हो गयीं।

परिस्थितियों को देखते हुए सभी व्यक्तियों का यह अनुमान हो गया था कि जीत और हार का पासा पड़ गया है; कांग्रेस और सरकार ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति दॉव पर लगा दी है। प्रत्यक्ष संघर्ष आरम्भ होने वाला है। तटस्थ गण भी इसके लिये पूर्णरूपेण तैयार बैठे थे।

नेहरू जी के लिए जेल एक अपरिचित स्थान था। परन्तु सरकार के लिए उनके कार्य असह्य हो गये थे, और उसमें उसे शासन सत्ता के प्रति विद्रोह की गन्ध आने लगी थी। ६ दिसम्बर १६२१ के दिन प्रयाग में गिरफ्तारियाँ आरम्भ हो गयी: चुन-चुन कर प्रान्त के सभी नेता पकड़े जाने लगे।

उन दिनों प्रान्तीय कांग्रेस का दफ्तर हीवेट रोड पर और अखिल भारतीय कांग्रेस का दफ्तर आनन्द-भवन में था। पिता और पुत्र, क्रमशः अ०भारतीय और प्रान्तीय कांग्रेस के प्रधानमंत्री थे। अपनी प्रथम जेलयात्रा के दिन नेहरू जी उक्त कार्यालय में कुछ आवश्यक कार्य कर रहे थे; इतने में ही एक क्लर्क ने उन्हें आकर सूचना दी कि पुलिस कार्यालय की तलाशी लेने आयी है। नेहरू जी को तत्काल अपनी गिरफ्तारी का भी अंदेशा हो गया था, अतः वे क्लर्क को आवश्यक आज्ञा दे कर, और अपनी अनुपस्थिति में किये जाने वाले कार्यों को समझा कर, जेल-यात्रा के पूर्व कुछ आवश्यक पत्र लिखने बैठ गये। इसके पश्चात वे शाम को घर की ओर लौटे, उन्होंने वहाँ भी पुलिस को सर्वत्र फैले देखा। विशाल आनन्द-भवन के लम्बे चौड़े भागों की तलाशी लेने में पुलिस व्यस्त थी। पुलिस, उनकी तथा पं० मोतीलाल जी की गिरफ्तारी करने आयी थी। नेहरू जी को देखते ही पुलिस-अधिकारी ने उन्हें लखनऊ में युवराज का बहिष्कार करने के लिए पर्चे बाँटने, तथा राजद्रोहात्मक भाषण

देने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया। नेहरू की गिरफ्तारी की सूचना मिलते ही आनन्द-भवन की ओर नागरिकों का ताँता लग गया। अपने प्रिय नेताओं की जय बोल कर जनता प्रमत्त हो रही थी। नेहरू जी ने जनता को शान्त करते हुए उनसे पुनः युवराज सम्बन्धी स्वागत के बहिष्कार करने की अपील की। उत्तेजित जनता को उन्होंने अपनी प्रथम जेल-यात्रा के समय संदेश दिया—"हम खुश है की हम देश के लिए जेल जा रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि इससे हमारे कार्य को लाभ होगा और हमारी विजय निकट आयेगी। याद रखिये १२ तारीख को हडताल है; प्रत्येक व्यक्ति का यह कार्य है कि वह स्वयंसेवक बने, तथा सबसे बड़ी बात यह है कि आप लोग शान्त रहें। आपके हाथ मे इलाहाबाद की इज्जत है।" इसके पश्चात पं० जवाहरलाल जी लखनऊ भेज दिये गये और पं० मोतीलाल आदि नेता प्रयाग जेल में ही रखे गये। दोनों व्यक्तियों को ६-६ महीने की सजा हो गयी।

इस बहिष्कार के फल स्वरुप, युवराज जब भारत आये तो इने गिने सरकार पिठ्ठुओं को छोड कर, कोई भी स्वाभिमानी भारतवासी उनके स्वागत में शामिल नहीं हुआ। जहाँ जहाँ युवराज जाते वहीं भीषण हड़ताल होती थी और शोक दिवस मनाया जाता था। सरकार भी खाली न बैठी थी। उसने काग्रेस के संगठन को मटियामेट कर देने को ठान ली थी। फलस्वरूप सभी प्रमुख काग्रेसी नेता पकड लिये गये। युक्तप्रातीय काग्रेस-कमेटी के सभी लोग, (५५ व्यक्ति) जब वे कमेटी की एक मींटिग कर रहे थे, एक साथ गिरफ्तार कर लिए गये; फलस्वरूप असहयोग आदोलन और बढ़ा। यद्यपि सभी विश्वस्त कार्यकर्त्ता जेल में थे, परन्तु फिर भी आदोलन में अनिश्चितता और असहायता का भाव नहीं आया। वातावरण में बिजली भरी हुई थी और चारों ओर 'गडगड़ाहट हो रही थी। ऐसा जान पडता था कि अन्दर ही अन्दर क्राति की तैयारी हो रही है। यद्यपि दिसम्बर १६२१ और जनवरी १६२२ तक, करीब ३० हजार व्यक्ति असहयोग से सम्बद्ध हो जेल जा चुके थे, परन्तु फिर भी

आंदोलन के जननायक और प्राण महात्मा गांधी अभी बाहर ही थे, और अपने ओजस्वी संदेश से लोगों में स्फूर्ति प्रदान कर रहे थे। सरकार शायद भयकर कुपरिणाम की आशंका से अब तक उनपर हाँथ नहीं डाल पायी थी।

आंदोलन वेग पर था कि एकाएक चौरीचौरा के हिंसक कांड के फलस्वरूप क्षुब्ध गांधी जी ने आंदोलन रोक दिया, और सत्याग्रह का कार्य-क्रम स्थगित हो गया। चौरीचौरा नामक गाँव के पास उत्तेजित भीड़ ने, बदले की भावना से, एक पुलिस स्टेशन में आग लगा दी थी. फलस्वरूप आधे दर्जन पुलिसवाले उसमें जल मरे थे। गांधी जी के इस कार्य से, और प्रबल आंदोलन को इतनी सी बात के लिए इस प्रकार से रोके जाने पर सभी नेता, जो जेल में थे, काफी नाराज हुए। कालान्तर पश्चात् उन्हें गांधी जी की वह दूर-दर्शिता, जो उन्होंने आंदोलन रोक कर उस समय दिखलायी थी, का पूर्ण ज्ञान हुआ और उन्होंने उस समय ईश्वर को उन्हें एक ऐसा योग्य नेता प्रदान करने पर अवश्य धन्यवाद दिया होगा।

यद्यपि अधिकतर लोग यही समझते हैं, परन्तु वास्तव में फरवरी १९२२ में सत्याग्रह का स्थगित किया जाना सिर्फ चौरीचौरा कांड की वजह से नहीं हुआ था। वह तो असल में एक निमित्तमात्र हो गया था। वास्तविक कारण कुछ और ही था। सभी उच्च नेताओं के जेल में बंद होने के फलस्वरूप, आंदोलन में संगठन और अनुशासन का लोप हो गया था। ऐसे समय कोई अवाञ्छित तथा गैरजिम्मेदार आदमी, आंदोलन की बागडोर को थोड़े ही प्रयत्न से जिस ओर चाहता मोड़ सकता था, और इससे अनर्थ की सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त कांग्रेस-कमेटियों में उस समय उचित नेताओं की अनुपस्थिति से, अनेक ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू और आतंकवादी (ध्वंसात्मक कार्य में विश्वास करने वाले व्यक्ति) घुस आये थे, तथा अपने स्वार्थसाधन के लिए स्थानीय कांग्रेस और खिलाफत कमेटियाँ चलाने लगे थे। जनता को बरगलाने वाले उन

देश-द्रोहियों को रोकने और वहाँ से हटाने का, जिनके द्वारा आंदोलन और जन-शक्ति का भयंकर दुरुपयोग न हो, गांधी जी के पास इससे अच्छा और कोई साधन न था कि वे कुछ समय तक के लिए, जब तक पुराने नेता जेल से छूट कर नही आ जाते, इन आन्दोलनों को स्थगित कर दें। इसमें कोई शक नहीं कि यदि आंदोलन जारी रहता, और जनता को पथभ्रष्ट करने तथा बरगलाने वाले ये नेता उसका नेतृत्व करते, तो कई जगह भयंकर हत्याकांड हो जाते, जिन्हें सरकार को हिंसात्मक ढंग से, नृशंसतापूर्वक कुचलने का अवसर मिलता। भय का साम्राज्य फैल जाता और जनता बुरी तरह पस्तहिम्मत हो जाती। अतः १९२२ में सत्याग्रह को स्थगित करने का काम अनुकूल ही था, यद्यपि उसके स्थगित करने के और भी अच्छे ढंग को अपनाया जा सकता था।

जेल में नेहरू आदि सभी नेताओं के साथ राजनैतिक कैदियों की भाँति व्यवहार किया जाता था। खाने पीने के लिये रुचि के अनुसार वस्तुएं मिलती थीं। किताबें और अखबारों को पढने की सुविधा थी। मित्र गोष्ठी और चर्खा चलाना नित्य का कार्य था। जेल मे भी रोज दर्शकों के अपार जनसमूह का तांता लगा रहता। एक दिन जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट से खटपट हो जाने के फलस्वरूप, इन सभी व्यक्तियों को अपना पाखाना स्वयं ही उठाना पड़ा था, यद्यपि बाद मे अपने उस कार्य के लिये जेलर ने उनसे क्षमा-याचना की।

पिता-पुत्र अभी तीन महीने भी साथ जेल में न रहे होंगे की नेहरू के जुर्म पर पुनः विचार करने के लिये अदालत बैठी, तथा जवाहरलाल रिहा कर दिये गये। नेहरू जी को इससे आश्चर्य हुआ, क्योंकि न तो स्वयं उन्होंने ही, न उनकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति ने ही मामले पर पुनः विचार के लिये अदालत को प्रार्थना-पत्र दिया था। पिता को अकेले जेल मे छोड़ कर बाहर आने में नेहरू जी को काफी कष्ट हुआ।

जेल से छूटते ही नेहरू जी महात्मा गांधी से मिलने अहमदाबाद पहुँचे, परन्तु वे पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे, अतः वे उनसे साबरमती

जेल में जाकर मिले। मुकदमे के समय नेहरु जी अदालत में मौजूद थे। अदालत मे गांधी जी ने तो बयान दिया था, वह लौहशलाकियों की भाँति, वहाँ उपस्थित हरेक व्यक्ति के हृदय पर अंकित हो गया था। नेहरु जी के ही शब्दो में, "हम लोग वहाँ से (अदालत से) जब लौटे तब हमारा हृदय तरंगित हो रहा था; और उनके (गांधी के) ज्वलंत वाक्यों, चमत्कारी भावों और विचारो की हमारे मन पर गहरी छाप पड़ी हुई थी।" अहमदाबाद से लौटने के पश्चात् नेहरु को मित्रों से रहित प्रयाग बहुत ही सूनसान और दुखःप्रद लगा। उनके सभी दिली दोस्त जेल के सीखचों के अन्दर बन्द दे। अतः उन्होने अपना ध्यान कांग्रेस के संगठन कार्य मे लगाया, तथा वे गांधीजी के अधूरे कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये दूनी शक्ति से कार्यक्षेत्र मे जुट गये। उन्होंने प्रयाग मे विदेशी वस्त्रों के वहिष्कार सम्बन्धी आन्दोलन मे दिलचस्पी ली। सत्याग्रह स्थगित कर दिये जाने के पश्चात भी आन्दोलन का यह कार्य चालू था। नेहरू जी ने प्रयाग के समस्त व्यापारियों को एक संघ के रूप मे संगठित कर, उनसे विदेशी वस्त्र खरीदकर न वेचने की प्रतिज्ञा करायी। उक्त संघ ने अपने इन वादे को पूर्ण न किया। फलस्वरूप अपना वादा तोड़ने वाले इन व्यापारियों की दूकानो के आगे पिकेटिंग तथा प्रदर्शन आरम्भ हुआ।

नेहरू के इन कार्यों के फलस्वरूप सरकार ने उन्हें स्वतंत्र रहने देना शासन के लिये हितकर न समझा, अतः दूसरी बार फिर वे गिरफ्तार हो गये। नेहरू जी पर धमकी देने, और बलपूर्वक रुपया ऐठने आदि के झूठे दोष लगाये गये, फलस्वरूप १७ मई को एक वर्ष नौ महींने का कठिन कारा-वास उन्हें दिया गया। प० नेहरू की ओर से किसी भी प्रकार की सफाई पेश नहीं की गयी, केवल अदालत के समक्ष उन्होंने अपना लिखित बयान पेश किया। पडित जी ने अपने वक्तव्य में सरकार की पोल खोलते हुये, न्याय का ढोंग रचने वाली अदालतों द्वारा किये जानेवाली सत्ता के दुरुप-योग का चित्र खींचा था। "जेल हमारे लिये निःसन्देह एक आश्रय-स्थल और पवित्र तीर्थ स्थान बन गया है।"... .. ..."स्वराज्य की लड़ाई में

भारत की सेवा करना हमारे लिये अत्यन्त गौरव का विषय है। इसके अतिरिक्त महात्मा गाधी ऐसे नेता के आधीन होकर, मातृभूमि की सेवा दूने सौभाग्य का विषय है। ओह ! प्यारे देश के लिये कष्ट झेलना, इससे और कौन बड़ा सौभाग्य एक भारतवासी को प्राप्त हो सकता है। यह कितनी महान बात होगी कि इस उच्च ध्येय की पूर्ति के लिये मेरे ज वन का बलिदान हो जाये, अथवा वह विराट स्वप्न स्वयं ही पूर्ण रूप से हमे प्राप्त हो जाये।"

सजा हो जाने पर करीब ६ हफ्ते बाद, नेहरू जी दूसरी बार जेल पहुँचे और वहाँ अपने पिता से मिले। उस समय जवाहरलाल जी के दो चचेरे भाई भी वहीं थे। इन चारो व्यक्तियो को जेल मे एक अलग सायबान दिया गया। उन्हे एक बैरक से दूसरे बैरक मे जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। बाहर के सम्बन्धियो को उनसे आकर मिलने की इजाजत थी, तथा उचित मात्रा मे समाचार पत्र और पुस्तके भ। मिलती थी। जवाहरलाल जी नित्य सुबह अपने सायबान को धोकर साफ करते, तथा अपने और पिताजी के वस्त्र साफ करते थे। मित्रों से वार्तालाप और चर्खा कातने मे समय अच्छी तरह व्यतीत हो जाता था। कुछ दिनो तक उन्होने वहाँ आये अपढ़ स्वयसेवकों को शिक्षा देने का भार भो अपने उपर ले लिया था, परन्तु इस प्रकार की स्वतन्त्रता में बन्धन लगा दिये जाने के फलस्वरूप बाद मे यह कार्यक्रम ठप्प हो गया।

नेहरू जी जिस बैरक में रखे गये उसमें ५० कैदी और थे। सभी व्यक्ति नेहरू जी के परिचित थे; परन्तु फिर भी वह कौलाहलपूर्ण वातावरण उनके स्वभाव के विपरीत था, और वे एकात चाहते थे। फलस्वरुप उनका एकातप्रिय मन उन्हें बैरक के बाहर खुले अहाते मे खींच लाता। अहाते मे लेटे-लेटे वे अनन्त आकाश में उड़ते कुछ अकेले पर स्वतत्र बादलो को देखा करते। वर्षा की मृदुल झड़ी उनके सतप्त हृदय को राहत देती। कुछ दिनो पश्चात् उनपर अधिक सख्ती की जाने लगी। उन्हे ६ अन्य व्यक्तियो के साथ—टण्डन जी, महादेव देसाई, बालकृष्ण

शर्मा, जार्ज जोसेफ और देवदास गाधी आदि के साथ-एक अलग छोटे बैरक मे रखा गया। यह स्थान छोटा था परन्तु नेहरू जी को मनोनुकूल एकात था। अब उन लोगो को समाचारपत्र भी देना बंद कर दिया गया था।

अखबार न मिलने के कारण नेहरू जी को भारत और संसार के अन्य राष्ट्रो में घटित होने वाले समाचारो का कुछ भी पता न चलता था, पर तब भी बाहर की महत्वपूर्ण खबरे निजी पत्रों और मुलाकातो द्वारा जेल मे मिल ही जाती थी। उनके द्वारा नेहरू जी को यह ज्ञात हुआ कि बाहर जनता मे काग्रेस का आदोलन शिथिल पड़ गया है। गाधी के प्रभावशाली खुले स्वर का, उनके जेल में होने कारण-"वह चमत्कारिक समय जैसे गुजर गया था, और कामयाबी धुंधले भविष्य मे दूर हटती हुई मालूम पड़ने लगी।" नेहरू जी ने यह भी सुना कि बाहर काग्रेस मे दो दल हो गये है—परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी। पहला दल, जिसके नेता स्वय मोतीलाल जी तथा देशबंधुदास थे, असहयोग और काग्रेस-कार्यक्रम मे परिवर्तन करके काउसिल मे जाने, और उनपर कब्जा करने के पक्ष मे था, जब की दूसरा दल उसका पूर्ण विरोधी था और पुराने कार्यक्रम में कोई भी परिवर्तन नहीं करना चाहता था; जिसके नेता श्री राजगोपालाचार्य थे। उस समय गाधी जी जेल मे थे, अत इस महत्वपूर्ण विषय पर उनसे परामर्श लेने का कोई सवाल ही नही था। फलस्वरुप उस समय के अधिकतर नेता किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। नेहरु जी के शब्दो मे "आदोलन के जिन सुन्दर आदर्शों ने हमे, ज्वार की लहरो की चोटी पर बैठे हुए की तरह आगे बढ़ाया था, वे छोटे छोटे झगड़ो और सत्ता प्राप्त करने की साजिशो के फलस्वरुप दूर उछाले जाने लगे।" अतः मन ही मन बाहर की इन कार्यवाहियो से असंतुष्ट जवाहर, जेल मे होने के कारण, उस विषय में हस्तक्षेप करने मे असमर्थ थे।

लखनऊ-जेल का सुपरिन्टेंडेन्ट एक अंग्रेज कर्नल था, जो कभी-कभी जवाहरलाल की बैरक से गुजरता, और उन्हें हमेशा पढ़ने मे दत्तचित्त

देखता था। उनका इस प्रकार हरदम पढना शायद उसे जँचा नही; अतः एक दिन उसने उनसे इतना पढने की 'बुरी लत' के बारे मे एक बार प्रश्न भी किया। उसने स्वयं अपना पढ़ना १२ वर्ष की ही अवस्था में छोड़ दिया था; और शायद इससे उसे इतना 'लाभ' हुआ कि उसके मन में इन लोगों की तरह 'अशांति उत्पन्न करने वाले विचार' कभी आये ही नही। शायद इसी 'गुण' से प्रसन्न हो बृटिश सरकार ने इनाम स्वरूप उसे युक्त-प्रातीय जेलों का इन्सपेक्टर जेनरल बना दिया था।

जेल के अधिकारियो की यह बराबर कोशिश रहती कि नेहरू आदि राजनीतिक कैदियों को अन्य सामान्य गैरराजनीतिक कैदियो से अलग रखा जाये, जैसे भले आदमियो को बुरो की सोहबत से दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है। पर तो भी 'ये बुरे आदमी' उन अभागे मामूली कैदियो से कभी कभी मिल लिया करते, और उनके सुख दुःख की कथा सुनते और समझते। उन दिनो जेलों में होने वाली मारपीट, जोरों की रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की घटनाओ से नेहरू जी का हृदय दुखित होता था। उन दिनों जेल के नीयम तोड़ने के लिए कठोर दण्ड दिये जाते थे। एकबार एक छोटे लड़के को जेल का नीयम उल्लघन करने के अपराध के बेतों से मारने की सजा दी गयी थी। उस लड़के की आयु १५-१६ वर्ष की रही होगी। वह अपने को 'आजाद' कहता था। दण्ड देते समय उसे नंगा करके टिकटी से बाँध दिया गया था। जैसे-जैसे उसे खाल उधेडने वाली कड़ी बेंत की मार पड़ती, वह 'महात्मा गाधी की जय' चिल्ला उठता था। हर बेत पर वह लडका यही नारा लगाता; अन्त में कड़ी मार की चोट से वह बेहोश हो गया। आगे चल कर वही लड़का आतकवादी क्रान्तिकारीदल का प्रसिद्ध नेता, श्री चन्द्र शेखर 'आजाद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, और उसके वीरतापूर्ण कार्यों से सम्पूर्ण बृटिश शासन एक बार थर्रा उठा।

सन १९२३ की जनवरी में, जवाहरलाल नेहरू जेल से अन्य

राजनैतिक कैदियो के साथ छोड़ दिये गये। जेल के फाटक से बाहर निकलते ही उन्होंने पिंजड़े से स्वतंत्र पक्षी की भाँति एक बार स्वच्छ वायु मे साँस ली और प्रकृति के सुखदायी दृश्यो को देखा। घर लौटने पर सब को सकुशल देख कर वे प्रसन्न हुए और कुछ दिनो के विश्राम के पश्चात फिर राष्ट्रीय आदोलन मे लग गये।

—❀—

कांग्रेस में सैद्धान्तिक मतभेद

सरकार की क्रूर, दमनपूर्ण दृष्टि के पहली बार शिकार होकर, तथा कठिन कारागार से मुक्त होकर जब नेहरू जी बाहर आये, उस समय उनका हृदय आनन्दातिरेक में उछल रहा था, परन्तु यह सब भाव थोड़ी ही देर तक रहा क्योंकि कांग्रेस-राजनीति की दशा काफी निराशा जनक थी। "ऊँचे आदर्शों की जगह षड़यंत्र होने लगे थे, और कई गुट घृणित तरीकों से कांग्रेस-तंत्र पर अधिकार करने के प्रयत्न में लगे थे। अधिकार-लिप्सा की छाया नेताओं पर भी पड़ रही थी। उचित नेतृत्व की अनुपस्थिति में जनता भी स्वातंत्र-संग्राम से विरक्त हो गयी थी, तथा असहयोग आन्दोलन शिथिल हो गया था।"

स्वयं कांग्रेस में ही उस समय दो दल हो गये थे; और दोनों ही अपनी नीति के अनुसार देश के राष्ट्रीय विचारधारा का संचालन करना चाहते थे। सरकार की सत्ता से संघर्ष करने के स्थान पर वे परस्पर की कूटनीति में ही व्यस्त थे। श्री चितरंजन दास और पं० मोतीलाल नेहरू के अथक परिश्रम से स्वराजिस्ट पार्टी की स्थापना हो चुकी थी। यद्यपि दास बाबू के ही सभापतित्व में गया-कांग्रेस हुई थी, फिर भी काउन्सिल प्रवेश के इच्छुक सदस्यों ने मुँह की खायी थी; परन्तु उससे स्वराजिस्ट चुप न हो गये और वे एक दूसरे के ही विरुद्ध राजनैतिक शतरंजी चाल खेलने में व्यस्त थे। देश के ये परिवर्तनवादी नेता आरम्भ से ही सिन-फीन आन्दोलन से प्रभावित थे। वे लोक सभाओं में जाकर वैधानिक ढंग से, तथा अपनी अड़ंगे की नीति द्वारा शासन-सत्ता को अधिकार में करना चाहते थे: परन्तु उस समय गांधी जी के तर्कों ने उन्हे ऐसा

करने से रोक दिया था। उनके अनुसार असहयोग आन्दोलन को तथा उसके कार्यक्रम के रचनात्मक महत्व को जनता अच्छी प्रकार समझ सकती है। कांउसिल के चुनाव में आस्था, और वहाँ जाकर फिर सरकार से संघर्ष के विरोधात्मक तरीके को अपढ़ जनता पूर्णरूप से नहीं समझ सकती, और वह गुमराह हो सकती है, फलस्वरूप उससे आन्दोलन की शक्ति काफी क्षीण हो जायेगी। इसके अतिरिक्त कांउसिल की निःसार और आडम्बरपूर्ण सभाओं तथा वहाँ के वक्ताओं से देश को कोई लाभ नहीं होगा, उलटे वहाँ जाकर सत्ता और वातावरण की मोहकता से वशीभूत नेता पथ-भ्रष्ट हो सकते हैं। नेहरू जी स्वयं कांउसिल प्रवेश के बिल्कुल खिलाफ थे, क्योंकि मेम्बरों को काउन्सिल-भवन में कदम-कदम पर समझौता करने के लिए झुकना पड़ता और फलस्वरूप सिद्धान्त और लक्ष्य का बलिदान करना पड़ता। वे स्वयं अपरिवर्तनवादियों के रचनात्मक कार्यक्रम को अधिक पसन्द करते थे, जिसका इस समय प्रधान उद्देश्य जनता से सम्पर्क स्थापित करना तथा सामाजिक सुधार था।

गांधी जी के कारागार में होने के फलस्वरूप ये परिवर्तनवादी नेता उनकी चेतावनी और पूर्व संकेतों को भूल गये थे। उन्होंने अपना अलग दल कायम कर लिया तथा कांउसिल की सदस्यता के लिए खड़े भी हुए। कांग्रेस के ये दोनों दल एक दूसरे को अविश्वास की दृष्टि से देखते, और उनके अधिवेशनों का प्रमुख विषय प्रायः वादविवाद और एक दूसरे के प्रति आक्षेप ही हुआ करता। पं० नेहरू ने स्वयं ही सन् १९२३ में युक्तप्रान्तीय कांग्रेस की तत्कालीन परिस्थिति की बड़ी सुन्दर मीमांसा की है। "हमारी शक्ति कुछ ही दिन पहले के साथियों से, जो कि अब विरोधी दल में थे, लड़ने-भिड़ने और शतरंजी चाल चलने में लग गयी। ... ...इस प्रकार धीरे-धीरे अहिंसात्मक असहयोग के मूल गुणों का पतन होने लगा, और बहुत से लोगों की दृष्टि में वह केवल बिना सत का छिलका रह गया।"

पं० जवाहरलाल जी दोनों दलों के बीच बढ़ती हुई इस खाई को

देखकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। उनके समक्ष दो ही मार्ग थे। या तो वे अन्य नेताओं की भाँति स्वयं भी आँख मूँद कर किसी एक दल में सम्मिलित हो जाते, अथवा दोनो दलों के बीच शान्ति और समझौते के बीजारोपण का प्रयत्न करते। अन्त में उन्हें दूसरा पथ ही श्रेयस्कर लगा और उसके अनुसार कार्य करने में वे सलग्न भी हो गये; परन्तु इस कार्य में उन्हें कोई विशेष सफलता न मिली।

उन्हीं दिनों कांग्रेस की नयी नीति के अनुसार, देश के विभिन्न भागों की म्यूनिसिपैलिटियों में समाज-सेवा के उद्देश्य से, कांग्रेस ने अपने सदस्य भेजे। स्वयं प्रयाग-बोर्ड के चेयरमैन नेहरू जी चुने गये। कर्मयोगी नेहरू कार्य करने के इस नये वातावरण और विस्तृत क्षेत्र को पाकर काफी प्रसन्न हुए, और उन्होंने बोर्ड की उन्नति के लिए काफी परिश्रम भी किया। इसके अतिरिक्त अब वे प्रान्तीय कांग्रेस-मन्त्री के अलावा, अखिल भारतीय कांग्रेस के भी मंत्री चुन लिए गये थे, अतः उन पर काफी कार्य-भार आ पड़ा था; फलस्वरूप इन विविध कार्यों की वजह से उन्हें १५-१५ घण्टे कार्य करना पड़ता था। इन कार्यों से भाराग्रस्त होते हुए भी नेहरू जी ने दोनों दलों को निकट लाने के अपने प्रयत्न को छोड़ नहीं दिया।

कांग्रेस में विभेद की यह स्थिति इस समय और भी गम्भीर हो गयी थी। १९२२ की गया-कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से परिवर्तन-दल के नेता देशबंधु दास १९२३ में अखिल भारतीय कांग्रेस के भी अध्यक्ष थे। यद्यपि उनका विरोधी दल अधिक प्रभावशाली था परन्तु कांग्रेस का बहुमत अपरिवर्तनवादी ही था। १९२३ की गर्मियों में, बम्बई की कांग्रेस कमेटी की बैठक में, दोनों दलों की यह आपसी खींच-तान अपनी सीमा पर पहुँच गया। इस बैठक में कांग्रेस-महासभा की समिति ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसके द्वारा उसने जनता से यह अपील की कि वे काउंसिलों का पूर्ण बहिष्कार करें; और इस नीति की अवहेलना करने वालों को वोट न दें। महासभा की नीति स्पष्ट थी और उसकी दृष्टि में काउन्सिलें विदेशी शासन-सत्ता की पुष्टि की साधन मात्र थीं। स्वराजिस्टों

पर यह प्रत्यक्ष आक्रमण था, फलस्वरूप देशबंधु दास ने नाराज होकर अध्यक्ष-पद से स्तीफा दे दिया। कांग्रेस कैम्प में खलबली मच गयी किंतु नेहरू तथा मौलाना आजाद के प्रयत्न से अप्रैल तक दोनों ओर से काउन्सिल-आन्दोलन स्थगित कर देने की शर्त पर समझौता हो गया। कमेटी ने एक प्रस्ताव द्वारा, पंडित जी और मौलाना साहब को इस प्रशंसनीय कार्य के लिए बधाई भी दिया। परन्तु, प्रयाग के इस समझौते द्वारा दोनों दलों में स्थायी संधि न हो सकी। दोनों ही समय की गति और अवसर देख रहे थे।

इन्हीं दिनों कांग्रेस के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों ने एक अलग गुट बनाया, जिसका उद्देश्य इन दोनों दलों में किसी प्रकार शान्ति-स्थापन कराना था। इन्हें लोग मध्यवर्ती (Centralists) कहते थे। इनलोगों की दृष्टि में दोनों ही दल के नेता और सदस्य श्रद्धेय और विचारवान थे; इसलिए वे कांग्रेस का कार्यक्रम स्थगित रखते हुए ऐसा मार्ग ढूढ़ रहे थे, जिससे दोनों दलों का निकट सम्पर्क बना रहे। पं० जवाहरलाल भी इसी तीसरे दल के अनुयायी थे।

ता० २५ से २८ मई तक बम्बई में अखिलभारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हुआ। "यह दृष्टि में रखते हुए कि कांग्रेस के बहुत से प्रभावशाली सदस्यों का विचार सरकारी काउन्सिल-प्रवेश के पक्ष में है, और कांग्रेस का आधुनिक मतभेद उसके प्रभाव को कम कर रहा है, यह कमेटी कांग्रेसजनों में संगठन और एकता आवश्यक समझती है, और इसलिए निश्चित करती है कि गया-प्रस्ताव के अनुसार काउन्सिल के बहिष्कार के लिए कोई विशेष आन्दोलन न किया जाये।"

इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर अपरिवर्तनवादियों ने कार्यकारिणी से त्यागपत्र दे दिया। उनके विचार से यह प्रस्ताव उनके सिद्धान्तों के विपरीत था, और इसलिए इस प्रस्ताव की उपस्थिति में वे कार्य करने में

असमर्थ थे। एक नयी कार्यकारिणी की रचना हुई जिसके सभापति डा० अंसारी और मंत्री पं० जवाहरलाल बनाये गये।

उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकृत अवश्य हुआ; परंतु कुछ प्रांतों ने, जहाँ अपरिवर्तनवादियों का अधिक प्रभाव था, कांग्रेस के केंद्रिय कार्यालय की इस आज्ञा को मानने से इनकार कर दिया। बंबई में इन कार्यों के विपरीत कार्य होते रहे। फलस्वरूप इस दशा पर पूर्ण रूप से विचार करने के लिए, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक ८-१० जुलाई को नागपुर मे हुई। इसमें कार्यकारिणी के इन मध्यवर्ती (Centralists) सदस्यों ने अपने आदेशों का उल्लंघन करनेवाले प्रान्तों की निंदा की, और उनके सदस्यों को दण्ड देने का एक प्रस्ताव उपस्थित किया, परंतु वह सर्वसम्मति से पास न हो सका। अतः पं० जवाहरलाल तथा उनकी कार्यकारिणी के अन्य सहयोगियों को त्यागपत्र देना पड़ा, तथा कार्यकारिणी के पुराने अपरिवर्तनवादी सदस्यों ने फिर से कार्यभार सम्हाला।

सितम्बर के महीने में अखिलभारतीय कांग्रेस-महासभा का विशेष अधिवेशन दिल्ली में हुआ। उस अधिवेशन में स्वराजिस्टों को काउंसिल के लिए खड़े होने की आज्ञा मिल गयी और दोनों विरोधी दलों में फिर से समझौता हो गया। दिल्ली-अधिवेशन में, कांग्रेस के शासन-विधान में सुधार के लिए एक कमेटी नियुक्त हुई, जिसके पं० जवाहरलाल जी संयोजक नियुक्त हुए। आप सत्याग्रह और अकाली परिस्थिति के सम्बन्ध में नियुक्त समितियों के भी सदस्य थे।

नेहरू और नाभा-आन्दोलन

सन् १९२३ में पंजाब में सिक्खों ने एक सुधारवादी, अकाली आंदोलन की स्थापना की थी। इनका उद्देश्य गुरुद्वारों से बद-चलन महंतों को निकाल कर उनका प्रबंध योग्य हाथों में देना था। सरकार भारत-व्यापी, कांग्रेसी आंदोलन से पहले ही त्रस्त थी, जब उसने पंजाब के आकाश पर अशान्ति के एक नये प्रकार के काले बादल देखे तब उसने प्रबल झंझावट की तरह उन्हें पूर्ण नष्ट कर देने का संकल्प किया। इन अहिंसात्मक अकाली सत्याग्रहियों का बर्बरतापूर्वक दमन किया जाने लगा।

उन्हीं दिनों की एक घटना ने, जिसका इस अकाली आंदोलन से कोई सम्बन्ध न था, नेहरू को सिक्खों के दुख-दर्द के समीप ला खड़ा किया। अंग्रेजों ने नाभा-रियासत के जनप्रिय महाराज को गद्दी से उतार कर, रियासत की व्यवस्था के लिए, एक ऐडमिनिस्ट्रेटर नियुक्त कर दिया था। सिक्खों ने इसका विरोध किया तथा जैतो नामक स्थान में अखंड पाठ आरम्भ करने का प्रयत्न करने लगे जिसे अंग्रेजों ने रोका, फलस्वरूप शासकों के इस कार्य के विरोध के लिए सिक्खों ने अपने प्रदर्शनकारी जत्थे जैतो भेजना आरम्भ किया। पुलिस इस कार्य के लिए सत्याग्रहियों को नृशंसता के साथ मारती और गिरफ्तार करती। पत्रों द्वारा जवाहर लाल जी का इस आन्दोलन की ओर ध्यान गया, अतः वे इसका निरीक्षण करना चाहते थे।

कांग्रेस के दिल्ली-अधिवेशन के पश्चात ही नेहरू जी को उनकी इच्छा के अनुरूप ही, अकालियों के एक दूसरे जत्थे का जो जैतो की ओर

जा रहा था, स्थिति निरीक्षण के लिए आमंत्रण मिला। नेहरू जी अपने दो सहयोगियों—आचार्य गिडवानी और श्री के० सन्तानन—के साथ जैतो के लिए रवाना हुए। जैतो पहुँचने पर उक्त जत्थे को पुलिस ने रोका, तथा साथ ही नेहरू तथा उनके अन्य दो साथियों को भी बृटिश सरकार द्वारा नियुक्त नाभा रियासत-स्थित शासक का आज्ञापत्र मिला, जिसके अनुसार उन्हें वह स्थान तत्काल छोड़ देने का आदेश दिया गया था। नेहरू जी ने वापस लौटने में अपनी असमर्थता प्रकट की। फलतः उन्हें उनके साथियों के साथ तुरन्त ही गिरफ्तार कर लिया गया। दो तीन दिवस तक उन्हें नाभा-जेल की एक गंदी कोठरी में रखा गया। उन पर तथा उनके उन सहयोगियों के ऊपर दो आरोप लगाये गये थे। पहला आज्ञा भंग का तथा दूसरा षड्यन्त्र का। नाभा की अदालतों के कार्यक्रम अव्यवस्थित तथा विचित्र प्रकार के थे। द्वितीय प्रकार के अभियोग को सिद्ध करने के लिए सिर्फ तीन ही व्यक्ति पर्याप्त न थे; अतः उन लोगों के साथ एक अपरिचित सिक्ख को भी गिरफ्तार कर, सम्मिलित षड्यन्त्र के अभियोग मे घसीटा गया था। इसी बीच एक दिन नाभा के बृटिश ऐडमिनिस्ट्रेटर की ओर से, जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उन लोगों के वार्ड मे उपस्थित होकर कहा कि यदि आप लोग अपने कार्यों पर दुःख प्रकट कर क्षमा याचना करें, और बिना आज्ञा नाभा में फिर न आने का वचन दें, तो आप लोगों पर से मुकदमा उठा कर आपको स्वतंत्र किया जा सकता है। नेहरू जी ने उत्तर दिया, हम लोगों ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया है जिसके लिए हम दुःख प्रकट करें; बल्कि हम लोगों के प्रति किये गये अपने दुर्व्यवहारों पर नाभा-शासक को खेद प्रकट करना चाहिये।

गिरफ्तारी के पश्चात् न्याय का ढोंग दो सप्ताह तक होकर समाप्त हुआ। नेहरू जी ने मुकदमे के समय अपनी और अपने मित्रों की किसी प्रकार की पैरवी किये बिना सिर्फ एक लिखित बयान अदालत को दिया। अंत मे अवज्ञा के लिए ६ महीने, तथा षड्यन्त्र के लिए १८ महीने का कारावास दंड नेहरू जी को तथा उनके साथियों को दे दिया गया। नेहरू जी

के गिरफ्तार होने पर आशंकित पिता ने वायसराय को एक तार दिया तथा पुत्र से मिलने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलने के पश्चात् वे नाभा-जेल मे जाकर पुत्र से मिले। पुत्र के सविनय अनुरोध से, तथा वहाँ रहना विशेष लाभप्रद न समझकर वे एक वकील, कपिलदेव मालवीय को वहाँ छोड़ कर प्रयाग लौट आये। जवाहरलाल जी को अपने सहयोगियो के साथ सजा तो मिल गयी, पर न्यायालय द्वारा हुए अपने विरुद्ध फैसलो की प्रतिलीपियाँ अनेक बार माँगने पर भी न मिली।

एक दिन शाम को जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उन्हे बुलाकर नाभा शासक का आदेश पत्र दिखलाया, जिनमे उन लोगों की सजाये स्थगित कर दी गयी थी, साथ ही उन्हे यह भी आदेश दिया गया था कि बिना आज्ञा के वे कभी भी नाभा में पदार्पण न करें। उन दोनो आज्ञाओ की प्रतिलिपि माँगने पर भी उन्हे न मिली। इसके पश्चात् नेहरु जी अपने साथियों सहित स्टेशन भेज दिये गये।

प्रयाग लौटने के बाद नेहरु तथा उनके वे दोनो मित्र विषम ज्वर से ग्रसित हुए। नेहरू जी तो चार सप्ताह बाद स्वस्थ हो गये, परन्तु उनके वे दोनों मित्र काफी दिनो तक खाट पकड़े रहे।

उन्हीं दिनों जब पं० जवाहरलाल नेहरू नाभा मे थे उन्हे सूचना मिली थी की वे युक्त प्रान्तीय काग्रेस के सभापति मनोनीत हुए हैं। दुर्भाग्य-वश काग्रेस के अधिवेशन के दिन ही पं० नेहरु बीमार पड गये और उनकी अनुपस्थिति में ही, उनके द्वारा लिखित भाषण पढ़ा गया। इसके पूर्व पं० नेहरु प्रातीय काग्रेस के मंत्री-पद पर कार्य कर रहे थे।

—❀—

राजनैतिक जीवन और सार्वजनिक सेवा

दिसम्बर १९२३ में मौलाना मुहम्मद अली के सभापतित्व में अखिल भारतीय कांग्रेस महासभा का वार्षिक अधिवेशन कोकनाडा (दक्षिण) में हुआ। मौलाना मुहम्मदअली के अनुरोध से, अपनी इच्छा के विपरीत भी नेहरू जी को मंत्री-पद ग्रहण करना पड़ा। अपरिवर्तन वादियों ने अपनी सारी शक्ति संगठित करके, एक बार पुनः देश को पुराने असहयोगी कार्यक्रम पर बनाये रखने की चेष्टा की; किन्तु वे विफल हुए तथा विजय स्वराजिस्टों के हाथ लगी। इस अस्थिर परिस्थिति में नेहरू जी का मंत्रीपद के लिए अनिच्छा रखना स्वाभाविक ही था, परन्तु मुहम्मद-अली के आग्रह की वे उपेक्षा भी नहीं कर सकते थे।

मौलाना साहब इस्लाम के कट्टर भक्त तथा धार्मिक प्रकृति के थे, जब की नेहरू जी परम नास्तिक और धार्मिक रूढ़ियों के विरोधी। कभी-कभी धर्म विषयक बातों को लेकर उनकी और मौलाना की छोटी-मोटी झड़प भी हो जाती थी, परन्तु इतने पर भी वे नेहरू जी से स्नेह करते तथा उन्हे सहीमाने में एक असली 'मजहबी आदमी' मानते थे।

कोकनाडा-कांग्रेस में हिन्दुस्तानी-सेवा-दल की नींव पड़ी। कांग्रेस स्वयंसेवकों में सैनिक-अनुशासन तथा संगठन का अभाव काफी पहले से कुछ नेताओं को खल रहा था। डा० नारायण सुब्बाराव हार्डीकर के आग्रहपूर्ण लगन तथा नेहरू जी के सहयोग से, कुछ नेताओं का 'अहिंसा के सिद्धांत का शत्रु' समझ कर विरोध करते रहने के पश्चात् भी, इसे शक्तिपूर्ण सैनिक अनुशासन के आधार पर संगठित किया गया। इसी अधिवेशन में अखिल भारतीय स्वयंसेवक कान्फ्रेन्स भी हुई

जिसके सभापति नेहरू जी ही हुए; तत्पश्चात् वे इसके प्रथम अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए।

दक्षिण के इस काग्रेस-अधिवेशन के पश्चात् नेहरू जी प्रयाग पहुँचे। इन्हीं दिनों प्रयाग मे ६ वर्ष बाद आने वाले कुम्भी-स्नान का पर्व आ उपस्थित हुआ था। राष्ट्र के कोने-कोने से धर्मप्राण हिन्दू स्नान के उद्देश्य से प्रयाग मे एकत्रित होने लगे। नदी के तीव्र बहाव तथा खतरे की वजह से सरकार ने संगम-स्नान पर रोक लगा दिया। इस धार्मिक हस्त-क्षेप से वातावरण कुछ गरम हो चला था, तथा सम्पूर्ण हिन्दू जनता सर-कार के इस प्रकार के व्यवहार से क्षुब्ध थी। जनता की ओर से मालवीय जी ने स्वयं प्रार्थना-पत्र सरकार की सेवा में भेजा था, परन्तु उस पर कोई विचार न हुआ, फलस्वरूप गगा के कगारो पर उन्होंने अपने अन्य साथियों के साथ सत्याग्रह करने का निश्चय किया। अहिंसात्मक सत्याग्रही की भाँति नेहरू जी, मालवीय जी तथा उनके अनेक सहयोगियो के साथ शातिपूर्वक उस कडी धूप में चार घण्टे तक बालू पर बैठे रहे। घुडसवारों की निर्दयतापूर्ण अशिष्टता, तथा वातावरण की अकर्मण्य गम्भीरता से ऊब कर, वे उन बॉस के घेरो पर काग्रेस का झण्डा लेकर चढ़ गये जिन्हे स्नानार्थियो को रोकने के लिए बनाया गया था। उन्होंने बलपूर्वक घेरे के कुछ तख्ते और बल्लियाँ उखाड डाले और जनता के लिए एक छोटा सा प्रवेश मार्ग बना दिया। अनेक व्यक्तियो के साथ उन्होंने संगम के पवित्र जल में डुबकी लगायी। पुलिस का सब प्रयत्न और परिश्रम व्यर्थ ही रहा वह उन्हे रोकने में असमर्थ रही।

सन् १९२४ में गाधी जी अत्यधिक अस्वस्थता के फलस्वरूप कारा-गार से मुक्त कर दिये गये। वे स्वास्थ्य-लाभ के लिए बंबई के रमणीय समुद्र-तट जूहू पर ठहरे हुए थे। काफी दिन के पश्चात् अपने प्रिय नेता से मिलने के लिये पिता और पुत्र—पं० मोतीलाल तथा जवाहरलाल जी बम्बई पहुँचे। देश की राजनैतिक समस्याओं पर गाधी जी के विचार, तथा उनके आगे के कार्यक्रम के बारे मे जानने के लिए दोनो ही व्यक्ति बहुत

उत्सुक थे। स्वराजिस्टो के अधिनायक पं० मोतीलाल जी का बम्बई आने का एक यह उद्देश्य भी था, कि वे अपने दल के कार्यक्रम और विचारो को उन्हे बतलाकर अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न करे, और यदि सक्रिय सहयोग नहीं तो कम से कम निष्क्रिय सहानुभूति अवश्य ही प्राप्त करे; परन्तु वे अपने इस कार्य में सफल न हो पाये और निराश होकर लौटे। गाधी जी को काउन्सिल में प्रविष्ट इन स्वराजिस्ट मेम्बरों के कार्य मे विशेष आस्था न थी। उनके अनुसार काउन्सिल में विद्वतापूर्ण लच्छेदार भाषण देकर, तथा वहाँ सत्ता का विरोध कर और बजट को ठुकराकर, न तो वे सरकार का कुछ बिगाड़ ही सकते हैं न सही अर्थों मे जनता और राष्ट्र की सेवा ही कर सकते है। १९२४ मे अनेक प्रान्तों की काउन्सिलों में इन मेम्बरों ने ऐसा ही किया भी था, परन्तु बार-बार किये जाने वाले इन बासी और बेकार के कार्यों से अंत मे जनता ऊब गयी और निराशा से उनकी ओर से दृष्टि फेर लिया।

दिसम्बर १९२४ में काग्रेस का अधिवेशन गाधी जी के सभापतित्व में बेलगाँव में हुआ। नेहरू जी अब की बार भी अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के मंत्री चुने गये। यूरोप-यात्रा के दो वर्ष छोड़ कर नेहरू जी काफी दिनों तक काग्रेस के स्थायी प्रधानमन्त्री रहे हैं, और आज तो आप राष्ट्र के ही प्रधान मंत्री हैं। इस पद पर रह कर उन्होंने योग्यता से अपना कार्य सम्पन्न किया तथा काग्रेस-कार्यालय को एक जीती जागती वस्तु बना दिया। वे परिश्रम और लगन से अपना कार्य करते तथा प्रेम-पूर्वक अपने सहयोगियों से भी खूब काम लेते थे।

इन्ही दिनों हिन्दू और मुसलमानों के बीच दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही कटुता अपनी सीमा पर पहुँच चुकी थी। आपसी घृणा के फल-स्वरूप, बड़े बड़े शहरो में पशुता और क्रूरता का नग्न ताण्डव नृत्य हो रहा था। एक ही देश के दो मजहबों में बँटे इंसान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे। बेबुनियादी बातों पर उठने वाली इस आग को लगाने वाली, देश की एक तीसरी ही निकम्मी और नमकहराम ताकत

थी, जो प्रायः शासकों के टुकड़े पर पल रही थी। उसके दुष्प्रयत्न से सम्पूर्ण भारत साम्प्रदायिकता की वह्नि में धधक उठा, कांग्रेस के शीतल छिड़काव का भी उस पर कोई असर नहीं हो रहा था। अंग्रेज-सरकार की यह नयी फूट की नीति काफी सफल रही, और उनके जाने के बाद भी इस दुर्नीति ने भारत के दिल के दो टुकड़े कर के ही दम लिया। भारत की अविभाज्य आत्मा ने उस समय इसको प्रोत्साहन देने वाले हिन्दू-मुसलमान नेताओं पर लानत भेजी।

साम्प्रदायिक अग्नि के उत्पन्न होने का एक कारण, हमारा अनिश्चित राजनैतिक पथ और सामाजिक पृष्ठभूमि का अभाव भी था। नेहरू जी के ही शब्दो में, "हमारी आजादी की लड़ाई मे स्पष्ट आदर्शों और ध्येयो की कमी ने साम्प्रदायिकता का जहर फैलाने में मदद की। जनता को स्वराज्य की लड़ाई का अपने प्रतिदिन के कष्टों मे कोई सम्बन्ध दिखायी नहीं दिया। वे जब तब अपनी सहज बुद्धि से प्रेरित होकर खूब लड़े; लेकिन वह हथियार इतना कमजोर था कि उसे आसानी से कुण्ठित किया जा सकता था; और दूसरी तरफ अन्य (प्रतिक्रियावाद के) कामों के लिए भी उसे इस्तेमाल किया जा सकता था....प्रतिक्रिया के समय साम्प्रदायिक नेताओं को इस काम मे कोई मुश्किल भी नही पडी। वे जनता की इन्हीं भावनाओं को धर्म के नाम पर उभाड कर उसका इस्तेमाल करते रहे।" इस काम मे अबोध जनता की उन्हे काफी सहानुभूति भी मिली।

कांग्रेस के कुछ मुसलमान नेताओं ने, जनता मे इन सम्प्रदायवादी नेताओं के प्रभाव को कम करने के उद्देश्य से, नेशनलिस्ट मुस्लिम पार्टी नामक एक दल भी बनाया, परंतु अपनी लिबरल नीति के फलस्वरूप इस विषय में वह संस्था कोई प्रशंसनीय कार्य न कर पायी।

हिंदू-मुसलिम के इस साम्प्रदायिक गहन प्रश्न को लेकर, १६२० से १६२६ तक अनेक 'एकता सम्मेलन' हुए, जिसमे इस प्रश्न को किसी भी प्रकार हल करने का प्रयत्न किया गया। १६२४ मे गाधी जी के २१

दिन के अनसन के अवसर पर, मौ० मुहम्मद अली की अध्यक्षता में दिल्ली मे हुए कांग्रेस-सम्मेलन में भी यही प्रश्न प्रधान था, परंतु इस सम्मेलन से कोई विशेष लाभ न हो सका।

दिल्ली का एकता-सम्मेलन मुश्किल से समाप्त हुआ था कि अन्य स्थानों की देखा-देखी प्रयाग में भी दंगा आरम्भ हो गया। नेहरू जी अन्य साथियों के साथ प्रयाग पहुंचे, परंतु तब तक दगा समाप्त हो चुका था। अपने ही क्षेत्र मे, अपनी ही नाक के नीचे हुए इस घृणित काड को देख कर नेहरू जी को अत्यंत क्षोभ हुआ, और वे कई दिन तक अनमने और कुछ खीचे-खीचे से फिरते रहे। सचमुच यह चिराग तले अंधेरा था।

—※—
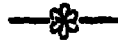
योरोप-यात्रा

सन् १६२६ में श्रीमती कमला नेहरू का स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो गया, तथा उनकी रुग्णावस्था संदेहात्मक हो गयी। स्थानीय डाक्टरो की राय उनका इलाज स्विटजरलैंड में कराने की हुई। प्रकृति के भव्य उपहारों से पूर्ण उस प्रदेश मे अवश्य ही उनकी प्रिय पत्नी स्वस्थ हो जायेगी, ऐसा नेहरू जी का विश्वास था। अस्तु मार्च सन् १६२६ मे उन्होंने वेनिस की यात्रा आरम्भ की, वहाँ से वे स्विटजरलैंड पहुँचे। कमलादेवी का उपचार विशेषतः जिनेवा और मोण्टाना के पहाड़ी सेनिटोरियम में हुआ। प्रवासी नेहरू वहाँ भी भारतीय परिस्थिति पर विचार करते और स्वाध्याय मे तन्मय रहा करते थे।। इस बार योरोप में वे करीब १ साल नौ महीने ठहरे। उनके जीवन का यह थोड़ा समय काफी आनंद और शांति से बीता।

पत्नी के स्वास्थ्य-लाभ के पश्चात् पण्डित जी ने परिवार-सहित योरोप के भिन्न-भिन्न देशों का पर्यटन किया, तथा अनेक निर्वासित क्रांतिकारी भारतीय नेताओं एवं प्रमुख विदेशी व्यक्तियों से मिले, जिनमें से कुछ व्यक्तियों की स्पष्ट छाप भी उन पर पड़ी।'

इन्हीं दिनों नेहरू जी ने भारतीय क्रांतिकारी श्याम जी वर्मा से भेंट की, जो अपनी रुग्ण गुजराती पत्नी के साथ जिनेवा के एक भवन की सबसे ऊँची मंजिल पर रहते थे। पैसा होते हुए भी उनका जीवन काफी अव्यवस्थित, गरीबी ढंग का था। वे हर एक व्यक्ति को, जो उनसे मिलने आता था उसे ब्रिटिश भेदिया समझ कर संदेहात्मक दृष्टि से देखते थे।

इसके अतिरिक्त स्विटजरलैंड में वे राजा महेन्द्रप्रताप से भी मिले, जो एक अजीब सी आधी फौजी पोशाक पहने, निहायत आशावादी ढंग से बातचीत करते थे। उन्होंने योरोप के कुछ देशों में 'आनंद-समाज' की स्थापना की थी, तथा अपने को 'मनुष्य जाति का सेवक' कहते थे। लम्बे अर्से से निर्वासित जीवन व्यतीत करने के बाद स्वतंत्रता के पश्चात वे भारत लौटे।

नेहरू जी पेरिस में, भारतीय स्वतंत्रता की पक्षपाती, तथा साम्राज्यवादी भावना की विरोध वृद्धी मैडम कामा से भी मिले। संघर्षों ने उन्हें जर्जर तथा विक्षिप्त सा बना दिया था। जीवन के प्रति अब उनकी कोई विशेष आस्था न रह गयी थी। वे काफी डरावनी सी दीखती थीं।

इसके अतिरिक्त बर्लीन में वे मौलवी बरकतउल्ला, इटली में मौलवी उबेदुल्ला, आदि से भी मिले। बर्लिन में ही उनकी कुछ अन्य क्रातिकारी नवयुवकों से भी भेंट हुई, जो युद्ध के पूर्व वहाँ पढ़ते थे तथा युद्ध काल में भारतीय-स्वातंत्र और राष्ट्रीयता के विचारो से प्रभावित हो, युद्ध के पश्चात भारत को स्वतंत्रता देने की शर्त पर, जर्मनी की मदद करने के लिए तैयार हो गये थे। वहाँ उन्होंने इसके लिए एक हिंदुस्तानी युद्ध कमेटी भी बनायी थी, जिसके अध्यक्ष-पद के लिए अमेरिका में निर्वासित जीवन व्यतीत करने वाले क्रांतिकारी भारतीय नेता लाला हरदयाल को उन्होंने आमंत्रित किया था। युद्धांत के पश्चात् यह कमेटी टूट गयी तथा इसके सदस्यों को जर्मनी के शासक सदेह की नजर से देखने लगे थे। भारत के सुविख्यात निर्वासित क्रातिकारी वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय तथा मानवेन्द्रनाथ राय की विद्वत्ता का नेहरू जी पर काफी प्रभाव पड़ा।

नेहरू जी जिनेवा में कई बार, प्रसिद्ध साम्राज्यविरोधी फ्रेंचविद्वान रोम्यों रोला से मिलने विलाओल्गा गये। रोम्योंरोला गांधी जी के भक्त तथा भारतीय स्वतंत्रता के सच्चे आकांक्षियों में से थे। प्रथम मिलन के

समय नेहरू जी ने गाँधी जी से प्राप्त अपने सम्बंध के एक परिचय-पत्र को उन्हें दिखलाया था।

नेहरू जी के स्विटजरलैंड पहुँचने के कुछ दिन पश्चात ही, पूँजीपतियों के अत्याचार से तंग आकर इंगलैंड के मजदूरों ने आम हड़ताल की। स्वभाविक था कि एक पददलित देश के नेता की सहानुभूति उन शोषित-शापित शत-शत श्रमजीवियों से हो। पूँजीपति सरकार ने मजदूरों के 'अनैतिक आंदोलन' तथा उनकी माँगों को, 'शांति के खिलाफ' कहकर बुरी तरह कुचल डाला। इसके कुछ महीने पश्चात नेहरू जी इंगलैंड पहुंचे तथा उन्हें वहाँ के एक अशांतिग्रस्त प्रदेश की खान के मजदूरों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। खान में काम करनेवाले मर्दों, औरतों और बच्चों के पीले और पिचके हुए गाल, तथा धँसी हुई आँखों में तिरती हुई भूख और आह ने दुनिया के हर पूँजीवादी देश की तस्वीर उनकी आँखों के परदे पर खींच दी। पूँजीपतियों के टुकड़ों से पली हुई अदालतों और पुलिस द्वारा किये गये नृशंस अत्याचारों से त्रस्त उन मजदूरों की भयभीत आँखों में, दुनिया के हर देश के मजदूरों की गयी बीती जिंदगी के बीच उन्हें एक अजीब साम्य दिखलायी दिया। इस नयी दुनिया की पहली झलक ने नेहरू की आत्मा तक कंपा दी।

सन् १९२६ के दिसम्बर में नेहरू जी जर्मनी की राजधानी बर्लीन में थे, और वहीं उन्हें यह मालूम हुआ कि ब्रुसेल्स (बेलजियम) में दलित जातियों का एक सम्मेलन होने वाला है। नेहरू जी उस सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से जाने के लिए तैयार हो गये। ब्रुसेल्स की कांग्रेस १९२७ की फरवरी में आरम्भ हुई। इसके सभापति बृटिश मजदूर नेता जार्ज लेन्सबरी थे। इस संगठन का उद्देश्य साम्राज्यवाद के कठिन पंजे से ग्रसित राष्ट्रों तथा वर्गों को मुक्त करना था। फलस्वरुप इसमें सभी राष्ट्रों के वामपक्षी नेता और प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। नेहरू जी ने पहले पहुँच कर सम्मेलन की अंतरंग गोष्ठियों तथा विषय निर्धारिणी समितियों में भी भाग लिया। अखिल भारतीय कांग्रेस महा-

सभा के प्रतिनिधि होने के कारण वहाँ आप विशेष रूप से सम्मानित किये गये। विषय निर्धारिणी समिति के सदस्य तो नेहरू जी थे ही, साथ ही नियमानुसार एक बैठक में वे सभापति भी बनाये गये। अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस के पाँच सम्मानित सभापति बनाये गये थे जिनमे पं० नेहरू भी एक थे। शेष चार सभापति थे इस्टीन, रोम्याँ रोला, श्रीमती सनयात सेन तथा लेन्सबरी। यह भी प्रस्ताव किया गया था कि पंडित जी तीन मंत्रियों में से भी एक चुने जायें, परन्तु आपने इसमें अपनी असमर्थता दिखलाते हुए अस्वीकार कर दिया था।

इस सम्मेलन मे जावा; हिन्द-चीन, फिलस्तीन, सीरिया, मिश्र, उत्तरी अफ्रिका आदि के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया था। कम्यूनिस्टों तथा समाजवादी विचारधाराओं के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे; परन्तु इन सब विचारधाराओं के बीच भी सम्मेलन ने अपना दृष्टिकोण स्वतंत्र रखा। पं० जवाहरलाल ने इस कांग्रेस के मंच से भारत की सच्ची अवस्था का परिचय कराने, और दलित राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया। आपने भारत की स्वतंत्रता तथा उन्नति सम्बन्धी कई प्रस्ताव भी सम्मेलन मे उपस्थित किये, जिसकी पूरी रिपोर्ट भारत आकर आपने कांग्रेस महासभा को दिया। सम्मेलन में अपने राष्ट्र के जन-आदोलन के प्रति सासारिक सहानुभूति प्राप्त करने, साम्राज्यवाद का विरोध करने, और भारत तथा चीन के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने के संबंध में भी कई प्रस्ताव आपने पास कराये।

इस कांग्रेस के झंडा कैम्प में भारत का तिरंगा झंडा भी लहराता था। पं० जी ने महान दूरदर्शिता और विद्वत्ता के साथ दलित राष्ट्रों की गोष्ठी मे भारतीय प्रेम का बीजारोपण किया और उन्हें यह समझाने का प्रयत्न किया कि भारत की मुक्ति से ही संसार के दलितवर्ग, विशेषतः एशिया की मुक्ति सम्भव है। भारत ही साम्राज्यवाद का सबसे बड़ा अड्डा है, और जब तक भारत मे उसका नाश नहीं होता संसार के बहुत से भागों, प्रधानतः एशिया को स्वतंत्रता की स्वच्छ वायु में साँस लेने का

स्वप्न देखना एक मृगतृष्णा ही होगी। नेहरू जी ने कुछ दिन इङ्गलैण्ड में रह कर कोलोनीज़ (बृटिश और फ्रेंच उपनिवेश) और अन्य परतंत्र राष्ट्रों की समस्याओं का अध्ययन किया और पश्चिम के असन्तुष्ट श्रमजीवियों का अदम्य संघर्ष देखा। वे यद्यपि इन समस्याओं के बारे में पहले से भी बहुत कुछ जानते थे पर इन आंदोलनकारियों के सम्पर्क में आने में उन्हें और भी बहुत सी नयी बातें मालूम हुई। इस सम्मेलन की साम्राज्य विरोधी कार्यवाहियों से फ्रांस और इंगलैण्ड की सरकारें असंतुष्ट थीं, अत: उनके बहुतेरे गुप्तचर उसकी कार्यवाहियों में अनेक रूप धर कर उपस्थित रहते थे, जो वहाँ की घटनाओं तथा समाचारों को अपने राष्ट्र तक पहुँचाते रहते थे।

इस संघ की एक बैठक कोलोन में भी हुई जिसमें नेहरू जी ने भाग लिया। बाद में यह संघ दिन प्रति दिन कम्यूनिज्म की ओर झुकता गया, और अन्त में ऐसा हो गया कि जिन लोगों का पूँजीवाद या उसके प्रतिनिधियों से थोड़ा सा भी सम्पर्क रहता उससे संघ अपना सम्बंध विच्छेद कर लेती थी। नेहरू जी इस संघ के कई वर्ष तक सदस्य रहे, पर सन् १९३१ में भारतीय कांग्रेस और सरकार के बीच दिल्ली में जो समझौता हुआ और उसमें नेहरू जी ने जो हिस्सा लिया, उससे संघ ने नेहरू जी पर असंतुष्ट होकर उन्हें अपनी सदस्यता से पृथक कर दिया। यहाँ तक कि उसने नेहरू जी को अपनी परिस्थिति, जिनके वशीभूत होकर उन्हें ऐसा करना पड़ा, स्पष्ट करने का अवसर भी नहीं दिया।

१९२७ के ग्रीष्म में पं० मोतीलाल जी सपरिवार योरोप गये तथा वेनिस में अपने पुत्र से भेंट की। इसी बीच नेहरू जी को सोवियत रूस की विदेशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध रखने वाली सभा की ओर से, रूसी स्वतंत्रता के दसवीं वर्ष गाँठ के अवसर पर, सपरिवार रूस आने का आमंत्रण मिला। निमंत्रण पाकर 'किसान और मजदूरों के अपने राज्य" को देखने का लोभ वे संवरण न कर सके; तथा नवम्बर में सपरिवार वे रूस की राजधानी मास्को पहुँच गये। स्वतंत्रता के इन कुछ वर्षों के अन्त

ही रूस में हो जाने वाले इस महान परिवर्तन को देखकर वे काफी प्रसन्न हुए। पं० मोतीलाल पर भी इसका काफी असर हुआ। नये रूस में जार के गगनचुम्बी प्रासादों में मजदूर-संघों के कार्यालय खुल गये थे। मास्को के सबसे बड़े गिरजेघर पर लिखा था "धर्म मनुष्यों के लिए अफीम है।" बड़े और छोटे कार्य करने वाला में कोई भेद न था और सभी 'साथी' कहकर सम्बोधित किये जाते थे। सभी बड़ी फैक्टरियाँ सरकार के अधीन थी। आज से कुछ साल पहले के पूँजीवादी रूस का ढाँचा अब एक दम ही परिवर्तित हो गया था।

वहाँ पंडित जी को मास्को जेल देखने का भी अवसर मिला। रूस में कारागार का उद्देश्य दंड न होकर सुधार है। वहाँ मानवीय भावनाओं को महत्व दिया जाता है। मद्रास में होने वाले राष्ट्रीय महासभा का वार्षिक अधिवेशन निकट होने के कारण, मास्को में ३-४ दिन रहकर नेहरू-परिवार अपनी जन्मभूमि भारत लौटा।

—❀—

भारत की राजनैतिक-स्थिति तथा साइमन कमीशन

सोवियत रूस की युग परिवर्तनकारी महान उन्नति देखकर नेहरू जी का उसकी ओर विशेष आकर्षण हुआ। उसके सिद्धातों, जिस पर वह राष्ट्र आधारित था, का अध्ययन करने के लिए उन्होंने साम्यवादी पुस्तको का अध्ययन आरम्भ किया। अभी तक उन्हें उसके सिद्धात और क्रियात्मक पहलू पर विशेष विश्वास न था। वे उसे केवल एक उच्च तथा काल्पनिक आदर्शवाद ही समझते थे। रूस में जाकर उन्होंने जो कुछ देखा उससे उनके विचार-जगत में क्रातिकारी परिवर्तन हुआ। मजदूर और किसान का सगठन स्वतंत्रता-युद्ध की दृष्टि से अब उनके लिए विशेष मूल्यवान हो गया था। उन्हे अब मशीन से घृणा न रह गयी थी, और वे साम्यवाद-संचालित फैक्टरियों में मशीन के उपयोग को लाभकारी मानते थे। "मशीन औजार है; भले और बुरे दोनों के लिए प्रयोग किया जा सकता है।"

विदेशो में घूम कर और दलित राष्ट्रों के प्रतिनिधियो एवं राजनीति शास्त्र के दिग्गज विद्वानो से मिलकर उनका अंतराष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा अनुभव विस्तृत हो गया था। अब वे राजनैतिक स्वतंत्रता का पहला कदम आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता समझने लगे थे। उनके दृष्टिकोण से, अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति प्राप्त करने के लिए कांग्रेस का उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता होना आवश्यक था, और साथ ही जनसमुदाय की शक्ति और सम्मति प्राप्त करने के लिए यह भी आवश्यक था कि स्वराजी कार्यक्रम मे मजदूरों और किसानो का सक्रिय सहयोग हो।

नेहरू की पारदर्शी दृष्टि ने विश्व के राजनैतिक वातावरण के बीच

से उठते हुए भविष्यगत महायुद्ध की घनी घटाओं को देख लिया था। अतः मद्रास-अखिलभारतीय काग्रेस-कमेटी के अधिवेशन में उन्होंने दो प्रस्ताव रखे—भारत की पूर्ण स्वतंत्रता और भावी युद्ध के वज्रपात से भारत की रक्षा। बिना किसी विरोध के ये दोनो ही प्रस्ताव एक स्वर से मान लिये गये; यद्यपि उस समय काग्रेस ने इन प्रस्तावों के तात्विक रहस्य तथा इसमें छिपे मूलभाव को नहीं समझा था।

काग्रेस के इस मद्रास-स्थित अधिवेशन के अवसर पर वहाँ 'अ०-भारतीय प्रजातांत्रिक काग्रेस' तथा 'हिंदुस्तानी सेवादल' के वार्षिक अधिवेशन भी हुए थे। नेहरू जी ही इन दोनो अधिवेशनों के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे।

मद्रास-काग्रेस ने एक प्रस्ताव पास करके, कार्य-कारिणी को आज्ञा दी कि वह भिन्न-भिन्न राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक दलों के नेताओं से परामर्श करके, मौलिक अधिकारों की घोषणा के आधार पर एक राष्ट्रीय शासन-विधान तैयार करे, और मार्च के महीने तक सर्वदल-सम्मेलन दिल्ली में बुलाकर अपने कार्य को उसके समक्ष उपस्थित करे।

काग्रेस का निमंत्रण स्वीकार कर सभी दलों की एक बैठक दिल्ली में हुई। इसी समय मुस्लिम लीग ने ५ शर्तें उपस्थित की, और किसी भी समझौते पर विचार करने के पूर्व इनकी मान्यता चाही। इस आधार पर अन्य छोटे और साम्प्रदायिक दलो ने भी अपनी मागे उपस्थित की, फलस्वरूप दिल्ली का अधिवेशन विशेष सफल न हो सका। मुस्लिम मागों के आधार पर दो समितियाँ, सिन्ध-विच्छेद और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के प्रश्नो पर विचार करने के लिए नियुक्त की गयी। मई के महीने में फिर सम्मेलन की बैठक बुलायी गयी। इस बीच हिंदूमहासभा मुस्लिम माँगों के विरोध में कई प्रस्ताव पास कर चुकी थी, और परिस्थिति पहले से कहीं विशेष उलझ गयी थी, साथ ही नियुक्त समितियों ने भी अब तक कोई रिपोर्ट पेश नही की थी। सम्मेलन की असफलता की ही अधिक आशंका थी। बम्बई के भिन्न-भिन्न दलों के कुछ प्रतिनिधियों की एक

कमेटी इसी 'सर्वदल-सम्मेलन' के तत्वावधान में बनायी गयी। इसका उद्देश्य सभी साम्प्रदायिक दलों, तथा राष्ट्रीय हितों का ध्यान रखते हुए एक जनतंत्रात्मक विधान का निर्माण करना था। इस कमेटी के अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू थे अतः इसकी रिपोर्ट, 'नेहरू-कमेटी' की रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध हुई। नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट को सफल तथा कार्यात्मक बनाने के लिए जवाहरलाल जी ने जितना उद्योग किया, उसका उल्लेख स्वयं कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में किया है।

यह सब होते हुए भी जवाहरलाल जी इससे पूर्णतः संतुष्ट न हो सके। जहाँ तक साम्प्रदायिक समस्याओं का संबंध था, वे रिपोर्ट के साथ थे, किंतु उनकी दृष्टि में देश के हित के विचार से औपनिवेशिक स्वराज्य को भारत के भावी शासन विधान का आधार बनाना सर्वथा अनुचित था। उनकी धारणा थी कि सामयिक नीति और वास्तविकता के अनुसार भी, पूर्ण स्वतंत्रता ही देश का लक्ष्य होना चाहिए। उसी धारणा के अनुसार उन्होंने लखनऊ-सर्वदल-सम्मेलन के अधिवेशन में मालवीय जी के प्रस्ताव का विरोध करते हुए, निर्भीकता के साथ पूर्ण स्वतंत्रता वादियों की कार्यवाहियों की ओर से भाषण करते हुए घोषणा की थी कि हम लोग इस प्रश्न पर सम्मेलन की कार्यवाहियों से पृथक रहेंगे।

इन्हीं पूर्ण स्वतंत्रतावादियों की नयी समिति का नाम 'इन्डिपेन्डेन्स लीग' पड़ा। लीग ने ३-४ नवम्बर को दिल्ली की अनेक बैठकों में अपना विधान निर्माण किया, और देश भर में पूर्ण स्वतंत्रता का आन्दोलन करने का कार्यक्रम बनाया। श्रीनिवास अयंगर लीग के सभापति निर्वाचित हुए और पं० जवाहरलाल मंत्री। दिसम्बर सन् १९२८ में अ० भा० कांग्रेस महासभा का अधिवेशन पं० मोतीलाल की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ। पं० जवाहरलाल जी इस सम्मेलन में भी अपने पूर्ण स्वतंत्रतावादी सिद्धान्त पर अटल रह तथा पिता के विरुद्ध खड़े हुए। महात्मा गाँधी ने जिस समय कलकत्ता-कांग्रेस के समक्ष नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट पर अपना प्रसिद्ध प्रस्ताव रखा था, उस समय जवाहरलाल जी

अनुपस्थित थे। यद्यपि प्रस्ताव पर उनके दल ने सम्मति दे दी थी, परन्तु नेहरू जी को उससे शान्ति नहीं हुई। गाँधी जी ने स्वयं नेहरू जी की प्रशंसा करते हुए कहा है कि "पूँजीवादी आर्थिक-चक्र में पिसे मजदूरो को देख नेहरू का दिल भर आता था: और फिर एक नवीन जीवनी शक्ति के साथ वे उनकी स्थिति सुधारने के लिए फिर से अपने कार्य में जुट जाते थे।" नेहरू-कमेटी द्वारा बनाये हुए नये विधान के मौलिक अधिकारो में, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा रियासतो के जिन अधिकारो की गारंटी दी गयी थी, उसे नेहरू जी बहुत ही नापसंद करते थे: और उसी के फलस्वरूप नेहरू जी तथा सुभाष बाबू ने ऐसी संस्था से, जो इन आधारों पर सर्वहारा जनता के अधिकारों के साथ अपने नये विधान में विश्वासघात करने जा रही थी, सम्बन्ध तोड़ लेना चाहा था।

समस्त विरोधो और कठिनाइयों को सहते हुए भी, अंत में कांग्रेस ने घोषित कर दिया कि यदि आज से एक वर्ष के भीतर, ३१ दिसम्बर सन् १९२९ तक बृटिश सरकार ने नेहरू-रिपोर्ट के आधार पर औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वचन न दिया तो काग्रेस देश में पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर देगी; सरकार को टैक्स न देने का आन्दोलन आरम्भ कर देगी। उक्त निश्चित समय के पूर्व तक काग्रेस देश को आनेवाली लड़ाई के लिए तैयार करेगी।

इसी बीच काग्रेस की आशा के विपरीत साइमन-कमीशन भारत की राजनैतिक स्थिति का अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट तैयार करने के लिए देश भर में दौरा कर रहा था। सरकार ने नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट तथा काग्रेस के प्रस्ताव पर बिल्कुल ध्यान न दिया। फलस्वरूप काग्रेस ने साइमन कमीशन के बहिष्कार का निश्चय किया। कमेटी ने एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चित किया कि "यह दृष्टि में रखते हुए कि बृटिश सरकार ने भारत के आत्मनिर्णय के अधिकार की अवहेलना करके एक कमीशन नियुक्त किया है, यह काग्रेस यह निश्चित करती है कि इस परिस्थिति में

भारत के लिए केवल एक ही मार्ग शेष है, और वह है प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक समय कमीशन का बहिष्कार करना।"

कांग्रेस को इस कार्य मे काफी सफलता मिली। इस कार्य में नरम दल वालो ने भी कांग्रेस का साथ दिया। जहाँ-जहाँ कमीशन गया वहाँ वहाँ विरोधी जन-समूहो ने काले झंडे के साथ 'साइमन लौट जाओ' (Siman go back) की बुलंद आवाज से उसका स्वागत किया। कमीशन के मेम्बर इस प्रदर्शन से इतना घबड़ाये कि कभी कभी रात के अंधेरे दामन को चीर, स्वप्न में भी सहस्रों कण्ठ से निकली यह आवाज उन्हें अपना पीछा करती हुई मालूम होती।

कभी कभी भीड़ द्वारा अपने प्रभु अंग्रेज साहबों के प्रति की गयी इस गुस्ताखी से चिढ़कर, पुलिस, सत्याग्रहियों की पीठ और सिरो पर अपने दो चार सधे हाँथ दिखला देती। कांग्रेस प्रदर्शनकारियों पर लाठियों का इस प्रकार अनुचित और खुला प्रहार साइमन-कमीशन के दौरे के समय पहली वार हुआ था। लाहौर मे इस प्रकार के एक नृशंस कार्य ने देश के कोने-कोने में घृणा और क्रोध की एक लहर दौड़ा दी। लाहौर में साइमन-विरोधी प्रदर्शन लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे हुआ। एक नौजवान अंग्रेज अफसर ने इससे खीझकर उनकी छाती पर कई डंडे लगाये। सम्पूर्ण हिन्दुस्तान प्रतिशोध की अग्नि से उबल पड़ा। बच्चा-बच्चा यह सोचने लगा, हाय! हम कितने असहाय और कमजोर हैं कि अपने नेताओं के सम्मान की रक्षा तक नहीं कर सकते। लालाजी को शारीरिक चोट कम न लगी थी, परन्तु उससे भी अधिक मानसिक चोट लगी थी, इसलिए नहीं कि उनका अपमान हुआ था, बल्कि इसलिए कि उनपर किये गये प्रहार में राष्ट्रीय अपमान रो-रो कर अपनी आत्मकथा कह रहा था, और इसी चोट ने लालाजी को गुलाम देश से हमेशा के लिए उठा लिया। अपने दिल से उठती आह को दबाकर उस समय उन्होंने कहा था, "मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट बृटिश साम्राज्य के कफन की कील साबित होगी" सचमुच इस कथन मे कितनी सत्यता थी।

सत्ताधारियों की इस चोट ने हिन्दुस्तान के सोये स्वाभिमान को झकझोर कर जगा दिया। गांधीजी के प्रयत्न से वर्षों से सोयी हिंसा अँगडाई लेकर उठ बैठी। राष्ट्र को अपमानित करने वाले अंग्रेजों को दण्ड देने वाले, क्रांतिकारी सरदार भगतसिंह का नाम पंजाब के घर-घर में गूँज उठा। शहरों और सुदूर गाँवों में माता अपने नवजात शिशुओं को भगतसिंह की वीरता के गीत सुनाने लगी; लोगो को लगा कि अपने हिंसात्मक कार्यों से भगतसिंह ने भारत के सम्मान की रक्षा की है। यद्यपि भगतसिंह के कार्य भूल गये, परन्तु देश की चेतना और उत्साह के लिए उसका नाम एक प्रतीक सा बन कर हर हिन्दोस्तानी के दिल और दिमाग पर छा गया।

साइमन-कमीशन के विरोध मे नेहरू जी के प्रयत्न से प्रयाग में भी ३ फरवरी को सफल हड़ताल हुई। पानी बरसते रहने पर भी सार्वजनिक सभा के अवसर पर वहाँ काफी भीड रही। नेहरू जी का कार्यक्रम इस संबध में प्रयाग तक ही सीमित न रहा, वरन प्रांत के भिन्न-भिन्न नगरों में कमीशन का बहिष्कार सफल बनाने में भी उन्होंने पूर्ण सहयोग दिया।

कमीशन के सक्रिय बहिष्कार करने में ही नेहरू जी को जीवन में सर्व प्रथम लखनऊ में पुलिस की लाठियों का शिकार होना पड़ा। साइमन कमीशन का आगमन लखनऊ में भी होने वाला था। सरकार चाहती थी कि लखनऊ में इसका बहिष्कार सफल न हो सके, पर कांग्रेसी नेतागण इस कार्य के लिए अपनी शक्ति संगठित कर रहे थे। २६ नवम्बर को अपार जन-समूह ने जुलूस में शामिल होकर सरकार को और भी शंकित कर दिया। अधिकारियों ने २८ नवम्बर को होने वाले जुलूस में जनता को भय दिखलाकर निरुत्साह करने की ठान ली। ता० २८ को पुलिस ने गोलियों और लाठियों का प्रयोग निहत्थे जुलूस पर किया, और बहुतों को इससे चोट आयी। इसी समय नेहरू जी भी लखनऊ पहुँच गये।

ता० २६ के दिन दो सभाये होनी निश्चित हुई थीं। बड़ी सभा अमीनुद्दौला पार्क में; और दूसरी मुहल्ला नरही की छोटी सभा हजरतगंज

के पास। पं० नेहरू कई सहकारियों के साथ मुहल्ला-सभा में उपस्थित थे। उस दिन अधिकारियों ने 'जुलूस से सड़कें रुक जाती हैं' घोषित करके उस पर प्रतिबंध लगा दिया था। फलस्वरूप अधिकारियों को इस तरह की शिकायत का मौका न देने की गरज से, नेहरू जी ने सोलह-सोलह की टोलियों में बड़ी सभा में जुलूस भेजने का निश्चय किया। पहली टोली के नायक स्वयं जवाहरलाल जी दल के आगे तिरंगा झंडा लिए हुए चल रहे थे। थोड़ी दूर से एक दूसरा दल प० गोविन्दवल्लभ पंत के नेतृत्व में आ रहा था। पुलिस भी अपने प्रभुओं की आज्ञा से मुस्तैदी पूर्वक इन दलों की रोक-थाम कर रही थी, और उधर जनता की अपार भीड़ उस संघर्ष को देखने के लिए उमड़ पड़ रही थी।

प० जवाहरलाल का दल मुश्किल से २०० कदम आगे बढ़ा होगा कि उसे सहसा पीछे से आने वाले घोड़ों के टापों की आवाज सुनायी दी। क्षण भर बाद ही दो-तीन दर्जन पुलिस घुड़सवार उस स्थान पर आ पहुँचे, और बेदर्दी के साथ उस झुण्ड को तितर-बितर करने के लिए उन पर लाठियों की वर्षा करने लगे; यहाँ तक कि भागते हुए व्यक्तियों का भी पीछा किया गया और उन्हें लाठियों से मार-मार कर गिरा दिया गया।

सड़क के बीच एक स्थान पर नेहरू जी को अविचल खड़ा देख कर एक सवार उनकी ओर डंडा घुमाता हुआ बढ़ा। अपमान और क्रोध की ज्वाला से दग्ध-हृदय नेहरू ने उसकी ओर देखकर ललकारते हुए कहा—"मारो! मारो!" और दासता का वह प्रतीक स्वतन्त्रता के उस पुजारी के सुकोमल पीठ पर अपनी पाशविक शक्ति से पिल पड़ा। डंडों की मार से जवाहरलाल जी को चक्कर आ गया, परन्तु वे स्वयंसेवकों को साहस बँधाते हुए और अपने उपर हुए अत्याचार को सहन करते हुए घटना-स्थल पर खड़े रहे। यह निश्चय ही अहिंसात्मक संघर्ष का एक बड़ा ही दारुण दृश्य था, जब कि पुलिस को अपने ऊपर हमला होने का कोई भय नहीं था पर वह सब तरफ भीषण आक्रमण करके अंधाधुन्ध लाठियाँ बरसा सकती थी।

इस दर्दीली घटना के पश्चात् ही पुलिस पीछे हट गयी और उस जुलूस को आगे न बढ़ने देने के उद्देश्य से घेरा बाँध कर सड़क रोक ली। कड़ी चोट से ग्रस्त स्वयंसेवक फिर उसी स्थान पर जुट गये। इतने में ही कठिन मार का सामना करने के पश्चात् पं० गोविन्दवल्लभ पन्त का जुलूस भी वहीं पहुँच गया। अपार दर्शकों की अथाह भीड़ में असंतोष बढ़ते देख कर, शांति-भंग की आशंका से अधिकारियों ने उस जत्थे को अपनी राह चले जाने देना ही उचित समझा; अतः उनका रास्ता छोड़ दिया गया।

दूसरे ही दिन, ता० ३० को साइमन-कमीशन का आगमन होनेवाला था। कल की घटना से लखनऊ के निवासियों में उत्तेजना बढ़ गयी थी, अतः वे स्वयं स्टेशन पर टिड्डियों के दल से उपस्थित हो रहे थे। स्वयं जवाहरलाल जी भी करीब नौ बजे दल-बल स्टेशन की ओर रवाना हुए। इस विराट जुलूस का नेतृत्व श्री जवाहरलाल तथा श्री गोविन्दवल्लभ पंत कर रहे थे। जुलूस जाकर स्टेशन के सामने के एक मैदान में शांति से खड़ा हो गया। अचानक दूर से घुड़सवारों का काफी लम्बा दल बढ़ता हुआ आया, तथा उन्हें तितर-बितर करने के लिए उन पर बेदर्दी से लाठी-प्रहार करने लगा। जवाहरलाल लाठियों के इस प्रहार से तिलमिला उठे और उनकी आँखों के आगे अंधेरा छाता सा मालूम हुआ। स्वयंसेवकों की पंक्तियां धीरे-धीरे पीछे हटने लगीं परन्तु हठी जवाहर अकेले ही वहाँ डटे रहे। अंत में कुछ स्वयंसेवकों ने अचेतावस्था में उन्हें वहाँ से हटाया। पं० गोविन्दवल्लभ पंत पर तो जवाहरलाल जी से भी अधिक मार पड़ी थी।

साइमन-कमीशन आया और काले झण्डों तथा 'साइमन लौट जाओ' के नारों के बीच, साम्राज्यवादी पुलिस का निहत्थों पर यह 'वीरता पूर्ण प्रहार' देखता हुआ बहुत दूर से ही निकल गया।

सरकार के निरंकुश दमन से बहिष्कार-आन्दोलन को जितनी शक्ति

मिली उसका प्रत्यक्ष प्रमाण लखनऊ का यह कांड था। पं० जी को डंडों का शिकार बनाकर सरकार ने बहिष्कार-आन्दोलन को लोगों की दृष्टि में दूना ऊँचा कर दिया और देश में अपने प्रति विरोध बढ़ा लिया। देश के राजनैतिक वातावरण को इससे और भी प्रोत्साहन मिला।

—※—
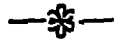
जननेतृत्व

जब से प० जवाहरलाल नेहरू योरोप से लौट कर आये, तभी से देश के विभिन्न प्रान्तो ने उन्हें अपनी कान्फ्रेन्सो में सभापति बनाकर सम्मानित किया था। १६२८ में सयुक्तप्रान्त, पजाब, दिल्ली, केरल आदि प्रान्तो के सभापति-पद पर वे आसीन हुए, तथा अधिवेशन मे उपस्थित अपार जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन और उसके क्रियात्मक महत्व का सदेश पहुँचाया।

राजनीतिक दृष्टि से १६२८ का साल एक भरा-पूरा साल था। देश भर के सभी वर्गों में—कारखानो के मजदूरो और किसानो में भी, मध्यम वर्ग के नौजवानो और पढ़े लिखे लोगो में भी—एक नये जीवन की लहर—जन-जागृति व्याप्त थी। एक नयी प्रेरणा, एक नयी जिन्दगी से सम्पूर्ण राष्ट्र चेतन हो उठा था। पश्चिमी देशो, विशेषतः रूस का सतर्क निरीक्षण करने के पश्चात्, नेहरू जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन की सफलता के लिये देश के आर्थिक तथा सामाजिक तत्वों पर ध्यान देना तथा उसे अपनी ओर मिलाना आवश्यक है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए नेहरू जी ने सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का दौरा भी किया, तथा भाषणो के द्वारा अपना सदेश सर्वहारा वर्ग तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। हर स्थान पर उन्होंने राजनैतिक आजादी और सामाजिक स्वाधीनता पर जोर दिया, और यह कहा कि राजनैतिक आजादी सामाजिक स्वाधीनता की सीढ़ी है, अर्थात् आर्थिक स्वाधीनता के लिये राजनैतिक आजादी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त नेहरू जी अपने भाषणो मे भारत की प्राचीन संस्कृति और गौरव पर विशेष आस्था प्रकट कर उन्हें फिर से स्थापित करने पर जोर देते थे। वे जनता को बतलाते थे कि विदेशी सरकार ने

राष्ट्र को क्या क्या भौतिक और आध्यात्मिक हानि पहुँचायी है। बृटिश साम्राज्यवादी पूँजीपतियो के शोषण, तथा भारतीयो के प्रति किये जाने वाले अत्याचारो का नंगा चित्र खींचकर, वह जनता जनार्दन से अपील करते कि हमारी कौमी इज्जत का तकाजा है कि हम आजाद हो, और इस ध्येय की पूर्ति के लिये यह आवश्यकता है कि हम लोग मातृ-भूमि की वेदी पर हँसते-हँसते बलि हो जावें।

इन्ही दिनों किसानो मे भी एक नवीन प्रकार की जाग्रिति हो रही थी। विशेषतः यह नयी करवट अवध और संयुक्तप्रान्त ने ली थी, जहाँ अपने ऊपर होने वाले जमीदारो के अत्याचारों का विरोध करने के लिये किसानो की बड़ी बडी सभाये तथा सगठन होने लगे थे। लोग यह महसूस करने लगे थे कि अवध के जोत सम्बधी कानून ने किसानो को उनकी आशा के विपरीत भूमि पर अत्यन्त अल्प हक दिये है, उससे उनमें असन्तोष की वृद्धि हो गयी थी। मालगुजारी के प्रश्न पर गुजरात के किसानों ने तो एक बड़े पैमाने पर सघर्ष ही आरम्भ कर दिया था। कृषकों का यह सफल सघर्ष सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व मे हुआ प्रसिद्ध बारडोली का सत्याग्रह था। इस आन्दोलन मे किसानो की विजय हुई तथा उनकी मालगुजारी में वृद्धि का प्रश्न सरकार ने छोड ही दिया। इस आन्दोलन तथा उसकी सफलता का हिन्दुस्तान की नव जाग्रिति पर बडा अच्छा असर पडा, विशेषतः किसानो के लिये बारडोली आशा, शक्ति, और विजय का प्रतीक बन गया। इस के पश्चात् ही युक्तप्रान्तीय काग्रेस कमेटी ने नेहरू जी के प्रस्ताव को मान्यता देते हुए 'जमींदारी प्रथा दूर होनी चाहिये' की घोषणा की। १६२६ मे काग्रेस के बम्बई-अधिवेशन मे भी सयुक्तप्रान्त के इस प्रस्ताव ने मान्यता प्राप्त की।

१६२८ के व्यस्त वर्ष मे अन्य आन्दोलन तथा जाग्रिति की भाँति, नौजवानो के आन्दोलन ने भी जोर पकडा। हर जगह युवक-संघ स्थापित हो रहे थे, तथा युवक-कान्फ्रेन्सें की जा रही थी। युवकों में इस नयी चेतना का उदय कुछ तो धार्मिक आधारो तथा कुछ क्रान्तिकारी राजनैतिक विचार

धारा को लेकर हो रहा था। परन्तु इस नव-जागृति का आधार कुछ भी रहा हो, और उनका नियंत्रण किसी के हाथ में भी रहा हो, वे हिन्दुस्तान की तत्कालीन नवचेतना की प्रतीक थी। युवकों की ऐसी सभायें आमतौर पर तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर विचार करती थी, और साधारणतः उनका झुकाव इसी ओर होता था कि मौजूदा व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन कर देना आवश्यक है। प० जवाहरलाल जी ने युवक-आन्दोलन में भी विशेष रूप से भाग लिया, और कम से कम युक्त-प्रान्त के युवक-आन्दोलन के तो वे कर्णधार ही थे। यूरोप में युवकों की कर्तव्य-शक्ति देख कर, उन्हें विश्वास हो गया था कि देश की आजादी युवकों के हाथों ही स्थापित हो सकती है। युवकों का नया और जोशीला खून ही आदर्श के नाम पर बड़े बड़े त्याग कर सकता है। संसार की बहुत कुछ प्रगति का श्रेय युवकों को भी है। अतः प० जी ने सोशलिस्ट-युवक-कांग्रेस, बंगाल विद्यार्थी-परिषद्, और बंबई-प्रान्तीय-युवक-संघ के अनुरोध पर, उनके वार्षिक अधिवेशनों में सभापति का पद ग्रहण कर, भारत के कोटि कोटि युवकों तक अपना संदेश पहुँचाया, और उनके सामने उनके कर्तव्य की तथा एक अनुपम कार्यक्रम की पृष्ठभूमि उपस्थित किया।

किसानों और मध्यवर्गीय युवकों की भाँति, इन्हीं दिनों मजदूर-संघों में भी काफी हलचल बढ़ गयी थी। सात-आठ साल पहले कायम हुई आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस अब पहले से अधिक संगठित हो गयी थी, तथा उसके मेम्बरों की संख्या भी अब काफी अधिक हो गयी थी। वर्ग-चेतना (Class consciousness) की वृद्धि के फलस्वरूप औद्योगिक शहरों में अक्सर हड़तालें हो जाती थी। कपड़े की मिलों और रेलों में काम करने वाले मजदूर अधिक संगठित थे।

परन्तु इन मजदूर-संगठनों में अनेक दोष भी थे। अपनी जातीय प्रवृत्ति के अनुसार, हिन्दुस्तान के मजदूर-संघों को कायम होते देर न हुई कि वे एक दूसरे से ही होड़ लेने वाले तथा दुश्मनी रखनेवाले दलों में बँट गये। इनके विशेषतः दो दल हो गये। एक दल, जो 'दूसरी इन्टरनेशनल' के

पक्ष मे था, तथा मजदूर-स्वार्थ-संघर्ष में दूसरे दल की अपेक्षाकृत सुधारवादी नरम मार्ग अपनाना चाहता था, के नेता श्री एन. एम. जोशी थे। दूसरा दल, जो कम्यूनिस्ट विचारधारा की ओर विशेष झुका हुआ था, खुल्लम खुल्ला क्रान्ति द्वारा आमूल परिवर्तन के पक्ष मे था। इन दोनो के बीच में कई किस्म की राये थी जिनमे मात्रा का भेद था, और जैसा कि आम जनता के संगठन मे होता है, इसमे कुछ अवसरवादी व्यक्ति भी आ घुसे थे।

नेहरू जी ने अन्य आन्दोलन की भाँति मजदूर-आन्दोलन मे भी भाग लिया। ऐसे उत्साही तथा यशस्वी कार्यकर्ता को पाकर आन्दोलन को बल प्राप्त हुआ। मजदूर-कांग्रेस ने सन् १९२८ मे नेहरू जी को अखिल भारतीय-मजदूर-संघ का सभापति निर्वाचित किया। नेहरू जी के कार्य ने एक कड़ी बन कर कुछ समय के लिए अखिलभारतीय कांग्रेस-महासभा तथा मजदूर-संघ को परस्पर जोड़ दिया। पहली नवम्बर १९२९ को नागपुर मे नेहरू जी की अध्यक्षता मे मजदूर-संघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इसके लगभग दो महीने पूर्व संयुक्त-प्रांतीय मजदूर-संघ की सभा पंडित जी की अध्यक्षता मे कानपुर में हुई थी।

देश-व्यापी मजदूर-आन्दोलन तथा हड़तालों से त्रस्त बृटिश-पूँजीवादी सरकार ने अपना अनैतिक दमन-चक्र इस पर भी चलाने का निश्चय किया। बड़े-बड़े अंग्रेज मिल-मालिको की इससे अत्यधिक हानि हो रही थी अतः इंगलैंड की उच्चवर्गीय जनता मे काफी असंतोष फैला था। फलस्वरूप सरकार ने मेरठ षड़यन्त्र का झूठा दोषारोपण मढ़ कर, न्याय का ढोंग रचने के लिए देश के सम्पूर्ण मजदूर-नेताओं को अदालत के सामने पकड़ मँगवाया; यह मुकदमा करीब साढ़े चार साल चला। मेरठ के इन निर्दोष मुल्जिमों की मदद के लिए कांग्रेस ने पं० मोतीलाल के सभापतित्व मे एक जाच-कमेटी नियुक्त की। डा० अंसारी तथा जवाहरलाल जी भी इसके मेम्बर थे। अपने इन निर्दोष भाइयों की रक्षा के हेतु वे जनता के पास जाकर धन की याचना करते, तथा स्वयं भी जी जान से अभियुक्तो की पैरवी तथा अन्य कानूनी मदद करते।

राष्ट्रपति जवाहरलाल

धीरे धीरे गरमी और बरसात की ऋतु बीत कर ज्योंही शरद-ऋतु आयी, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ, कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन के लिए अध्यक्ष चुनने के कार्य मे लग गयी। इस समय देश की राजनैतिक परिस्थिति विषम हो रही थी। कलकत्ता-कांग्रेस की घोषणा, कि नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार यदि सरकार अपना शासन-सूत्र नही संचालित करती, तथा एक वर्ष के भीतर देश को औपनिवेशिक स्वराज्य नही दे देती तो कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य-आन्दोलन के लिए कटिबद्ध हो जायेगी, की अवधि समाप्त हो चली थी, तथा सरकार ने इसे गीदड़-धमकी समझ कर इसकी ओर कोई ध्यान न दिया था। कांग्रेस के कार्यक्रम के अनुसार अब पूर्ण स्वराज्य-आन्दोलन आरम्भ होने ही वाला था। ऐसे संकट-काल मे, राष्ट्र की विषम परीक्षा के समय, देश के नेतृत्व के काटों का ताज किसे पहनाया जाय यह प्रश्न सभी के समक्ष था। प्रान्तीय कमेटियाँ एक मत से अपने अडिग सेनानी गाँधी को अपने नेतृत्व की बागडोर देने को तैयार थीं; परन्तु गाँधी जी ने इसे मंजूर न किया। वे चाहते थे कि इस अवसर पर यह पद किसी ऐसे नवयुवक नेता को देकर सम्मानित किया जाये, जिस पर देश के जन-समुदाय तथा सभी दलों का पूर्ण विश्वास हो, तथा जिसके आगमन से युवक वर्ग मे विशेष उत्साह, उत्तरदायित्व तथा आत्मगौरव के भाव का उदय हो। फलस्वरूप उन्होंने जवाहरलाल जी का नाम प्रस्तावित किया। उनके अनुरोध पर कांग्रेस ने लाहौर-अधिवेशन तथा अगले वर्ष के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस महासभा का राष्ट्रपति ४० वर्षीय नवयुवक नेहरू जी को निर्वाचित किया। गाँधी जी के उस

समय के व्यक्त विचारानुसार पं० जवाहरलाल नेहरू "स्फटिक मणिवत् पवित्र हैं, उनकी सत्यशीलता सन्देह से परे है, वे अहिन्सक और अनिन्द-नीय योद्धा हैं, राष्ट्र उनके हाथों मे सुरक्षित होगा।" नेहरू जी की जन-सेवाओं, तथा मजदूर, किसान और युवकों का अदम्य उत्साह से नेतृत्व को देखकर गाँधी जी को उनकी गम्भीरता और धैर्यशीलता मे पूर्ण विश्वास था, वे कांग्रेस के सभापति-पद के लिए उन्हे पूर्ण रूप से योग्य समझते थे। दिवान चम्मनलाल के शब्दो मे उन दिनों "पं० जवाहरलाल जी साहस, चातुर्य और लावण्य की प्रतिमूर्ति जान पडते थे। कोई भी संस्था उनसे बढ़कर सभापति पाने की आशा नही कर सकती, और कोई भी कार्यवाहियाँ इतनी योग्यता से सम्पादित नहीं हो सकती थी।"

लाहौर-कांग्रेस के अधिवेशन का दिवस नजदीक आता जा रहा था। इस बीच घटनायें एक-एक कर के ऐसी घटती जा रही थीं, जिनसे मालूम होता था कि वे अपनी अज्ञात ताकत से खुद ही आगे बढ़ती जा रही हैं। हर व्यक्ति को यही मालूम होता था कि वह किसी बडी मशीन के अन्दर, जो बेरोक आगे बडी जा रही है, सिर्फ एक पुरजे की तरह काम कर रहा है।

हिन्दुस्तान के भाग्य-सूर्य की बढ़ती हुई इस प्रखरता को रोकने की गरज से बृटिश सरकार ने लार्ड इर्विंग को वायसराय बनाकर भारत भेजा था। इर्विंग नें चालाकी भरे शब्दों मे शासन-सुधार का आश्वासन देकर सभी दलों के नेताओं की एक गोलमेज-कान्फ्रेंस बुलायी। इर्विंग की यह घोषणा काफी कूटनीति पूर्ण थी, जिसका मतलब 'बहुत कुछ' और 'कुछ भी नहीं' दोनों ही लगाया जा सकता था। गोलमेज-कान्फ्रेन्स के निमंत्रण पर अनेक आशा लेकर कांग्रेस के गरम दल की ओर से गाँधी जी, पं० मोती लाल नेहरू तथा विठ्ठल भाई पटेल, और नरम दलकी ओर से सर तेज बहादुर सप्रू आदि दिल्ली में उपस्थित हुए। सभी दलो के नेताओं की सर्व सम्मति से एक संयुक्त प्रस्ताव, कुछ अनिवार्य शर्तों के साथ वायस-राय के समक्ष उपस्थित किया गया, जिसमे कहा गया था कि ये वे कम

से कम शर्तें हैं, जिनके अमान्य होने पर सरकार और कांग्रेस का कोई भी सम्बन्ध न रहेगा। सभी दलों की एकता और एक स्वर सहमति की प्राप्ति के लिए, कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को निर्मित करते समय तथा हस्ताक्षर करते समय, अपने सिद्धान्त पर भी आघात कर काफी नीचे गिरना मंजूर कर लिया था, इससे कांग्रेस के कुछ सदस्य नाराज भी थे। इस प्रस्ताव में स्वाधीनता की माँग को कांग्रेस द्वारा त्याग देना, चाहे सिर्फ कल्पना में और सिर्फ थोड़ी देर के ही लिए क्यों न हो, एक गलत और खतरनाक बात थी। जनता के समक्ष उसका मतलब यह हो सकता था कि कांग्रेस को पूर्ण स्वतंत्रता की बात, और कलकत्ता-कांग्रेस की महत्वपूर्ण घोषणा एक चाल मात्र थी, तथा शेर की खाल ओढ़े उनके कुछ सम्मानित नेता उसके आधार पर सरकार से निकट भविष्य में सौदा करना चाहते थे। वह कोई ऐसी सारभूत चीज न थी जिसके बिना जनता का परतन्त्र देश की बंद और गंदी हवा में साँस लेना ही मुश्किल हो। नेहरू जी ने इस चीज को समझा और उन्होंने तथा सुभाष बाबू ने ऐसे प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। इसके कारण ही नेहरू जी ने कांग्रेस के निर्वाचित सभापति-पद से भी पद-त्याग कर देने की बात सोची, परन्तु अंत में गाँधी जी आदि नेताओं के अनुरोध से वे पद पर आसीन रहे तथा प्रस्ताव पर हस्ताक्षर भी कर दिया। इतना होने पर भी वायसराय ने प्रस्ताव को कोई विशेष महत्व न दिया। फलस्वरूप लाहौर-कांग्रेस के कुछ ही दिन पूर्व कांग्रेस और सरकार के बीच में समझौते का कोई आधार ढूढ़ने की आखीरी कोशिश की गयी। तत्कालीन वायसराय लार्ड इर्विंग के साथ एक मुलाकात का इन्तजाम किया गया। इस मुलाकात में गाँधी जी और प० मोतीलाल जी कांग्रेस का दृष्टिकोण प्रकट करने के लिए उपस्थित थे, इसके अतिरिक्त जिन्ना, पटेल; तथा नरम दल की ओर से सर तेजबहादुर सप्रू आदि नेता भी उपस्थित थे। इस मुलाकात का कोई नतीजा न निकला और यह पाया गया कि दो प्रधान पार्टियाँ, सरकार और कांग्रेस, एक दूसरे से बहुत फासले पर खड़ी थीं। अतः अब इसके

सिवा कोई रास्ता न रहा कि कांग्रेस अपना कदम आगे बढ़ाये। कलकत्ते में दी हुई एक साल की अवधि खतम हो गयी थी, अब कांग्रेस का आदर्श हमेशा के लिए स्वाधीनता-घोषित करना था, और उसे प्राप्त करने के लिए जरूरी कार्रवाइयाँ करनी थी।

२४ दिसम्बर १९२९ को भारतीय कांग्रेस का ४४ वाँ वार्षिक अधिवेशन नेहरू जी की अध्यक्षता में, रावी नदी के तट पर हुआ। इसके एक वर्ष पूर्व जिस स्थान पर पिता बैठा था उसी सम्मानित स्थान पर आज योग्य पुत्र आसीन हुआ था। जनता के सामने बूढ़े पिता ने सगर्व कहा था "जो काम पिता पूर्ण न कर सका उसे पुत्र पूरा करेगा।" निश्चय ही उनका संकेत भारत के भावी स्वराज्य की ओर था। वास्तव में जवाहर लाल जी ने ऐसा ही किया। कांग्रेस की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा, मंच से पं० मोतीलाल जी के समय नहीं, वरन पं० जवाहरलाल जी की अध्यक्षता में, रावी के तट पर हुई थी। भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास, रावी की गम्भीर लहरें, उसका गहरा नीला पानी इसके साक्षी हैं।

लाहौर-कांग्रेस का अधिवेशन पं० जवाहरलाल की अध्यक्षता में धूमधाम से सम्पन्न हुआ, जिसमें देश भर के हजारों नेता, प्रतिनिधि और दर्शक उपस्थित थे। कांग्रेस के उस सजे-सजाये विशाल मंडप और उस सम्पूर्ण क्षेत्र का नाम 'लाजपत राय नगर' था।

कलकत्ता-कांग्रेस के अवसर पर पं० मोतीलाल नेहरू की सवारी ३४ श्वेत अश्वों की गाड़ी पर निकली थी, परन्तु पं० जवाहरलाल की सवारी उनकी इच्छानुसार एक श्वेत अश्व पर निकली। 'वन्दे मातरम्' की गगन-भेदी ध्वनि में राष्ट्रपति जवाहरलाल घोड़े पर सवार हो चले। उनके पीछे प्रधान सेनानायक सरदार मंगल सिंह भी उसी रंग के अश्व पर आसीन थे। अपार जन-समूह ने अपने राष्ट्रनायक नेहरू का आल्हाद पूर्ण अपूर्व स्वागत किया। स्वयं पिता ने पुत्र पर फूलों की वर्षा की, तथा माता ने हर्षातिरेक में रुपयों की वर्षा की। सभा-भवन के द्वार पर नव

युवक राष्ट्रपति को पुष्पहार पहनाया गया, वहीं उन्होंने स्वर्गीय लाला लाजपत राय की पत्नी से भेंट किया।

सभा-भवन में पं० मोतीलाल ने हिन्दी मे भाषण करते हुए, कांग्रेस-अध्यक्ष-पद पं० जवाहरलाल जी को प्रदान किया। उस समय विनोद पूर्वक मीठी हँसी और करतल ध्वनि के बीच उन्होंने कहा था, मैं नये अध्यक्ष महोदय को यह विश्वास दिलाता हूँ कि मै अत्यन्त नियमशील रूप से उनके आदेशों का पालन करूँगा। उस समय, 'राष्ट्र नायक जवाहर लाल चिर आयु हो' और 'वन्दे मातरम्' की जय-ध्वनि के बीच युवक शिरोमणि पं० नेहरू ने सभापति का आसन ग्रहण किया। श्रीमती सरोजनी नायडू ने उन्हे फूलों की माला पहनाई।

२६ दिसम्बर को कांग्रेस के इस महाअधिवेशन का पहला दिन था। लाखों व्यक्तियों के जन-समूह के बीच जवाहरलाल जी ने कांग्रेस का तिरंगा राष्ट्रीय झंडा लहराया। कांग्रेस-स्वयंसेवक-सेना के प्रधान, सरदार मंगल सिंह ने सैनिक ढंग से उनका अभिवादन किया।

पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण मे कहा:—"मैने अभी भारत का राष्ट्रीय झंडा फहराया है। यह भारत की स्वतंत्रता का चिन्ह है और भारत की एकता की निशानी है. याद रखिये जब एक बार यह झंडा फहराया जा चुका, तो यह तब तक न गिरने पाये जब तक देश का एक मनुष्य भी जीवित है।... जिस झंडे के नीचे आप लोग यहाँ खड़े हैं वह किसी सम्प्रदाय का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण देश का झंडा है। आज इस झंडे के नीचे जो लोग खड़े हैं, वे न तो हिन्दू हैं और न तो मुसलमान, बल्कि सब भारतीय हैं। भारत की स्वतंत्रता ही सब भारतीयो का प्रधान लक्ष्य है।"

२६ दिसम्बर को इसी कांग्रेस के अधिवेशन में करतल ध्वनि के बीच उठकर उन्होंने अपना लिखित भाषण पढ़ा:—"गत ४४ वर्षों से यह राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) भारत की स्वतंत्रता के लिए निरंतर प्रयत्न कर रही है। इस बीच महासभा ने भारतीयों मे राष्ट्रीय भावनाये भरी हैं,

और उन्हे गहन निद्रा से जगाकर राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ाया है तथा उसे शक्तिशाली बनाया है। हम अपनी शक्तियों, और निर्बलताओं को भली भाँति जानते हुए, अपने राष्ट्र के भविष्य को कुछ आशा और आशंका की दृष्टि से देख रहे हैं. ।"

"आज हमारे समक्ष गभीर राष्ट्रीय प्रश्न और समस्याएँ उपस्थित हैं. संसार एक उथल-पुथलकारी दिशा में है, और उसी के परिवर्तन के फलस्वरूप एक नवयुग का उदय होने वाला है।"

"भविष्य के संबंध मे कुछ कहना कठिन है, पर फिर भी हम थोड़े-बहुत निश्चत के साथ यह कह सकते हैं कि एशिया और भारतवर्ष संसार की भावी नीति निर्धारित करने मे एक निर्णायक का कार्य करेंगे। यूरोपीय साम्राज्य के इने-गिने दिन ही रह गये।.. .. हमारे समक्ष महत्व पूर्ण प्रश्न सामाजिक और आर्थिक समानता का है। भारत को, यह समस्याये हल करने के लिए आवश्यक साधन ढूढ़ने हैं। जब तक वह ऐसा नहीं कर लेता तब तक उसका राजनैतिक तथा सामाजिक संगठन सुदृढ़ नहीं हो सकता... ।"

"मुझे धर्म और साम्प्रदायिकता से कोई प्रेम नहीं है। मुझे यह समझने मे कठिनायी होती है कि राजनीतिक और अर्थिक अधिकार क्यों किसी धर्म या वर्ग के मानने पर निर्भर होंने चाहिए .. ।"

इसके पश्चात् राष्ट्रपति नेहरू ने बृटिश शासको की अनीति और प्रतिज्ञा-भंग की ओर संकेत करते हुए कहा, कि उनके वादे तथ्यहीन, निम्नकोटि के तथा अस्पष्ट हैं, जिन्हे पूरा करने के लिए वे अपने को बाध्य नहीं समझते। औपनिवेशिक स्वराज्य केवल भ्रम-जाल है। दस वर्ष के लिए किये गये शासन-सुधारों से भारतीय जनता का बोझ पहले से और भी ज्यादा बढ़ गया है। आज हमारे समक्ष केवल एक ही लक्ष्य है, पूर्ण स्वधीनता का। हम संकुचित राष्ट्रीयता या स्वाधीनता नही चाहते। हमारी इस पूर्ण स्वाधीनता का उद्देश्य अन्य राष्ट्रों से पृथक

रहना नहीं है। हमारी पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ बृटिश साम्राज्य से संबंध विच्छेद करना है . ...।"

"मै यह स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि मै सोशलिस्ट और रिपब्लिकन समाजवादी हूँ, मेरा विश्वास राजाओ, जमीदारो और पूंजीपतियो की सत्ता में नही है। हमारी ३ मुख्य समस्याये हैं; अल्प संख्यक जातियाँ, देशी राज्य और श्रमजीवी (मजदूर और किसान)। हमें अल्प संख्यक जातियों को अपने शब्दों और कार्यो से यह दृढ़ विश्वास करा देना चाहिए कि उनकी सभ्यता और संस्कृति की यहाँ पूरी रक्षा होगी। देशी रियासतें सम्पूर्ण राष्ट्र की उन्नति मे बाधक हैं.... बृटिश शासकों ने अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए इन राजाओ का सृजन किया है।' तीसरी समस्या श्रमजीवियों की देश की सबसे बडी समस्या है। भारत के किसानो और मजदूरों की दशा जब तक न सुधरेगी तब तक देश की दशा सुधरनी भी असम्भव है।"

"हम अपने छोटे-छोटे झगड़े भुलाकर राष्ट्रीय कार्य-क्रम को पूरा करने में लग जाये।.......देश-भक्ति और देश-सेवा का पुरस्कार है यातना, कारागार और मृत्यु। परन्तु इससे आपको इतना संतोष होगा कि आपने अपना थोडा सा कर्तव्य-पालन करके प्राचीन भारत को, जो सदा दुखा है, मुक्त किया, और मानव-समाज को दासता से छुडाने मे सहयोग दिया।"

दूसरे दिन काग्रेस के खुले अधिवेशन में महात्मा गाधी ने 'भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव उपस्थित किया। पं० मोतीलाल ने उस प्रस्ताव का समर्थन किया। अल्प विरोध के पश्चात् भी वह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। इसके पश्चात् काग्रेस मे एक नयी आशा-वादिता और दृढ़ता दिखलायी देने लगी।

—※—

सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन

पं० जवाहरलाल द्वारा लाहौर मे पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा के पश्चात् भारतीय काग्रेस एक नये प्रयत्न और संघर्ष के लिए तैयार हुई, जो पहले के सभी आन्दोलनो की अपेक्षा अधिक गम्भीर तथा अभूतपूर्व था। भारत की राष्ट्रीय मॉगो मे पहले स्वशासन, आत्मनिर्णय तथा उत्तरदायी शासन या औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने की बाते प्रधान थी, पर लाहौर-काग्रेस मे पहली बार पूर्ण स्वतंत्रता तथा उसकी प्राप्ति के लिए सरकार से अहिंसात्मक युद्ध की जोरदार घोषणा की गयी थी, जिससे जनता मे एक नवीन लक्ष्य के लिए, एक नवीन आशा-लहर और आकाक्षा का संचार हुआ। सम्पूर्ण देश नवीन जाग्रिति के उत्ताल तरगाघातो से आन्दोलित हो उठा, राष्ट्र ने एक नये व्रत और संकल्प के साथ संघर्ष की तीसरी अवस्था में प्रवेश किया।

राष्ट्रपति नेहरू ने जनता-जनार्दन को स्वतंत्रता के इस नवीन संग्राम में सम्मिलित हो, अपना सहयोग देने के लिए आह्वान किया। काग्रेस ने स्वतंत्रता-दिवस मनाने के लिए २६ जनवरी तिथि निश्चित की। उस दिन बहुसख्यक देश-वासियो ने पूर्ण स्वतत्रता के युद्ध में सहयोग देने की पवित्र शपथ ली। कोटि-कोटि कंठ एक साथ फूट पड़े, "भारत के हित के लिए, बलिदान और आत्मत्याग के महान स्फूर्तिदायक उदाहरणो को सामने रखते हुए, हम स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा को दुहराते है, और भारतवर्ष जब तक स्वतंत्र नही हो जाता तब तक अपनी लडाई जारी रखने का निश्चय करते है।"

गाधी जी को इस दिवस के प्रदर्शन से आवश्यक बल मिला, और

जनता की नाड़ी ठीक तरह से पहचानने के कारण उन्होंने समझ लिया कि संघर्ष और आन्दोलन के लिए यह समय अनुकूल है। भारतीय अब पहले से अधिक अनुशासित, संयमित और दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये थे, और पूर्ण रूप से अहिंसा के महत्त्व को समझने लगे थे। इधर नेहरू जी जन-समुदाय के समक्ष आन्दोलन के आर्थिक पहलू पर जोर देते हुए, उसके महत्त्वपूर्ण आर्थिक कार्यक्रम तथा उससे लाभ पर प्रकाश डाल रहे थे, जिससे किसान और श्रम-जीवियों ने भी एक नवीन शक्ति और उत्साह से उनका साथ देने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त इस बार के आन्दोलन में बहुसंख्यक महिलाओं ने भी भाग लेना निश्चित किया था। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी और उसके अनिष्टकारी प्रभाव से जनता शासकों के प्रति और भी असन्तुष्ट हो गयी थी। इन सभी कारणों ने आन्दोलन को विशेष शक्ति प्रदान किया।

इस विकट परिस्थिति में असन्तुष्ट जनता, जिसने परतंत्रता का जुआ अपने कंधे से फेंक देने का निश्चय कर लिया था, तथा शासकों में भयंकर संघर्ष आरम्भ हुआ। एक ओर शक्तिशाली सरकार अपने महान दमन-चक्र के साथ तैयार थी, और दूसरी ओर गांधी और नेहरू के अहिंसात्मक योद्धा अपने अमूल्य प्राणों की बाजी लगाये हुए छाती खोले खड़े थे।

सरकार शीघ्र ही संकट की गुरुता समझ गयी और वह उसके निवारण के प्रयत्न में लग गयी। उसने गांधी जी को समझाने बुझाने का प्रयत्न किया, और वह फिर अस्पष्ट वादे और दिलासे देकर कांग्रेस को बच्चे की तरह बहलाने की कोशिश करने लगी। परन्तु स्वतंत्रता के वीर सेनानी कांग्रेसी अब उन झूठी मृग-मरीचिका के पीछे पड़ने वाले नहीं थे, उन्हें उन झूठी बातों का काफी अनुभव हो चुका था। आन्दोलन बड़वानल की भांति द्रुत गति से बढ़ता जा रहा था, लगता था उसकी विशाल जिह्वा ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चाट कर ही दम लेगी।[1]

१ अन्य बातों के अतिरिक्त नमक-कर-भंग करना इस आन्दोलन का प्रमुख अंग था। सरकार ने नमक पर कर लगा दिया था। इससे उनका

उद्देश्य भारत के चीथड़े लपेटे दरिद्रनारायण के झोपड़ों से भी बलपूर्वक पैसा खींच लाने का था। इससे त्रस्त होकर निकली झोपड़ों के आहों की आग सारे हिन्दुस्तान के दिल को जलाने लगी। गांधी ने कानून-भंग कर जनता को स्वयं नमक बनाने का आदेश दिया। नदियों की भाँति कोटि-कोटि पग समुद्र की ओर उस आज्ञा-पूर्ति के लिए बढ़ चले। गांधी जी ने स्वयं साबरमती-आश्रम से डाण्डी की नमक-कर-भंग करने की ऐतिहासिक यात्रा आरंभ की। अपार जन-समूह सरकार के नियमों की सविनय-अवज्ञा करने के लिए उनके साथ चल पड़ा।

इधर गांधी जी की अनुपस्थिति में, सरकार के बढ़ते हुए क्रोध तथा नेताओं के प्रति वक्र-दृष्टि को देखकर, अहमदाबाद में अ० भा० कांग्रेस महासभा की बैठक हुई। इसमें सभा ने सभी मुख्य नेताओं की शीघ्र ही गिरफ्तारी की आशंका प्रकट की, तथा गिरफ्तारी के पश्चात् कांग्रेस के बचे हुए सदस्यों का क्या कार्य होगा तथा वे किस प्रकार आन्दोलन को संगठन करेंगे इसे निर्धारित किया। इस प्रकार अंतिम तैयारी कर के कांग्रेस-कमेटी के प्रत्येक सदस्य ने अनिश्चित काल के लिए एक दूसरे से विदा मांगी। इस समय सभी के हृदय में देशभक्ति की लहरें हिलोरे ले रही थीं। सभी नेताओं ने युद्ध में जाते हुए सैनिकों की भांति अपने-अपने क्षेत्रों के आन्दोलन-संचालन के लिए एक दूसरे से विदा लेकर प्रस्थान किया; दूसरे शब्दों में, जैसा कि श्रीमती सरोजनी नायडू ने कहा है, "जेल-यात्रा के लिए बिस्तर बाँधने को जल्दी-जल्दी चल दिये।"

६ अप्रैल १९३० को, जलियाँवाले बाग की घटनाओं के प्रतिवर्ष मनाये जाने वाले स्मरण-पर्व के दिन, गांधी जी ने सर्वप्रथम डांडी में समुद्र के किनारे नमक बनाकर नमक-कानून-भंग किया। इसके तीन चार दिनों बाद सम्पूर्ण कांग्रेस-संगठनों को अपने-अपने क्षेत्रों में नमक-कानून तोड़ने की आज्ञा दे दी गयी। हर एक प्रांत में सविनय-अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ हो गया था। ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने बिजली का बटन दबा दिया हो। सम्पूर्ण देश ने—शहरों और गाँवों के कोने-कोने में

—नमक-कर-भग-आन्दोलन बडवाग्नि की तरह फैल गया। गाधी जी की इस अद्भुत नेतृत्व-शक्ति का ध्यान कर सचमुच आश्चर्य होता है। नेहरू जी के शब्दो में, "हमे ताज्जुब होता था कि इस व्यक्ति (गाधी जी) में लोगो पर असर डालने और उनसे सगठित रूप मे काम लेने की कितनी अद्भुत सूझ तथा शक्ति है।"

नेहरू जी भी अपने प्रान्त, युक्तप्रात मे जनता को नमक-कर-भग करने के लिए उत्साहित करने लगे। भारतीय सग्राम के इस दौर मे नेहरू-परिवार के आत्मत्याग बडी वीरता से हुए। उनके पिता, उनकी माता, पत्नी और बहनें सब राष्ट्रीय सग्राम की प्रथम पक्ति मे थे। उन्हें जेल हुई, वे लाठी प्रहारों की चपेट में आये, उनके सामान नीलाम हुए तथा कितने ही प्रियजन ससार से उठ गये; परन्तु फिर भी उन लोगों ने सग्राम जारी रखा।

गांधी जी द्वारा प्रयुक्त शब्दों मे, "दानवीय सरकार" अब अपनी पूर्ण क्रूरता के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन पर टूट पडी थी। उसने कांग्रेस को एक गैरकानूनी सस्था घोषित कर दिया और कांग्रेस का धन-कोष जब्त कर लिया। जनता के समस्त नागरिक-अधिकार समाप्त हो गये; और अत्यन्त कठोर कानूनो (आर्डिनेन्सो) का शासन आरम्भ हुआ।

पं० जवाहरलाल नेहरू भी अधिक दिन तक स्वतंत्र न रह सके, और १४ अप्रैल १९३० को, जब वे रेलगाड़ी से रायपुर की एक कांग्रेस में शामिल होने के लिए जा रहे थे, गिरफ्तार कर लिए गये। उसी दिन जेल में उनपर मुकदमा चला और नमक-कानून-भग करने के अपराध में उन्हें ६ मास के कारावास का दड हो गया। उन्हे अपने गिरफ्तार होनें का आभास पहले ही लग गया था, अतः उन्होने अपने पिता को कांग्रेस का स्थानापन्न अध्यक्ष नियुक्त कर दिया था।

सहसा ५ मई को गांधी जी भी गिरफ्तार कर लिए गये। उनकी गिरफ्तारी के बाद समुद्र के पश्चिमी किनारे पर नमक के कारखानो और गोदामो पर धावे किये गये। उस समय पुलिस ने जिस बेरहमी से

आंदोलनकारियों का दमन किया, उसने समस्त भारतीयों के विद्रोही हृदय मे विदेशी शासकों के प्रति घृणा का बीज और भी गहरा बो दिया।

३० जून को बम्बई से लौटने पर प० मोतीलाल जी भी गिरफ्तार कर लिए गये, तथा उन्हें ६ महीने की सजा दे दी गयी। जवाहरलाल के साथ ही मोतीलाल जी भी नैनी-जेल में रखे गये। इस बार जवाहरलाल जी को जेल की एक ऐसी तग और गदी कोठरी मे रखा गया था, जो 'कुत्ताघर' के नाम से प्रसिद्ध थी। पहले इसमे खास तौर पर खतरनाक कैदी रखे जाते थे, और अब भी एक खास प्रकार के 'खतरनाक कैदी' से उसे आबाद किया गया था, जो बृटिश साम्राज्यवाद को अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए उलटने के 'कुचक्र' में लगा था। उन्हें अन्य कैदियो के सम्पर्क से हमेशा दूर रखा जाता था जिससे कहीं वे उन्हें 'बरगलाने' मे सफल न हो।

नेहरु जी इस नीरव और एकान्त समय को काटने के लिए निवाड़ बुनते, सूत कातते तथा सुबह, मुँह अँधेरे ही उठ कर कसरत करते एवं दौड कर जेल के अहाते का चक्कर लगाते थे। पिता के आगमन के पश्चात् उनका एक दैनिक कार्य उनकी तन-मन से सेवा करना भी हो गया था।

—*—

यरवदा-सन्धि-चर्चा तथा करबंदी-आन्दोलन

काग्रेस और सरकार के बीच बढ़ती हुई तनातनी को देखकर, तथा एक पत्र-प्रतिनिधि के समक्ष गिरफ्तारी के पूर्व दिया हुआ मोतीलाल जी का बयान पढ कर, जिसमें यह संभावना प्रकट की गयी थी कि सरकार यदि काग्रेस की कुछ शर्तें मान ले तो काग्रेस सत्याग्रह को वापस ले सकती है; सर तेजबहादुर सप्रू तथा जयकर साहब काग्रेस और सरकार के बीच सुलह कराने का प्रयत्न करने लगे। उसके लिए उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड इर्विङ्ग से पत्रव्यवहार किया तथा इसी उद्देश्य से गाधी जी से मिले भी। २७ जुलाई को इसी उद्देश्य से श्री सप्रू और जयकर महोदय नैनी-जेल में पिता-पुत्र से उनकी इस विषय मे राय जानने के लिए मिले, परन्तु दोनों ही व्यक्तियों ने बिना गाधी जी से मिले और उनकी राय जाने अपना कोई निश्चय प्रकट करने मे असमर्थता प्रकट की।

वायसराय की सहमति तथा सर सप्रू के अनुरोध पर जवाहरलाल जी, मोतीलाल जी तथा डा० सैयद महमूद यरवदा-जेल जाकर गाधी जी से इस विषय पर परामर्श करने को तैयार हो गये। १० अगस्त को एक स्पेशल ट्रेन से ये तीनों व्यक्ति पूना के यरवदा-जेल मे पहुँचाये गये। इस भय से कि कहीं गाधी जी के पास रहने से उन लोगो का मस्तिष्क फिर न जाये, और वे सरकार के विरुद्ध नये प्रकार के षडयंत्र की बातचीत न करने लगे, उन्हें गाधी जी की बैरक से अलग ही रखा गया। पं० मोतीलाल जी इससे बहुत ही नाराज हुए थे, तथा उन्होंने समझौते की किसी भी बात पर वार्तालाप तथा विचार करने से साफ इन्कार कर दिया था, परन्तु

बहुत अनुरोध के पश्चात् उन्होने इस विषय पर अपने साथियों से वार्ता-लाप करना मंजूर कर लिया।

उन दिनो सरदार पटेल, श्रीमती सरोज्नी नायडू तथा जयराम दास दौलत राम आदि नेता भी यरवदा-जेल मे ही थे। इन सभी व्यक्तियो ने सम्मिलित रूप से इस विषय पर विचार किया, तत्पश्चात् अपनी वे कम से कम शर्तें सरकार के समक्ष भेजी जिनकी मान्यता पाये बिना असहयोग-आदोलन बद होना असम्भव था। सरकार ने उन शर्तों पर विशेष ध्यान न दिया फलस्वरूप आदोलन जारी रहा, तथा सर सप्रू एव जयकर साहब के सभी किये कराये प्रयत्न पर पानी फिर गया। १६ अगस्त को ये तीनो व्यक्ति फिर नैनी-जेल को लौट गये।

जेल के गंदे वातावरण तथा अत्यधिक शारीरिक और मानसिक श्रम के फलस्वरूप पहले से ही खराब प० मोतीलाल जी का स्वास्थ्य और भी गिर गया, अतः ८ सितम्बर को दस सप्ताह के पश्चात्, जर्जरित काय उस बूढे सिह को जेल के पिंजडे से मुक्त किया गया। इसके एक मास पश्चात् ६ महीने का दण्ड पूर्ण हो जाने के कारण, प० जवाहरलाल जी भी छोड़ दिये गये।

कोई भी आदोलन देश के कृषको के सहयोग के बिना पूर्ण सफल होना कठिन था। जेल से मुक्त होने के पश्चात् नेहरू जी ने इस ओर ध्यान दिया। उन्होने कृषको के बीच जाना तथा उन्हें आदोलन के लिए तैयार करना आरम्भ कर दिया। युक्तप्रात मे इस नये उमडते संघर्ष का आर्थिक आधार कर-बदी-आदोलन रख कर उन्होंने कृषकों को पूर्ण रूप से अपनी ओर कर लिया था। कर-बन्दी-आदोलन से अपने ही देश-भाइयो, किसान तथा जमींदार वर्ग, के बीच बढ़ने वाले द्वेष तथा घृणा को रोकने, तथा इस विषम परिस्थिति से वर्ग-सघर्ष की भीषण आग कांग्रेस के भीतर न लगने देने के उद्देश्य से नेहरू जी ने किसान और जमींदार दोनों को ही कर न देने के लिए उत्साहित किया।

नेहरू जी ने घूम-घूम कर गाँवो मे इस विषय का सन्देश पहुँचाया

तथा किसानों को इस कर-बंदी-आदोलन के लिए संगठित किया। नेहरू जी ने प्रयाग में भी किसान प्रतिनिधियो की एक वृहत् सभा की, तथा इस सदेश को उन तक पहुँचाते हुए अपना भाषण दिया। इस सभा में विभिन्न गाँवो के १६०० प्रतिनिधि मौजूद थे। उस सभा के पश्चात् एक और ग्राम-सभा में भाषण देकर जब वे तथा उनकी पत्नी, पिता को देखने के लिए मोटर द्वारा शीघ्रतापूर्वक अपने निवास-स्थान को लौट रहे थे, उसी समय उनकी मोटर रोक कर उन्हे (जवाहरलाल जी को) फिर से गिरफ्तार कर लिया गया; और अपनी रिहाई के ठीक एक सप्ताह बाद फिर वे अपने उसी चिर-परिचित नैनी-जेल में सरकार की कृपा से पहुँचा दिये गये। न्याय का ढोंग करनेवाली स्वेच्छाचारी सरकार ने उनके भाषण को आपत्तिजनक करार कर उन्हें इस बार २ साल की सजा दे दी।

नेहरू जी की इस गिरफ्तारी से कर-बदी-आदोलन पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। जो किसान पहले इसे आरम्भ करने से डरते थे उन्होंने भी अपने प्रिय नेता को जेल की सींखचों के अन्दर देखकर, क्रोध से उन्मत्त हो पूर्ण शक्ति से इस आन्दोलन को आरम्भ कर दिया।

जब रुग्ण प० मोतीलाल को पुत्र की गिरफ्तारी की सूचना मिली तब उन्हें काफी कष्ट हुआ, और उसी समय उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा कि "मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अब मै भी बीमार की तरह पड़ा न रहूँगा। अच्छा बन कर मै अब एक नौजवान की तरह कार्य करूँगा तथा इस प्रकार बीमारी को आत्मसमर्पण न करूँगा।" उनकी इच्छानुसार १४ नवम्बर को देश भर मे जवाहरलाल जी की वर्ष गाँठ एक राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मनायी गयी; सार्वजनिक सभाओ में जवाहरलाल के भाषण के वे अश पढ़े गये जिन पर आपत्ति कर उन्हें सजा दी गयी थी। सरकार को इन सभाओं में भी षड़यन्त्र की अनोखी गध मालूम पडी, फलस्वरूप उनमें उपस्थित जनता पर पुलिस के क्रूर अत्याचार हुए, गिर-फ्तारियों का एक बार फिर बाजार गर्म हो गया।

इन आन्दोलनो के फलस्वरूप राजनैतिक कैदियों पर जेल मे अत्याचार

बढ गये। जेल के अधिकारी उनसे कठिन से कठिन तथा गदा से गंदा कार्य लेते, उन्हें कुत्तों को भी न दिये जाना वाला भोजन देते। बेत की मार तथा जेल के अन्य क्रूर तरीको द्वारा उन्हें यातना पहुँचायी जाती, तथा उनसे यह प्रतिज्ञा कराने का प्रयत्न किया जाता कि छूटने के पश्चात् वे इस प्रकार के किसी भी राजनैतिक आन्दोलन तथा सगठन में भाग न लेंगे। कार्यकर्त्ताओं पर होने वाले इन अत्याचारो की खबर सुनकर सभी काग्रेसी नेता बड़े क्षुब्ध तथा चिन्तित थे। इन अत्याचारो के विरोध मे प० जवाहरलाल जी ने तथा उनके कुछ अन्य साथियों ने ७२ घटे का अनसन किया, फलस्वरूप डर कर युक्तप्रान्तीय सरकार ने जेलो मे राजनैतिक कैदियो को बेंत न लगाये जाने, तथा दुर्व्यवहार न करने की आज्ञा भेजी।

पति के गिरफ्तार होने के पश्चात् से ही बीमार कमला देवी ने भी सत्याग्रह-आन्दोलन मे विशेप रुप से भाग लेना आरम्भ कर दिया था। वे दिन भर धूप में दूकानो के समक्ष पिकेटिग करती तथा महिला-संगठन के लिए कार्य करती थी। फलस्वरूप सत्ता से मदान्ध सरकार ने महिलाओं को भी गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया। देश-भक्ति का गीत गाती वे महिलाये प्रसन्नतापूर्वक जेल जाती थी। श्रीमती कमला नेहरू की गिरफ्तारी के समय वहाँ उपस्थित एक पत्रकार ने जेल-यात्रा के पूर्व उनसे अपना सदेश माँगा, तब उन्होंने अपने स्वभावानुकूल ही प्रसन्नतापूर्वक कहा—"आज मुझे असीम प्रसन्नता है, तथा इस बात का गर्व है कि मै अपने पति के पद-चिन्हो पर चल रही हूँ, मुझे आशा है कि आप लोग इस ऊँचे झडे को नीचे न झुकने देगे।"

बीमार पं० मोतीलाल ने जब इस समाचार को सुना तो उन्होंने मर्माहत हो उसी समय प्रयाग के लिए प्रस्थान कर दिया; वे पं० जवाहरलाल जी से जेल मे मिले। पिता के गिरे हुए स्वास्थ्य की यह गम्भीर दशा को देखकर पं० जवाहरलाल अत्यन्त चिन्तित हुए।

उन्हीं दिनो जब हमारे देश के राष्ट्रीय नेता और कार्यकर्त्ता जेलों मे

सड रहे थे, हमारे ही देश के कुछ उच्चश्रेणी के नरमदलीय नेता, लन्दन की गोलमेज कान्फ्रेंस में, बृटिश शासकों के 'सहयोग' से, भारत के लिए एक नये शासन-विधान के निर्माण की बात सोच रहे थे। जब भारत के सब सच्चे तथा त्यागी नेता जेल मे थे, कुछ प्रतिक्रियावादी नेता अपने को देश और जनता का वास्तविक प्रतिनिधि बतलाकर, अपने निजी स्वार्थों की रक्षा के निमित्त देश भक्ति की ओड लेकर, ब्रिटिश-शासन बनाये रखने के लिए लदन मे शासको से मिल कर देश के विरुद्ध कुचक्र रचने में सलग्न थे। परन्तु चतुर बृटिश-शासक जानते थे कि नेहरू तथा गाँधी की सहमति के बिना उनकी नये विधान बनाने और उसके लागू करने की सब चालें व्यर्थ हो जायेगी, अतः उन्होने कुछ नरम रुख अख्तियार कर काग्रेस-कार्यसमिति के कुछ व्यक्तियो को छोडना आरम्भ कर दिया, जिससे वे इस नई दिशा तथा गोलमेज-परिषद की बातो पर पूर्ण रूप से विचार कर सके, तथा इस 'शुभ' कार्य में सरकार का साथ दे सकें।

१६३१ की जनवरी मे बृटिश प्रधानमत्री की इसी विषयक घोषणा पर विचार करने के लिए काग्रेस-कार्यसमिति की बैठक हुई, जिसमे पं० मोतीलाल जी की इच्छानुसार यह तय हुआ कि काग्रेस इस झूठी मृग मरीचिका में पडकर सरकार के विरुद्ध छेडी गयी अपनी लडाई को बट न करेगी।

२६ जनवरी को राष्ट्र भर मे स्वतत्रता-दिवस का प्रथम वार्षिकोत्सव मनाया गया। सम्पूर्ण देश मे सभाये की गयी तथा उनमें स्वाधीनता के प्रस्ताव का जोरो के साथ समर्थन किया गया। उस दिवस के इन प्रस्तावों को 'स्मारक प्रस्ताव' भी कहते है।

—※—

पं मोतीलाल का देहावसान

२६ जनवरी के उस महादिवस के दिन, पिता की हालत चिन्ता-जनक होने के कारण, पं० जवाहरलाल ६ महीने का बंदी जीवन विताने के पश्चात् सरकार द्वारा छोड दिये गये। २६ दिन का जेल जीवन व्यतीत करने के पश्चात् श्रीमती कमला नेहरू भी मुक्त कर दी गयी।

२६ जनवरी को ही गाँधी जी भी पूना के प्रसिद्ध यरवदा-जेल से सरकार की नयी घोषणा के विषय में विचार करने के लिए, अन्य कार्य समिति के मेम्बरों के साथ छोड़ दिये गये। वम्बई में, छूटने के पश्चात् अपने दर्शन करने के लिए आये एक विशाल जनसमूह के समक्ष भाषण देने के पश्चात् वे अस्वस्थ पं० मोतीलाल को देखने प्रयाग पहुँचे। पं० मोतीलाल जी उनके आगमन, तथा जीवन-यात्रा समाप्त करने के पूर्व एक बार उनके दर्शन, एवं अन्तिम बार उनसे वार्तालाप करने के लिए आतुरता से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गाँधी जी के आगमन पर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। देश के सभी बड़े बड़े नेता, युक्तप्रान्त के उस नर पुंगव के अन्तिम दर्शन तथा परामर्श के लिए आने लगे। इन मिलने वालो का, बोलने में असमर्थ होने के कारण, वे आँखो की एक स्वर्गीय चमक से ही स्वागत करते। सताप मे डूबे जवाहरलाल पिता को निर्निमेष, भाव शून्य आँखों से देखते रहते। उन्हीं के शब्दो मे "एक जर्जरित सिंह की तरह, जिसका शरीर बुरी तरह घायल हो गया हो, वे बैठे थे, लेकिन उस हालत मे भी उनकी शान शेरों जैसी ही थी।"

मोतीलाल जी धीमें स्वर से अपने मित्रो से बात करते। परन्तु जब वे

बोल न पाते तब अपने मन के भाव कागज पर लिख कर व्यक्त करते थे। उस समय उन्होंने महात्मा जी की ओर देख कर कहा था, "महात्मा जी मैं जा रहा हूँ, और स्वराज्य न देख सकूँगा। पर मैं जानता हूँ कि आपने स्वराज्य प्राप्त कर लिया है और शीघ्र ही उसका उपयोग करेंगे।" मोती लाल जी के अन्तिम विचार भी भारतीय स्वतन्त्रता विषयक ही थे।

पिता की हालत चिन्ताजनक होने पर, डाक्टरों की राय से एक्स-रे कराने तथा विधिवत उपचार करने के लिए जवाहरलाल उन्हें लेकर लखनऊ पहुँचे। गाँधी जी उस समय भी उन लोगों के साथ थे। ६ फरवरी को पं० मोतीलाल नेहरू ने इस भौतिक जगत से प्रयाण कर दिया। उसी दिन शव, विधिवत् राष्ट्रीय झण्डे से लपेट कर प्रयाग लाया गया। अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करने के लिए उनकी गंगा-यात्रा के अवसर पर लाखों व्यक्ति अपनी अन्तिम श्रद्धान्जलि अर्पित करने के लिए उपस्थित थे। जाड़े के दिन थे, सन्ध्या का अन्धकार मुख पर कालिख लगाए सिसक रहा था! चिर शान्ति की गोद में चिता की ऊँची ऊँची लपेटों ने उस पवित्र शरीर को भस्म कर दिया, उस स्थान पर बची रह गयी थोड़ी सी राख, जो पुत्र के लिए, सबंधियों के लिए तथा सम्पूर्ण भारत के लिए कर्मठता, साहस और त्याग की दिव्य विभूति हो गयी थी। कातर गाँधी ने रोकर, अपने अभिन्न मित्र के प्रति उस दिन अपार जन-समूह के बीच कहा था "मोतीलाल जी के चले जाने से मैं एक विधवा स्त्री की भाँति पीड़ा अनुभव कर रहा हूँ।"

किसी देश के नेताओं का बलिदान विफल नहीं होता। उनका अवसान राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के राजपथ पर स्थित मील के पत्थरों सा होता है, जिस पर विश्वास के साथ दृढ़ कदम बढ़ाती हुई कोटि-कोटि विद्रोही जनता, एक दिन अपने अभीष्ट लक्ष्य पर अवश्य पहुँच जाती है; और उसके पश्चात पीछे मुड़ कर वह बड़े श्रद्धा और विश्वास के साथ उन अपने आप में सजीव पत्थरों की ओर देखती है, जिसने उन्हें ठीक ठीक राह बतलायी, और अंत तक घुटते हुए दम से उनका नेतृत्व करते हुए उन्हें आशा और दिलासा दिलायी।

गाँधी-इर्विङ्ग-पैक्ट और उसके पश्चात

सरकार और लिबरल नेताओ के अनुरोध से, तथा देश की असहयोगी जनता को आन्दोलन की क्लान्ति से कुछ समय के लिए राहत देने के विचार से, गाँधी जी ने तत्कालीन वायसराय इर्विङ्ग से मिलकर शान्ति-शर्तों पर वार्ता करने की अपनी सहमति दे दी, यद्यपि उन्हें इससे विशेप लाभ की आशा न थी।

गाँधी जी इस विपय पर वायसराय से वार्तालाप करने दिल्ली पहुँचे। वे कई बार इर्विङ्ग महोदय से मिले परन्तु समझौते के विषय मे कुछ निश्चय न हो पाता था। इर्विङ्ग महोदय असहयोग तथा सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के विपक्ष मे थे, और उसे पूर्णतः नष्ट कर देने का वादा कराना चाहते थे, जब की गाँधी जी स्पष्ट शब्दो मे कहते थे कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन हमेशा के लिए बन्द कर देने के लिए तैयार नहीं हो सकते। हाँ! सरकार और काग्रेस के बीच समझौता हो जाने पर वे उसे स्थगित अवश्य कर देगे। वायसराय महोदय इससे सहमत न थे।

एकाएक गाँधी-इर्विङ्ग-वार्तालाप का क्रम टूट गया तथा इर्विङ्ग ने इस विपय मे आगे बात करने से इन्कार कर दिया। कार्यकारिणी के मेम्बरो को पूर्ण रूप से यह विश्वास हो गया कि सरकार और काग्रेस के बीच अब समझौता होना असम्भव है। अतः कार्यकारिणी की एक बैठक बुलायी गयी, जिसमे यह निश्चय किया गया कि गाँधी जी की इस विपय मे असफलता के पश्चात् वे लोग अपने-अपने प्रान्तो में किस प्रकार भावी आन्दोलन का संगठन तथा संचालन करेंगे। उन्होने भावी कार्य की रुपरेखाओ और सविनय-अवज्ञा पर विचार विनिमय किया। कार्यकारिणी द्वारा इतनी जल्दी

इस विषय पर निश्चय करने का प्रधान कारण यह भी था कि सभी व्यक्ति यह पूर्ण रूप से जानते थे कि गाँधी-इर्विङ्ग-वार्ता की असफलता घोषित होने के साथ ही वे सभी व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। ऐसी अवस्था में जनता तक उनके भावी कार्यक्रम का सन्देश जल्द से जल्द पहुँचा देना आवश्यक था।

परन्तु कार्यसमिति की धारणा के विपरीत, ४ मार्च की रात को गाँधी जी वायसराय के यहाँ बुलाये गये और वे जब वहाँ से लौटे तब समझौता हो गया था। सविनय-आन्दोलन स्थगित कर देने का उन्होंने वादा कर दिया था। जवाहरलाल नेहरू उस समझौते की शर्तों को कांग्रेस की नीति के विपक्ष में समझकर इसके बहुत खिलाफ थे, परन्तु गाधीजी के समझाने पर वे बेमन से मान गये। उन्होंने नेहरू जी को बतलाया कि इस समझौते से कांग्रेस की नीति—पूर्ण स्वराज्य पर कोई आघात नहीं हुआ है।

समझौते के फलस्वरूप असहयोग तथा अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले कैदी छोड़ दिये गये। परतु गाधीजी के बहुत परिश्रम के पश्चात् भी सरकार आतंकवादी कैदियों को छोड़ने तथा उनकी सजा घटाने के लिए राजी न हुई। गांधीजी के विरोध के पश्चात् भी भगतसिंह आदि क्रांतिकारियों को फाँसी दे दी गयी।

समझौते के कुछ दिन पश्चात् ही अ० भा० कांग्रेस महासभा का अधिवेशन करांची में वल्लभभाई पटेल के सभापतित्व में हुआ। करांची के मुख्य कार्यक्रम में दिल्ली-समझौता को मान्यता देने, तथा गोलमेज परिषद् के विषय में विचार-विनिमय करने का प्रस्ताव था। कार्य-समिति ने इसे पास कर दिया। नेहरू जी के लिए यह कठिन अवसर था, वे दिल्ली-समझौते को आपत्ति-जनक तथा गोलमेज कान्फ्रेंस को बेकार समझते थे, परतु गाधी जी की आज्ञा से अनेक मानसिक संघर्षों के पश्चात् भी अंत में उन्होंने उस पर अपना हस्ताक्षर कर ही दिया।

इन प्रस्तावों के अतिरिक्त नेहरू जी ने करांची-कांग्रेस के कार्यक्रम में गाधी जी की अनुमति से, कांग्रेस की आर्थिक नीति संबंधी एक नय

प्रस्ताव भी जोड़ दिया था। यह प्रस्ताव कांग्रेस में एक नये दृष्टिकोण—सामाजिक अर्थ-व्यवस्था के सिद्धात की दिशा में एक सूक्ष्म संकेत—का प्रवेश करा रहा था। अब तक कांग्रेस सिर्फ राष्ट्रीयता की ही दिशा मे सोंचती थी और आर्थिक प्रश्नों से बचती आ रही थी; परतु इस प्रस्ताव द्वारा उसकी आर्थिक तटस्थता की नीति बनी न रह सकी। सरकार इस प्रस्ताव को भी आशंका और असतोष की दृष्टि से देखती थी, परतु उसने इसपर कोई विशेष आपत्ति नहीं प्रकट की।

इन सब कार्यों के यथा विधि सम्पन्न हो जाने के पश्चात् अब कांग्रेस का अन्तिम कार्यक्रम अगले वर्ष के लिए कार्यसमिति के सदस्य निर्वाचित करना था। कार्यकारिणी मे मुसलमान सदस्य संख्या में कम निर्वाचित होने के कारण काफी नाराज हुए। इन विरोधी मुसलमानों ने इस विषय को लेकर कांग्रेस का साथ छोड़ दिया तथा 'मजलिसे अहरार' (आत्म-सम्मान रखनेवाली संस्था) नामक एक सस्था का निर्माण किया, जिसका एक धुँधला सा आर्थिक दृष्टिकोण था। आगे चल कर इस संस्था ने देशी राज्यों के मुसलमान-आदोलन, खासकर काश्मीर में काफी काम किया, जिसका अजीब सा घुला-मिला एक आर्थिक और साम्प्रदायिक आधार था। कांग्रेस से 'अहरार' पार्टी के रूप मे कुछ लोकप्रिय मुसलिम नेताओं का कट कर अलग हो जाना पंजाब में कांग्रेस के लिए बहुत ही हानिकारक सिद्ध हुआ।

इन्हीं दिनों जब करॉची-कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था कानपुर में हिन्दू-मुसलिम दंगा आरम्भ हुआ। इसे बन्द करने के उद्योग मे रत, कांग्रेस के एक कर्मठ सदस्य श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की कुछ साम्प्रदायिक व्यक्तियों ने हत्या कर दी। इस घटना ने करॉची में, युक्तप्रातीय कांग्रेस के सदस्यों के हृदय को शोकाकुल कर दिया, परन्तु फिर भी हर एक व्यक्ति को उनके कार्य पर अभिमान भी था कि वे एक निश्चित ध्येय, हिन्दू-मुस्लिम-एकता तथा प्रेम, के लिए अपना प्राण देने मे भी पीछे न हटे।

गाधी-इर्विङ्ग-पैक्ट के पश्चात् भी कांग्रेस के समक्ष हमेशा यह प्रश्न

उपस्थित रहता था कि गांधी जी गोलमेज-कान्फ्रेन्स मे उपस्थित होने के लिए इङ्गलैंड जाये या नहीं, क्योंकि उससे कुछ विशेष फल-प्राप्ति की आशा लोगों को बहुत कम थी। दूसरे बृटिश सरकार की ओर से यह बराबर संकेत किया जाता था कि प्रथम गोल-मेज-कान्फ्रेन्स ने हिन्दुस्तान के नये विधान की रूप-रेखा निश्चित कर ही दी है, अब तो कांग्रेस को सिर्फ जाकर उस नवीन चित्र की मोटी-मोटी रेखाओं में रंग भरना ही शेष रह गया है, जब कि इसके ठीक विपरीत कांग्रेस की निगाह में अभी तो उसे कोरे कागज पर विधान का पूरा नकशा ही बनाना बाकी था। यद्यपि गांधी जी ने दिल्ली-समझौते मे भारत के लिए संघ-शासन पूर्णतः मंजूर कर लिया था, परन्तु वे उस प्रकार के संघीय विधान को ग्रहण करने के लिए तैयार न थे जिसे पहली गोल-मेज-कान्फ्रेन्स ने बनाया था, तथा जिसे बलपूर्वक सरकार भारत पर लादना चाहती थी। करॉची-कांग्रेस मे भी यह साफ तौर से निश्चित हो गया था कि भारत की जनता तथा उसकी प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस वही विधान मंजूर करेगी, "जिसमे उन्हे फौज, वैदेशिक मामलो, राजस्व तथा आर्थिक नीति पर अधिकार दिया गया हो, और भारत को विदेशो की ऋण-पूर्ति करने के पहले अपने देश से दिये गये कर्ज को जॉच करने का पूर्ण हक हो। इसके अतिरिक्त मौलिक अधिकारों सम्बन्धी प्रस्ताव में भी उसने यह दिग्दर्शित कर दिया था कि वह क्या क्या राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तन मौजूदा भारतीय स्थिति मे चाहती है। कांग्रेस के विधान सम्बन्धी ये प्रस्ताव तथा उसकी मॉगे सरकार की तत्कालीन नीति के विरुद्ध थी। शासक और शासितों के दृष्टिकोण में बहुत अधिक अन्तर था। इन सब कारणों के फलस्वरूप आशावादी गांधी जी को भी कान्फ्रेन्स की सफलता मे संदेह ही था।

कुछ ऐसी अवस्थायें भी थी जिनके भविष्य में, उपस्थित हो जाने पर कांग्रेस का गोल-मेज-परिषद मे भाग लेना ही असम्भव हो सकता था। प्रथम तो यह कि कांग्रेस कान्फ्रेन्स मे तभी भाग लेने को तैयार थी जब सरकार कांग्रेस को परिषद मे अपने दृष्टि-बिंदु पूर्णतः उपस्थित करने का

अवसर देने का वादा करे। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान में ही कुछ ऐसी राजनैतिक परिस्थिति उत्पन्न हो सकती थी, जिसकी तत्कालीन स्थिति मे कुछ-कुछ सम्भावना भी थी, जिससे काग्रेस को सरकार से मेल का ध्येय पूर्ण रूप से त्याग देना पड़ता।

बंगाल, युक्त-प्रात तथा सीमाप्रात की परिस्थिति कुछ विषम थी। बंगाल में पुलिस तथा अन्य नौकरशाही वर्ग अब भी जनता पर अपने अधिकार-मद मे प्रमत्त हो अत्याचार करने मे लिप्त थे। युक्तप्रात मे कर-बंदी-आदोलन स्थगित हो जाने के पश्चात भी प्रान्तीय सरकार लगान और मालगुजारी की छूट के सवाल पर बराबर टाल-मटोल कर रही थी; तथा जबर्दस्ती बकाया लगान की वसूली आरम्भ हो गयी थी। गाधी जी के विरोध तथा लिखा-पढ़ी के बावजूद भी हजारों किसानो की भूमि बेदखल तथा कुर्क की जा रही थी। इस समय जवाहरलाल जी अस्वस्थ होने के कारण लंका में विश्राम ले रहे थे। भारत के इन राजनैतिक प्रश्नों से वे अत्यन्त चिंतित थे तथा उस अस्वस्थावस्था मे भी उनकी आत्मा भारत शीघ्र ही पहुँचने के लिए छटपटा रही थी। इसके अतिरिक्त सीमाप्रान्त मे अब्दुल गफ्फार खॉ के नेतृत्व मे बढ़ती हुई अहिंसात्मक जाग्रिति को भी सरकार संदेह की निगाह से देख रही थी, तथा विभिन्न आर्डिनेन्सों द्वारा उनकी प्रगति को दबाना चाहती थी।

इन सब सवालो के अतिरिक्त एक और बड़ा प्रश्न भी काग्रेस के समक्ष था, और वह था सरकार की साम्प्रदायिक नीति। काग्रेस यह पूर्णतः जानती थी कि सरकार गोलमेज-परिषद मे साम्प्रदायिक स्वार्थ को अन्य विषयों से अधिक महत्व देगी, जो राष्ट्रीय स्वार्थ के लिए घातक था।

१६३१ की गर्मियों में सरकार ने काग्रेस पर यह दोषारोपण लगाना भी प्रारम्भ कर दिया कि कुछ प्रातीय-काग्रेस-कमेटियाँ दिल्ली-समझौते के विरुद्ध कार्य कर रही हैं; उधर काग्रेस भी सरकार के विरुद्ध समझौता तोड़ने का आरोप लगाती थी। इस प्रकार संघर्ष मानो उस समय हिन्दुस्तान की तत्कालीन परिस्थिति में ही छिपा हुआ था, और वह

किसी प्रकार के लुभावनें शब्दों या समझौतों से दूर नहीं किया जा सकता था।

दिल्ली-समझौता-भंग करने के प्रश्न को लेकर गाधी जी तथा जवाहरलाल २ बार शिमला में वायसराय से बातचीत करने गये। उनका विचार शिमला में वायसराय से इस विषय में फिर से समझौता करने के पश्चात् ही गोलमेज-कान्फ्रेंस में भाग लेने को था अन्यथा नहीं। समझौते की सम्भावना न होते हुए भी अन्त में समझौता हो ही गया। फलस्वरूप गाधी जी ने गोलमेज-कान्फ्रेंस मे कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से उपस्थित होने के लिए इङ्गलैंड की ओर प्रस्थान किया। उनके साथ कार्यसमिति की एक अन्य सदस्या श्रीमती सरोजनी नायडू भी, भारतीय महिला प्रतिनिधि के रूप में आमन्त्रित होकर गयी थीं।

—※—

गोलमेज-परिषद् की असफलता तथा उसके पश्चात्

यद्यपि गाधी जी काग्रेस के प्रतिनिधि की हेसियत से गोलमेज-परिषद में भारत के लिए एक सर्वहितकारी नया विधान पास कराने, तथा काग्रेस और सरकार के बीच की खाई पाटने गये अवश्य परन्तु वे सफल न हो सके। वहाँ तो वृटिश सरकार का इरादा एवं कार्यपद्यति परिषद के उद्देश्य को गौण रख, और वे मतलब की छोटी-छोटी बातो मे उन्हें फसा कर, मूल और असली सवालो पर विचार करने के काम को टालना था। यदि विषय कभी असली सवाल की और मुड भी जाता तो सरकार उसके बारे मे गोल-मोल उत्तर देती थी। सरकार अपनी साम्राज्यवादी कूट-नीति का इस्तेमाल परिषद की कार्यवाही में भी कर, फूट द्वारा राष्ट्रीय-आदोलन की प्रगति को रोकना, तथा काग्रेस की सार्वजनिक मागो को दबाना चाहती थी। उसे इसमे पूर्ण सफलता भी मिली। कान्फ्रेंस के ज्यादा तर हिन्दुस्तानी मेम्बर इस फंके हुए चारे के विनाशकारी परन्तु लुभावने सरकारी जाल में फॅस गये। इसके अतिरिक्त परिषद मे हिन्दुस्तान के विभिन्न सम्प्रदाय एवं वर्ग के जो प्रतिनिधि बुलाये भी गये थे, उनमें से अधिकतर राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्रीय उन्नति के सबसे ज्यादा विरोधी दलो के थे। ये लोग हिन्दुस्तान मे ऐसे स्वार्थ रखने वालों के प्रतिनिधि थे जो वृटिश साम्राज्यवाद से बॅधे हुए थे, एवं अपनी तरक्की तथा रखवाली के लिए उन्हीं का भरोसा भी रखते थे। राजनैतिक दृष्टि से वे हर किस्म की प्रगति के विरोधी थे और उनकी दिलचस्पी केवल एक बात मे थी, किसी प्रकार इस कान्फ्रेंस मे अपने तथा अपने वर्ग के फायदे के लिए कुछ सुविधायें प्राप्त कर सकें। उन्होंने

खुल्लम-खुल्ला यह प्रचारित भी कर दिया था कि जब तक उनकी साम्प्रदायिक माँगें पूरी न होगी वे स्वराज्य लेने के लिए भी उत्सुक न होंगे। इन्सान की गुलामी की तवारीख में यह एक अजीब दुख भरा मज़मा था। एक गुलाम जाती किस हद तक गिर सकती है, उसके मानसिक स्तर का किस हद तक पतन हो सकता है, और वह साम्राज्यवादियो के खेल मे किस तरह शतरंज का मोहरा बन सकती है, इसे देख और सुन कर आँख और कान दोंनो बन्द कर लेने की इच्छा होती थी। बृटिश-शासन की भेद-नीति के एक इशारे पर, वर्गीय तथा साम्प्रदायिक नारों की आँड में राष्ट्रीय हित का बलिदान करने में भी नहीं चूका जा रहा था। नेता कहे जानेवाले पाखंडी बडी आसानी के साथ राष्ट्र को वास्तविक हित की बातो से हटा कर एक दूसरे की कोशिशों को बेकार करने के कार्मों मे लगा रहे थे। अवसरवादिता के जाम का दौरदौरा था; ऐसा मालूम पडता था कि हिन्दुस्तान के नये शासन-विधान में शिकार के रूप में मानवता का जो विच्छत शव फेका जाने वाला था, उसकी फिराक मे भिन्न-भिन्न गिरोह भूखे भेड़िये की तरह घात लगाये फिर रहे हैं। हिन्दुस्तान की कोटि-कोटि भोली जनता के इन 'प्रतिनिधि' नेताओं ने, अपने देश के प्राचीन आदर्शवाद और त्याग की दुर्लभ मलय-समीर कों छोड़ कर, स्वार्थ की गंदी और दम घुटाने वाली हवा को ग्रहण किया था।

गाधी जी के अनेक प्रयत्न के पश्चात् भी बृटिश-शासकी-शतरंजी चालों मे उलझी कान्फ्रेन्स व्यर्थ ही रही। साम्राज्यवादी शासन-सत्ताधारियो ने यह साबित कर दिया कि अभी तक उनमें सिर्फ अपने साम्राज्य को कायम रखने की ही ताकत नहीं है, वरन कुछ दिनों तक और साम्राज्यवादी परम्परा को चला ले जाने के लिए चालाकी और कूटनीति भी उनके पास मौजूद है। लंडन मे हिन्दुस्तान के लोग असफल रहे, यद्यपि न तो कान्फ्रेंस का सही माने मे उनके द्वारा प्रतिनिधित्व ही हुआ था, और न तो उसकी ताकत से हिन्दुस्तान के खून की गर्मी और ताकत का सही

अन्दाज ही लगाया जा सकता था; परन्तु फिर भी अंग्रेजो का मतलब सिद्ध हुआ और कांफ्रेंस की असफलता से हिन्दुस्तान की बदनामी ही हुई। अंग्रेजों को दुनिया के सामने यह कहने का मौका मिला कि हिन्दुस्तान अभी आपसी मजहबी लडाई से ही मुक्त नहीं है। वे अयोग्य हैं और अपने हित के लिए उन्हे 'शुभ चिन्तक' विदेशी-शासन मे रहना आवश्यक है। "उन्हे स्वतंत्रता या अन्य विशेष सुधार देना, असभ्य बंदर के हाँथों खूबसूरत मोती की माला नष्ट कराना है।" नेहरू जी के शब्दो में—"वह कांफ्रेंस जहाँ साजिशों, मौकापरस्ती और जालसाजियों का बोलबाला था, हिन्दुस्तान की असफलता नही कहला सकती। वह तो ऐसी बनायी ही गयी थी जिससे असफल होती।" यह हिन्दुस्तान की अपनी हार नहीं थी। सचमुच, हिन्दुस्तान के लोगो के लिए सफलता या असफलता खुद हिन्दुस्तान में होने वाली राजनीतिक घटनाओं से हो सकती थी; भारत में जो दृढ़ राष्ट्रीय आंदोलन चल रहा था वह लंडन में होने वाली-चालबाजियों से ठंण्डा नहीं हो सकता था।

जब की लंडन में हिन्दुस्तानियों के सहयोग से उनके लिए एक नये और हितकारी विधान का स्वाग भरा जा रहा था, भारत में गांधी-इर्विङ्ग पैक्ट के विरुद्ध भारतीय नेताओं पर समझौते विरोधी कार्य करने का झूठा दोषारोपण कर, कुचक्रपूर्ण अत्याचार करने से सरकार बाज न आ रही थी। भारतीय जनता की किसी प्रकार की माँग चाहे वह रोटी, कपडा, आवास के लिए ही क्यो न हो, संदेह की दृष्टि से देखी जाती थी, और सरकार को उनमें राजनीतिक कुचक्रों की बू आती।

पहले ही कहा जा चुका है कि किसानो मे १९२१ से ही जाग्रिति का आगमन होने लगा था। कांग्रेस के सहयोग से और भी संगठित हों वे अपनी मागे सरकार के समक्ष रखने, और दो एक बार तो उन्हे प्राप्त करने में सफल भी हो चुके थे। अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रधान मन्त्री तथा कार्यसमिति के एक सदस्य की हैसियत से पं० जवाहरलाल किसान-आंदोलन के काफी सम्पर्क में आ चुके थे। किसान-संगठन

के उद्देश्य से उन्होंने कई बार देश के विभिन्न भागो में दौरा भी किया था।

राष्ट्र के अन्य भागो की अपेक्षा युक्तप्रात, विशेषतः प्रयाग के किसानो मे विशेष जाग्रिति थी तथा वे अधिक संगठित थे। १९३० में सर्वप्रथम प्रयाग-किसान-कमेटी को ही कर-बदी-आदोलन आरम्भ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

१९२९ की अतर्राष्ट्रीय आर्थिक मदी का प्रभाव भारत पर भी पडा। अन्य धंन्धां की तरह कृषि के क्षेत्र मे भी इसका काफी बुरा असर पडा। किसानो पर कर्ज बरसाती पानी की तरह बढ़ने लगा और वे दाने-दाने को मोहताज हो गये। धरती के उन लालों को, जो छाती फाडकर सारी दुनिया का पेट भरते थे; स्वयं पेट के लाले पडना पडा।

१९२९ और ३० मे सरकार द्वारा नियुक्त प्रातीय बैंकिंग जॉच कमेटी ने अदाज लगाया था कि (वर्मा सहित) हिन्दुस्तान का कृषि सम्बन्धी कर्ज ८६० करोड रुपया था। इसके अतिरिक्त रुपये का अनुपात जबर-दस्त विरोध करने के पश्चात भी १६ पेस के बजाय १८ पेस कर देने से किसानो का कर्ज १२½ प्रतिशत या लगभग १०७ करोड बढ़ गया था।

गाधी जी तथा पं० नेहरू आदि नेताओं का, तत्कालीन परिस्थिति देखते हुए, यह प्रस्ताव था कि सब मौरुसी कास्तकारो क लिए ५० प्रति-शत आम छूट होनी चाहिए, और जिन कास्तकारों की हालत विशेष चिंता जनक हो उनको इससे भी ज्यादा छूट दी जाये। परन्तु तत्कालीन युक्त प्रातीय गवर्नर ने इस प्रस्ताव को अमान्य कर दिया, फलस्वरूप छूट नाम मात्र को दी गयी। जो किसान बाकी लगान न दे पाता था उसपर बल प्रयोग की मशीन, कानूनी और गैर कानूनी दोंनो ढंग से, चलने लगी। जमीन की बेदखली, कृषकों की बेइज्जती तथा मारपीट प्रतिदिन की घटना हो गयी।

यह सब देख कर प्रातीय कार्यकारिणी बहुत ही कठिन स्थिति मे पड गयी थी। यह जानते हुए भी कि कृषकों के साथ अत्याचार हो रहा है,

गांधी-इर्विङ्ग-पैक्ट से बंधे कांग्रेस के कर्मठ नेता कुछ नहीं कर पाते थे। हजारों की संख्या में वे घरबार कर दिये गये भोले-भाले किसान अपनी आप-बीती अपने दुख-सुख में साथ देने वाले नेताओं को रो-रो कर सुनाने के लिए प्रयाग दौड़े आते थे। भावुक पं० नेहरू के जिगर का जख्म जमींदारों के कारिन्दों से मार खाये किसानों की चोट का निशान देख कर फिर से हरा हो जाता था। वे अपनी असहायता पर रोने लगते और उनकी तबियत होती को वे इस बेइन्साफ दुनिया से बहुत दूर भाग जायें, जहाँ उन्हें अपने निर्दोष भाइयों की यह दुर्दशा देखने को न मिले। पर वे कर ही क्या सकते थे?

शासक और शासित के जिस संघर्ष को गांधी जी के आगमन तक टालने का नेताओं की ओर से बराबर प्रयत्न हो रहा था, वह तत्कालीन परिस्थिति तथा सरकारी नीति के फलस्वरूप उनकी इच्छा के विपरीत तेजी से बढ़ता चला आ रहा था। भारत-सरकार का लगातार कांग्रेस की ओर रुख सख्त होता जा रहा था। सरकार अबकी आर्डिनेंसों तथा दमन-चक्रों द्वारा आंदोलन को पूर्णतः कुचल देना चाहती थी।

तनातनी बढ़ती गयी और घटनायें नेताओं के प्रयत्न की उपेक्षा करती हुई अपने आप आगे बढ़ती रहीं। युक्त-प्रांत की सरकार के एक और काम ने दबी हुई आग में घी का काम किया। स्थानीय अफसरों ने पर्चियाँ बटवाईं, जिसके अनुसार यदि छूट की रकम के अतिरिक्त अन्य रकम को नीयत समय पर जमा न कर दिया गया तो वह जबरन वसूल की जाने वाली थी। इससे शांतिपूर्ण समझौते का मौका खतम हो गया, और अनिवार्य संघर्ष एक के बाद दूसरा पग धरता हुआ सामने उपस्थित हो गया। अखिल भारतीय-कांग्रेस-कार्यकारिणी की सम्मति मिलने के पश्चात् नेहरू जी ने अपनी मजबूत किसान-सेना के साथ अहिंसात्मक लड़ाई की तैयारी आरम्भ कर दी। किसानों का कर-बन्दी-आंदोलन नृशंस दमन के पश्चात् भी युक्तप्रान्त, गुजरात तथा कर्नाटक में जोर से चलता रहा।

संघर्ष आरम्भ होने के पूर्व नेहरू जी घूम कर सम्पूर्ण आतंकग्रस्त क्षेत्रों का निरीक्षण करना चाहते थे। उन दिनो बंगाल की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। आतंकवादियों का वहाँ विशेष प्रभाव था, फलस्वरूप छुट-पुट घटनाये हो जाती थीं, जिनका भारतीय राजनीति पर बुरा असर पड़ता था। चटगाँव की आतंकवादी घटना, जिसमे एक क्रांतिकारी नवयुवक द्वारा एक मुसलमान अफसर की हत्या ने साम्प्रदायिक दंगे का रूप ग्रहण कर लिया था, के पश्चात् नेहरू जी कलकत्ता पहुँचे तथा वहाँ की स्थिति का निरीक्षण किया। वहाँ दिये गये अपने भाषण में तत्कालीन घटना की ओर इंगित करते हुए उन्होंने बतलाया की आतंकवादी क्रांतिकारियों के कार्यों से किस प्रकार राष्ट्रीय हित तथा आंदोलन की हानि हो रही है। यद्यपि उनकी देशभक्ति, बलिदान तथा साहस की नेहरू जी प्रशंसा करते थे, परन्तु फिर भी वे उनके हिंसात्मक मार्ग को भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की आत्मा के प्रतिकूल तथा अहितकर समझते थे। इसके पश्चात् एन० एस० हार्डीकर के अनुरोध पर वे दक्षिण मे कर्नाटक तक दौरा करने गये।

पं० नेहरू, संघर्ष के लिए तत्पर देशवासियों के जबरदस्त जोश को देखकर लौट रहे थे। लड़ाई करीब थी, नेहरू जी के हृदय मे अनेक भाव उठ रहे थे। "कर्नाटक के उस दौरे ने मेरे लिए बिदाई के समारोह का रूप धारण कर लिया। मेरे भाषण बिदाई के गीत जैसे लगते थे, लेकिन उनमें सुप्त संगीत के स्थान पर रणभेरी का स्वर था।"

उन्ही दिनों सरकार ने किसान-आंदोलन के कारण एक दमनात्मक आर्डिनेन्स निकाला, जिसमें बच्चों या नाबालिक के अपराध के लिए माता-पिता या संरक्षकों को सजा देने का इन्तजाम किया गया था। बंबई मे रोग-शय्या पर पड़ी प्रिय पत्नी के दुखों का भी विस्मरण कर नेहरू जी प्रयाग पहुँचे। मार्ग से भवन तक पहुँचने में उन्हे तीन सरकारी आर्डिनेन्स मिले, प्रत्येक के द्वारा उन पर कुछ न कुछ प्रतिबंध लगाये गये थे, जिनका तात्पर्य यह था, कि वे 'प्रयाग म्यूनिसिपल सीमा के बाहर न जाये, न किसी सार्वजनिक सभा में शरीक होकर भाषण आदि ही दे,

और न किसी समाचार पत्र मे लेख आदि ही लिखें।' बाद मे नेहरू जी को मालूम हुआ कि इसी आशय के आज्ञा-पत्र उनके अन्य कर्मठ साथियों को भी मिले थे। उन्हे यह पहले ही मालूम हो चुका था कि बंगाल तथा अन्य स्थानों की घटना से चिंतित गाधी जी इगलैण्ड से भारत के लिए प्रस्थान कर चुके हैं, ऐसी अवस्था में वे शीघ्रातिशीघ्र अपने नेता से मिलना तथा संघर्ष के भावी कार्य-क्रम को निश्चित करना चाहते थे; अतः उन्होंने दूसरे दिन सुबह ही जिला-मैजिस्ट्रेट को सूचित कर दिया "मैं आप लोगों की इच्छा के विपरीत भी अपनी इच्छानुसार ही कार्य करूंगा, इसके अतिरिक्त गाधी जी से मिलने तथा कार्यसमिति की एक बैठक में शरीक होने के लिए मैं बम्बई भी जाऊंगा।"

पं० नेहरू तथा श्री शेरवानी निश्चयानुसार बम्बई के लिए रवाना हो गये, किन्तु एक गॉव के स्टेशन के पास उनकी गाडी रोक ली गयी तथा वे गिरफ्तार कर लिये गये। जनवरी सन् १९३२ में नेहरू जी को २ वर्ष का कारावास दण्ड मिला, जब कि उसी अपराध में उनके अन्य साथियो को केवल ६ मास का दण्ड मिला था। इससे मालूम होता है कि उन्हे विशेष 'खतरनाक' समझ कर सरकार की उन पर विशेष 'कृपा-दृष्टि' थी।

गिरफ्तारी के दो दिन पश्चात्, नीले आस्मान और नीले समुद्र की मनहूस कैद से मुक्त हो, गाधी जी ने स्वदेश की सोंधी मिट्टी पर पॉव रखा, और साथ ही उन्हे मालूम हुआ कि उनके कंधे से कन्धा भिडाकर काम करने वाले उनके साथी जेल में ठूस दिये गये हैं। सरकार की दमन-नीति से उनका हृदय क्षोभ से भर गया। सम्पूर्ण देश आर्डिनेन्सों मे बद्ध कराह रहा था। तत्कालीन परिस्थिति से विचलित गाधी ने वायस-राय से मिलकर उन विषयो पर बात करने के लिए उनकी आज्ञा चाही, परन्तु वह उन्हे न प्राप्त हो सकी। अब गाधी जी के समक्ष सविनय-अवज्ञा आन्दोलन फिर चालू कर देने के सिवाय कोई रास्ता न था। कार्य-समिति ने सविनय-आदोलन का प्रस्ताव पास कर दिया। ४ जनवरी सन् १९३२

को सरकार की ओर से इसका जवाब गांधी जी तथा कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार पटेल की गिरफ्तारी के रूप में मिला, और साथ ही उसकी ओर से वह बटन भी दबा दिया गया जिससे सारे देश में दमन का भयंकर दौर शुरु हो गया। चार नये आर्डिनेन्स जारी किये गये जिनके द्वारा मैजि-स्ट्रेटों और पुलिस अफसरों को व्यापक से व्यापक अधिकार मिल गये थे। नागरिक स्वतन्त्रता की हस्ती मिट गयी थी, तथा जन और धन दोनों पर ही अधिकारी चाहे जब कब्जा कर सकते थे। तत्कालीन भारत-मन्त्री सर सैम्युअल होर ने २४ मार्च सन् ३२ को कामन्स सभा में स्वयं मंजूर किया था, "जिन आर्डिनेन्सों का हमने समर्थन कर दिया है वे बड़े ही व्यापक और सख्त है, वे हिन्दुस्तान के जीवन की लगभग हर एक प्रवृत्ति पर असर डालते है।"

अपने प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी के पश्चात्, देश में फिर एक बार प्रबल सत्याग्रह-आंदोलन तथा सरकार का दमन-चक्र घूमना आरम्भ हुआ। इकट्ठी सत्याग्रही भीड़ पर पुलिस की लाठियों की मार पड़ती। नित्य हजारों गिरफ्तारियाँ तथा सजाये होतीं। कांग्रेस तथा उससे सम्बन्धित सभी संस्थायें गैर कानूनी घोषित कर दी गयी थीं। 'स्वतन्त्रता के पश्चात, अपने ऊपर किये गये अपने शासकों के अत्याचारों से उत्पन्न आक्रोश की आग की ज्वालायें भले ही बुझ जायें फिर भी उसके धधकते हुए अंगारे भारतीयों के हृदय में, साम्राज्यवाद के प्रति घृणा बन कर हमेशा सुरक्षित रहेंगे, और वे हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के संकल्प की तरह गरम और कभी न बुझने वाले होंगे।'

नेहरू जी तथा अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के पश्चात् नेहरू जी के परिवार के लोग भी शांत न रह सके। बम्बई में रोग-शय्या पर पड़ी उनकी पत्नी श्रीमती कमला नेहरू अपनी असहायावस्था के फलस्वरुप आंदोलन में भाग न ले सकने के कारण छटपटा रही थीं: परन्तु उनकी माँ और बहनें आंदोलन में कूद पड़ीं। श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित तथा श्रीमती कृष्णा नेहरू को आंदोलन में प्रमुख भाग लेने के कारण एक-एक

वर्ष का कारावास दण्ड मिला। अंग्रेजों द्वारा नादिरशाह की भीषण नृशंसता दुहरायी जा रही थी।

इसी समय नेहरू जी की माता के साथ एक ऐसी घटना घटी जिस पर सम्पूर्ण देश दुख और आश्चर्य से स्तब्ध रह गया। २६ जनवरी के राष्ट्रीय सप्ताह के अवसर पर वे प्रयाग मे एक विशाल जुलूस का नेतृत्व कर रही थीं। उसी समय गुलामी के विनाशकारी नशे मे मदहोश पुलिस दल ने पहुँचकर जुलूस पर लाठियाँ बरसायीं। माता स्वरूपरानी सांघातिक चोट मे बेहोश हो सडक पर गिर पडीं उनके मस्तक के घाव से रक्त की धारा बह चली। बाद मे कुछ पुलिस अफसर ने उन्हे मूर्छितावस्था मे ही आनन्द भवन पहुँचाया। बिजली की तरह यह समाचार प्रयाग मे फैल गया इससे क्रुद्ध भीड विक्षिप्त हो अहिंसा का पाठ भूल गयी और उसने पुलिस पर हमला कर दिया। पुलिस ने भी जवाब मे गोलियाँ चलाई जिससे बहुतेरे मनुष्य मरे और घायल हुए। नेहरू जी को यह दुखद समाचार जेल मे मिला। स्वयं नेहरू जी के ही शब्दों में "इस ख्याल मे ही मुझे बडी बेचैनी हुई कि मेरी वयोवृद्ध निर्बल माता खून से लथपथ सडक की धूल मे पडी हुई हैं। मैं सोचने लगा कि अगर मै वहाँ होता तो क्या करता? मेरी अहिंसा कहाँ तक मेरा साथ देती? परन्तु इस घटना के कुछ दिनो पश्चात् "धीरे-धीरे वे चगी हो गईं और जब दूसरे महीने वे बरेली-जेल मे मुझसे मिलने आईं तब उनके सिर पर पट्टी बंधी थी; उन्हे इस बात की प्रसन्नता तथा गर्व था की स्वयंसेवक और स्वयसेविकाओ के साथ उन्होने भी बेतों और लाठियो की मार सहन की। परन्तु इस घटना के पश्चात् उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा तथा उनकी स्थिति चिन्ताजनक होने लगी।"

की सेवा करने के भाव से प्रेरित होकर' सार्वजनिक खर्च पर फिर समुद्र पार गये, और कहा जाता है कि इनमें से कुछ ने ज्यादा सफर-खर्च मिलने के लिए कोशिश भी की। उस दिन हर एक सच्चे भारतीय को यह देख कर जरूर वेदना हुई होगी कि जब उसकी मातृ-भूमि इस तरह जन्म-मरण के संघर्ष में लगी हुई है, कुछ अवसरवादी लोग हिंदोस्तान के नाम पर कालिख लगाने वहाँ पहुँचे।

किंतु इन अवसरवादी नेताओं की साजिशों से आंदोलन दबने की एवज में और भी उमड़ा, यद्यपि सरकार भी उसका पूरे जोर-शोर के साथ दमन कर रही थी। फौजी-हुकूमत तथा पुलिस-शासन का बोल-बाला था। व्यक्तिगत जन-जीवन के प्रत्येक पहलुओं पर शासन का नियंत्रण था।

सरकार की हिंसात्मक मनोवृत्ति ने सत्याग्रहियों को बंदी बनाने के पश्चात् जेल में भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। उन्हें भीषण यंत्रणा दी जाती थी, तथा सरकारी नीति के अनुसार उनसे मामूली कैदियों से भी बुरा बर्ताव किया जाता था। बेतों की सजा जेल की आम सजा हो गयी थी। जेल में राजनीतिक कैदियों की जिंदगी उनके लिए भार बना दी जाती, तथा यंत्रणा दे-देकर उनसे प्रतिज्ञा करायी जाती कि वे अब आंदोलन में भाग न लेंगे। कम उम्र के नौजवानों तथा महिला कैदियों के साथ तो और भी बुरा बर्ताव होता था।

यह सब होते हुए भी न जाने क्यों जेल में पं० नेहरू के साथ हमेशा अच्छा बर्ताव किया जाता था, परन्तु एक बार जेल की एक घटना से उन्हें विशेष कष्ट अवश्य हुआ था। एक बार उनकी मां, पुत्री एवं पत्नी उनसे और रणजीत पंडित से मुलाकात करने जेल गये थे; वहाँ पर जेलर ने उनका अपमान किया था तथा उन्हें ढकेल कर बाहर निकाल दिया था। जब नेहरू जी ने यह बात सुनी तो उन्होंने अपनी माँ को जेल-अधिकारियों द्वारा अपमानित किये जाने की सम्भावना से बचाने के लिए आइन्दा से जेल में किसी से भी मुलाकात न करने का निश्चय किया, और सचमुच

क़रीब सात महीने तक, जब तक वे देहरादून-जेल में रहे किसी से मुलाक़ात नहीं किया।

प० जवाहरलाल जी जेल में 'जेल की चिड़िया' के नाम से प्रसिद्ध थे तथा उसी प्रकार जीवन भी व्यतीत करते थे। कुशासन की दुर्नीति में सच्चे ईमानदार मनुष्यों के लिए जेल ही रहने के लिए उत्तम स्थान है। सुप्रसिद्ध आदर्शवादी विलियम थोरे के अनुसार "जिस समय पुरुषों और स्त्रियों को अन्यायपूर्वक कारावद्ध किया जाता है, उस समय ईमानदार नर-नारियों का स्थान जेल ही है।" अपने जेल-जीवन में नेहरू का सम्पर्क बाहरी संसार से क़रीब-क़रीब कट सा गया था, और जेल में उनका अधिक समय पढ़ने-लिखने में ही व्यतीत होता था। जेल में ही उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी, जो जून १९३४ में प्रारम्भ हुई और १८ महीनों में समाप्त हुई। इस पुस्तक में उन्होंने सम सामयिक भारतीय राजनीति का विश्लेषणात्मक तथा कवित्व पूर्ण ढंग से, बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। जेल से ही उन्होंने अपनी प्रिय पुत्री-इन्दिरा को हजारों पत्र लिखे जो बाद में 'पिता के पत्र पुत्री को' के नाम से प्रकाशित हुए। जेल में भी वे अपने को व्यस्त रखते तथा प्रकृति के रमणीय दृश्यों के अतिरिक्त कुदरत के खुशनुमें और मासूम जीवों को देख कर अपना दिल बहलाते थे।

इन्हीं दिनों जब नेहरू जी अपना जेल-जीवन शान्ति पूर्ण ढग से बिता रहे थे, उन्हें सितम्बर १९३२ को एक दिन ज्ञात हुआ कि उनके पूज्य नेता गाधी जी ने रैम्जे मैकडानल्ड द्वारा दलित वर्गों को साम्प्रदायिक चुनाव का अधिकार देने के विरोध मे, आमरण अनशन आरम्भ कर दिया है। नेहरू जी का हृदय भविष्य की अमंगलकारी अशंकाओं से भर उठा, यद्यपि उन्हें बापू के व्यक्तित्व और कार्यों पर पूर्ण विश्वास था। परन्तु इसी समय नेहरू जी की आशा के विपरीत अप्रत्याशित ढंग से पूना में विभिन्न दलों ने मिलकर एक समझौते पर हस्ताक्षर किया जिसे, परिस्थिति की विषमता को समझ कर, बृटिश प्रधान-मंत्री रेम्जे मैकडा-

नल्ड ने भी तुरन्त मान लिया। इस समझौते से, तथा आयी हुई विपत्ति इस प्रकार आसानी से टल जाने से नेहरू आदि सभी नेताओं को विशेष प्रसन्नता हुई। इसके कई महीने पश्चात् १९३३ में, गांधीजी ने फिर २१ दिन का उपवास आरम्भ किया था। यद्यपि नेहरू जी को राजनीति में इस उपवास की पद्धति पर विश्वास नहीं था फिर भी वे गांधी जी के कार्यों और दूरदर्शिता को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। गांधी जी का यह उपवास भी सकुशल पूर्ण हुआ। उपवास के पहले ही दिन वे जेल से रिहा कर दिये गये, तथा उनके कहने से ६ हफ्तों के लिए सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन भी स्थगित कर दिया गया।

यरवदा-जेल से, और बाद में बाहर आकर भी, गांधी जी द्वारा संचालित हरिजन-आंदोलन बड़ी तीव्रता से चल रहा था। हरिजन-मंदिर-प्रवेश का प्रतिबंध दूर करने के लिए गांधी जी ने तत्कालीन धारा सभा में इस आशय का एक बिल भी उपस्थित किया, तथा उसे पास कराने के लिए काफी प्रयत्न भी किया। परन्तु भारतीय-समाज-सुधार के आंदोलन को भविष्य में अपने शोषण में हानिकारक समझ सरकार ने उसे पास न होने दिया।

सविनय आंदोलन स्थगित करने के पश्चात् गांधी जी ने अपना ध्यान सामाजिक सुधारों की ओर लगाया, यद्यपि नेहरू आदि कुछ उग्र नेताओं को आंदोलन स्थगित कर उसकी शक्ति सामाजिक सुधार में लगा देने से काफी असंतोष भी हुआ था। इसके अतिरिक्त गांधी जी ने पूना में एक विशेष कान्फ्रेन्स बुलाई जिसमें यह निश्चय किया कि सामूहिक सविनय अवज्ञा बिल्कुल स्थगित कर दिया जाय, परंतु उन्होंने व्यक्तिगत अवज्ञा की छूट दे दी थी। सभी तरह की गुप्त प्रवृत्तियों को बंद कर देने की आज्ञा दी गयी। परंतु उस कान्फ्रेंस में, तत्कालीन परिस्थिति, कांग्रेस के लक्ष्य तथा उसके आगामी कार्यक्रम पर प्रकाश नहीं डाला गया, जब की अंग्रेजों और अन्य अवसरवादी शक्तियों के झूठे प्रचार का मुंह-तोड़ जवाब तथा अपनी नीति का स्पष्टीकरण करना आवश्यक था।

कांग्रेस मे व्यक्तिगत आदोलन की छूट दिये जाने के साथ ही, जनता के समक्ष उसका सही उदाहरण उपस्थित करने को ध्यान मे रख-कर, गाधी जी १ अगस्त को गुजरात के किसानो मे सविनय-अवज्ञा का प्रचार करने के लिए रवाना हुए। वह फौरन गिरफ्तार कर लिए गये तथा उन्हे, जनता मे शासन के प्रति असंतोष की भावना उत्पन्न करने के अपराध मे एक साल की सजा दे दी गयी, और वे फिर यरवदा की अपनी चिर परिचित कोठरी में पहुचा दिये गये। वहाँ गाधी जी ने, अधिकारियो से पहले की तरह ही जेल से हरिजन-आदोलन-संचालन करने की आज्ञा प्राप्त करनी चाहा; परंतु सरकार ने उन्हें ऐसी आज्ञा देने से इंकार कर दिया। फलस्वरूप वे इसके विरोध मे आमरण अनशन करने के लिए कटिबद्ध हो गये। पहले तो सरकार न झुकी परतु उनकी हालत चिंताजनक देखकर तथा भावी आशका का ध्यान कर उसने उन्हें छोड देने मे ही भलाई समझा। गाधी जी की रिहाई के कुछ दिनो पश्चात्, ३० अगस्त सन् १९३३ को, माता की शारीरिक स्थिति चिंता-जनक हो जाने के फलस्वरूप नेहरू जी को भी छोड दिया गया। जेल से मुक्त होते ही नेहरू जी शीघ्रता पूर्वक अपनी माँ की रोगशय्या के पास लखनऊ पहुँचे।

नेहरू जी जिस समय मुक्त किये गये उस समय राजनैतिक दृष्टि से हिंदुस्तान कुछ शात था। सार्वजनिक प्रवृत्तियों का सरकार ने ज्यादातर नियंत्रण और दमन कर रखा था और उनके विरुद्ध कार्य करने वालो की गिरफ्तारियाँ भी जारी थी। हिंदुस्तान मे उस समय की खामोशी वैसी ही मनहूस थी जैसी कि भयंकर दमन के अनुभव के पश्चात् दम-तोड देने वाली थकावट से आती है। यह खामोशी अक्सर तूफान आने के पहले के शांत पर साफ आकाश की तरह थी, जिसकी भयंकरता का ज्ञान अंधाधुन्ध काम करने वाली सरकार को कैसे हो सकता था।

नेहरू जी यह जानते थे कि वह मौजूदा परिस्थिति में अधिक दिन तक जेल के बाहर नहीं रह सकते, अतः उन्होंने जल्दी-जल्दी बाहर के

काम निबटा देना ही आवश्यक समझा। वे फिर जेल जाने के पूर्व एक बार गाधी जी तथा बहुत दिनों से बिछुड़े अपने अन्य सहयोगी साथियो से मिलकर मौजूदा राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर विचार कर लेना, तथा उसके अनुसार अगला राष्ट्रीय कार्यक्रम निश्चित कर लेना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उनकी बहन कृष्णा नेहरू भी एक साल तक जेल मे रहकर छूट चुकी थीं, तथा उनकी सगाई भी हो गई थी। अतः नेहरू जी जेल जाने के पूर्व जल्दी ही उनका विवाह कर देने के लिए भी चिन्तित थे।

माता के स्वास्थ्य मे संतोषजनक परिवर्तन देखकर तथा उनकी परिचर्या की पूर्ण व्यवस्था कर नेहरू जी गाधी जी से मिलने पूना गये। वहाँ उन्होने विभिन्न विषयो पर गाधी जी तथा अपने अन्य सहयोगियो से बातचीत की। वहाँ रहकर उन्होंने प्रतिक्रियावादी शक्तियो तथा लिबरल नेताओं की अवसरवादी नीति का भी पूर्णतः अध्ययन किया।

सितम्बर १६३३ के मध्य मे करीब एक हफ्ता बंबई और पूना मे व्यतीत करने के पश्चात् नेहरू जी लखनऊ लौट आये। माता का स्वास्थ्य पहले से अधिक सुधर गया था। खुद अस्वस्थ होते हुए भी उनकी प्रिय पत्नी कमला भी माँ की सेवा तथा परिचर्या करने लखनऊ आ गयी थी। उनकी बहने भी सप्ताह के अंतिम दिनो मे अपनी माँ को देखने एक बार लखनऊ अवश्य आती थीं। नेहरू जी वहाँ करीब २-३ सप्ताह रहे। वे प्रतिदिन दोनों समय माँ को देखने अस्पताल जाते थे तथा अपने खाली समय मे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख आदि तैयार करते थे।

कुछ दिनों पश्चात् पं० नेहरू माता की इच्छानुसार उन्हे लेकर प्रयाग वापस लौटे। सगाई हो जाने के फलस्वरूप अपनी बहन कृष्णा नेहरू का विवाह अपने फिर जेल जाने से पूर्व ही कर देने के उद्देश्य से, 'सिविल मैरेज ऐक्ट' के अनुसार बड़ी ही साधारण रीति से उन्होंने उसे भी सम्पन्न किया। बहन की शादी हो जाने के पश्चात् वे काशी पहुंच कर अपने

रुग्ण मित्र श्री शिवप्रसाद गुप्त से मिले। इसी अवसर पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें एक सम्मान-पत्र भी प्रदान किया। उन्होंने वहाँ हिन्दी के सच्चे शुभाकांक्षी की तरह कहा था, "हिन्दी-साहित्य का भूतकाल बड़ा गौरवमय था, लेकिन वह सदा उसी के बल पर जिन्दा नहीं रह सकती।"" मुझे पूरा यकीन है कि हिन्दी का भविष्य भी काफी उज्ज्वल है, और मैं यह भी जानता हूँ कि किसी दिन देश में हिन्दी के अखबार एक जबरदस्त ताकत बन जायेंगे, लेकिन जब तक हिन्दी के लेखक और पत्रकार पुरानी रूढ़ियों से अपने को बाहर नहीं निकालेंगे, और आम जनता के लिये लिखना न सीखेंगे तब तक उनकी अधिक उन्नति न हो सकेगी।" हरएक हिन्दी-प्रेमी जानता है कि नेहरू जी के इस कथन मे कितनी सत्यता थी। यदि किसी भाषा को अनादि काल तक जीवित रहना है तथा उसके साहित्य को अमर होना है, तो उसे जनता की बातो को, जनता की भाषा मे अपने साहित्य मे स्थान देना होगा। तभी उस साहित्य मे सत्यं, शिवं, सुन्दरम् ।का वास्तविक दिग्दर्शन होगा, और वह जनता का तथा राष्ट्रीय साहित्य कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर पावेगा।

इसके अतिरिक्त नेहरू जी ने मालवीय जी के आग्रह पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी अपना जोरदार भाषण दिया, तथा उसमें सम्प्रदायवादियों एवं साम्प्रदायिकता को खूब लथेड़ा। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों की भयंकर अनुदार साम्प्रदायिक नीति पर पत्रों में तर्क और विद्वतापूर्ण लेख भी लिखे, जिसे तत्कालीन पढ़ी-लिखी जनता ने काफी पसन्द किया और उनकी काफी दिनों तक चर्चा होती रही।

इन सब कार्यों के अतिरिक्त भी नेहरू जी अपना जनसम्पर्क बराबर बनाये रखते थे। वे सार्वजनिक सभाओं मे भाषण देते, जनता के समक्ष उसकी राष्ट्रीय समस्या रखते तथा उसे प्रोत्साहन देते थे। वे अपने

सहयोगी नेताओं से बराबर मिलते रहते तथा तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करते रहते थे।

अक्टूबर १६३३ में, प्रयाग मे मौजूदा परिस्थिति पर विचार करने और आगे का कार्यक्रम निर्धारित करने के लिए युक्त-प्रांत के कांग्रेस-कार्यकर्ताओं की बैठक हुई। इस कान्फ्रेंस ने एक समाजवादी प्रस्ताव पास किया, जिसमें भारतवासियों के लक्ष्य का बयान किया गया था और सविनय आंदोलन भंग किये जाने का विरोध किया गया था। कार्यकर्ताओं से यह कहा गया था कि वे देहातों से अपना संबंध फिर से स्थापित करें, और यह जानने की कोशिश करें कि लगान में छूट और सरकारी दमन-नीति, इन दोनों के परिणाम स्वरूप किसानों की क्या अवस्था है?

यद्यपि यह कार्यक्रम नरम और निर्दोष था, परन्तु फिर भी सरकार ने करबन्दी-आन्दोलन के प्रचार का झूठा दोषारोपण कर देहातों मे जाने-वाले कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया। युक्त-प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के प्रभावशाली मंत्री श्री रफी अहमद किदवई भी गिरफ्तार कर लिये गये। २६ जनवरी—स्वतंत्रता-दिवस—नजदीक आ रहा था, अतः नेहरू जी ने स्वतंत्रता-दिवस को उचित रूप से मनाने के लिये जनता के समक्ष एक छोटी सी अपील निकाली।

नेहरु जी की प्रिय पत्नी का स्वास्थ्य इन दिनों काफी गिर गया था। वे किसी योग्य डाक्टर से उनकी बीमारी के संबंध मे सलाह लेकर उनका इलाज कराना चाहते थे, अतः १५ जनवरी को उन्होंने कलकत्ता जाने का निश्चय किया, जिससे २६ जनवरी को स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर वे लौट कर प्रयाग मे राष्ट्रीय समारोह मे उपस्थित रह सकें।

———

बिहार-भूकम्प में नेहरू जी के कार्य

१५ जनवरी १९३४ को तीसरा पहर था। उन दिनों प्रयाग में माघ-मेला आरंभ हो गया था। नेहरू जी अपने भवन के बरामदे में खड़े आगत किसानों से बात कर रहे थे कि इतने मे ही उन्हे मालूम हुआ कि सारी धरती जोरो से कॉप रही है। भूकम्प का इतना तीव्र अनुभव उन्हें अपने जीवन में इसके पूर्व कभी न हुआ था। कुछ क्षणों के लिए तो वे स्तम्भित से रह गये, उन्हे ऐसा लग रहा था जैसे कोई प्रचंड दानव पेड़ की सूखी डाल की तरह सम्पूर्ण पृथ्वी को क्रोधित हो हिला रहा है। उस समय उन्हे यह न मालूम हो सका कि कुछ ही मिनटो की जमीन के दिल की वह अजीब प्राकृतिक धड़कन बिहार और अन्य स्थानो के लाखों असहाय आदमियो के लिये कितनी घातक साबित हुई।

उसी दिन शाम को नेहरू जी अपनी पत्नी को लेकर उनके इलाज के लिये कलकत्ता चल दिये। विनाशकारी भूकम्प के दुष्परिणाम से अनभिज्ञ अपनी गाडी मे बैठे हुए वे उसी रात को भूकम्प-पीडित प्रदेश के दक्षिण हिस्सो से हो कर गुजरे। दूसरे दिन भी कलकत्ते मे भूकम्प द्वारा हुए घोर अनर्थ के बारे मे उन्हें विशेष जानकारी न प्राप्त हुई; यद्यपि तीसरे दिन कुछ-कुछ उडती खबरों द्वारा उस वज्रपात का उन्हें आभास लगा; परन्तु फिर भी उन्होंने उसे उतना भयानक नहीं समझा था जितना भयानक वास्तव मे उसका प्रभाव हुआ। अतः वे उसकी विशेष चिन्ता न करके कलकत्ते जिस उद्देश्य से आये थे उसे पूर्ण करने मे लग गये। अपनी पत्नी के विषय मे वह कई डाक्टरों से मिले और अन्त

में यही निश्चय हुआ कि एक दो महीने बाद कमला देवी फिर कलकत्ते आकर अपना इलाज करायें। इसके अतिरिक्त वहाँ नेहरू जी अपने बहुत से पुराने मित्रों और सहयोगियों से भी मिले, जिनसे लम्बे अर्से से उनकी मुलाकात नहीं हुई थी। बंगाल में चारों तरफ दमन के कारण लोगों के दिलों में जो डर बैठ गया था उसका भी उन्होंने अनुभव किया।

कलकत्ता में नेहरू जी तीन दिन ठहरे तथा तीन सार्वजनिक सभाओं में उन्होंने व्याख्यान दिया, जिसमें उन्होंने आतंकवादी क्रान्तिकारियों के कार्यों को देश के लिये अहितकर बतलाया। उन्होंने शासकों के उन तरीकों पर भी बहुत ही क्षोभ प्रकट किया जिसके जरिये बंगाल की सारी जनता का अंधाधुंध दमन कर मानव-समाज पर बलात्कार किया जा रहा था। इस मानवता के प्रश्न के आगे राजनीतिक प्रश्न ने अत्यन्त आवश्यक होते हुये भी, गौण स्थान प्राप्त कर लिया था। बाद में कलकत्ता में उन-पर जो मुकदमा चला उसमें ये ही तीन भाषण उनके विरुद्ध तीन आरोप बनाये गये थे।

कलकत्ता से पं० नेहरू सपत्नीक विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट करने शान्ति-निकेतन गये। कवि से मिलना हमेशा ही आनंददायक होता है। इसके पूर्व जवाहरलाल जी दो बार और शान्ति-निकेतन आ चुके थे, तथा बंगाल की आत्मा, कवि रवीन्द्र से भेंट कर चुके थे। परन्तु उनकी पत्नी कमला देवी का शान्ति-निकेतन के वातावरण से परिचित होने का यहाँ पहला अवसर था।

कलकत्ता से प्रयाग लौटते हुये नेहरू जी भूकम्प द्वारा हुई हानि का वास्तविक ज्ञान करने के लिये पटना उतर गये। बिहार-केसरी बाबू राजेन्द्र प्रसाद हाल ही में जेल से छूटे थे, और वे भूकम्प-पीड़ितों की सहायता के लिये काफी तत्परता से कार्य कर रहे थे। नेहरू जी को उस दिन पहली बार ज्ञात हुआ कि उत्तर भारत में आये उस भीषण भूकम्प ने बिहार-प्रांत को प्रायः ध्वस्त ही कर दिया था। जवाहरलाल अपनी पत्नी के भाई के मकान में ठहरने वाले थे, परन्तु भूकम्प से वह खण्डहर

हो गया था। पहले वह भवन ईंटो की एक बड़ी, दो-मंजिली इमारत थी। अतः जवाहर लाल जी को अन्य लोगों की तरह खुले मैदान में ही डेरा डालना पड़ा।

दूसरे दिन जवाहरलाल जी मुजफ्फरपुर गये। भूकम्प आये पूरे सात दिन गुजर चुके थे। पर अभी तक सिवा कुछ खास रास्तों के साफ करने के अलावा कहीं भी मलवा उठाने के लिए कुछ भी नहीं किया गया था। इन रास्तो को साफ करते समय बहुत सी लाशें निकली थीं। इनमें से कुछ तो विचित्र भावमयी अवस्था में थीं, जैसे किसी गिरती हुई छत या दीवार से बचने का प्रयत्न कर रही हों। ध्वस्त घरों और बड़ी-बड़ी इमारतों के खंडहरों का दृश्य बहुत ही मार्मिक और रोमांचकारी था। जो लोग बच गये थे, वे अपने दिल दहलाने वाले अनुभवों की याद कर बहुत भयभीत हो जाते थे। जवाहरलाल जी ने कितने ही ध्वस्त स्थानों मे घूम-घूमकर वहाँ की दुर्दशा देखी और पीड़ित जनता को सान्त्वना दी।

प्रयाग लौट आने के पश्चात् कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के साथ वे पीड़ित क्षेत्र की मदद के लिए धन और जन जुटाने में व्यस्त हो गये। नेहरू जी ने धन के लिये एक अपील प्रकाशित की और उसी अपील में उन्होंने बिहार-सरकार की अकर्मण्यता की आलोचना भी की थी। जिसका मतलब यह था कि यदि बिहार-सरकार के अधिकारियों ने मलवा आदि हटाने में कुछ भी तत्परता दिखलाई होती तो बहुतेरे मनुष्यों की जान बच जाती। केवल एक मुंगेर नगर में ही भूकम्प से हजारों व्यक्ति मरे थे, और तीन सप्ताह बाद भी नेहरू जी ने वहाँ जाकर देखा कि गिरे हुए ध्वस्त मकानों के मलवे का पहाड़ ज्यों का त्यों पड़ा हुआ था।

प्रयाग की भूकम्प-सहायक-समिति ने नेहरू जी को बिहार के भूकम्प पीड़ित इलाकों मे जाने के लिये, और वहाँ की जानेवाली सहायता के कार्यों के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट देने के लिये नियुक्त किया। वे तुरन्त

अकेले ही रवाना हो गये तथा भूकम्प-ग्रस्त क्षेत्रो का कई दिनो तक निरीक्षण करते रहे। नेहरू जी को इस दौरे मे बडा परिश्रम करना पडा। यहाँ तक कि उन्हे सोने तक की फुर्सत न मिल पाती थी। प्रातः ५ बजे से लगभग अर्धरात्रि तक वे कार्यकर्ताओं के साथ बराबर निरीक्षण ही करते रहते तथा रिपोर्ट ही बनाते रहते थे।

नेहरू जी के ही शब्दों मे, "हम कभी दरारोवाली टूटी-फूटी सडको पर मोटर मे जा रहे होते, तो कभी छोटी-छोटी डोगियों के द्वारा ऐसे स्थानो मे उतर रहे होते जहाँ पुल गिरे पड़े थे, या जहाँ जमीन की सतह मे फर्क आ जाने से सडके पानी में डूब गयी थीं। मानों किसी दैत्य के हाथो द्वारा मरोडी हुई, शहरो मे ढेर के ढेर खंडहरों और टूटी हुई इमारतो, तथा दोनो ओर के मकानो की कुर्सी से ऊपर उठी हुई सडको का दृश्य बडा हृदयस्पर्शी था। इन सडकों की बडी-बडी दरारो मे से पानी और रेत जोर से निकल रहे थे, जिसमे असंख्य मनुष्य और जानवर बह रहे थे। उन शहरो से भी ज्यादा उत्तर बिहार के मैदानो पर—जिन्हे बिहार का बाग कहा जाता था—उजड़ेपन और विनाश की छाप लगी हुई थी। मीलों तक फैली हुई बालू की रेत, पानी के बड़े-बड़े तालाब और विशालकाय दरारे छोटे-छोटे असंख्य ज्वालामुखी के मुँह से बन गये थे, जिनमे से बालू, रेत, पानी निकलता था। इस इलाके मे हवाईजहाज पर उडने वाले अंग्रेजो ने कहा था कि ये दृश्य लडाई के जमाने मे और उसके कुछ बाद के उत्तरी फ्रास के युद्ध-क्षेत्रों से बहुत कुछ मिलते जुलते थे। ऐसे अनेक भयानक दृश्यों को देखते हुए नेहरू जी कार्य-कर्त्ताओं के साथ सहायता-कार्य मे संलग्न रहे।

नेहरू जी ने मुँगेर मे स्वयं अपने हाथो से कठिन कार्य करने का उदाहरण उपस्थित किया। उस समय वहाँ अनेक सेवा-समितियो के कार्यकर्त्ता—जिसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही थे—कार्य कर रहे थे। जवाहरलाल जो स्वयं टोकरी और फावडा लेकर इन कार्यकर्ताओं के साथ

आगे बढ़े और ध्वस्त इमारतों के मलवे को खोदने लगे। दिन भर परिश्रम के साथ वे खुदाई करते रहे, जिससे अन्य कार्यकर्ताओं का भी उत्साह काफी बढ़ गया और वे अधिक तत्परता से कार्य करने लग गये।

नेहरू जी ने व्यापक रूप से घटनाक्रांत प्रदेशों का दौरा किया। यहाँ तक कि वे नेपाल की सीमा तक पहुँच गये। उन्होंने अनेक हृदय-विदारक दृश्य देखे। नेहरू जी पटना आये तथा वहाँ सहयोगी कार्य-कर्ताओं से, पीड़ितों को सहायता पहुचाने के विषय पर देर तक बात करते रहे, इसके पश्चात् वे ११ फरवरी को प्रयाग लौट आये। भूकम्प-ग्रस्त क्षेत्रों मे काम करने तथा सहायता पहुँचाने वाली संस्थाओं मे सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी ने जिसके अध्यक्ष बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी थे तथा जिसका कांग्रेस से कोई विशेष सम्बन्ध न था, काफी काम किया।

लम्बे दौरे के कारण नेहरू जी बहुत थक गये थे, और प्रतिकूल मौसम के प्रभाव से उनके चेहरे का रंग भी बदल गया था। अत्यधिक परिश्रम और पूरी नींद न होने के कारण वे बिल्कुल शिथिल हो गये थे। उन्होंने आने के पश्चात् प्रयाग-सहायता-समिति के लिए रिपोर्ट लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु, वे असफल रहे तथा नींद ने उन्हें दबोच लिया। उस दिन वह १२ घन्टे तक खर्राटा भरते रहे।

दूसरे दिन सायंकाल पं० नेहरू अपनी पत्नी के साथ चाय-पान कर रहे थे कि श्री पुरुषोत्तम दास टंडन उनसे मिलने पहुँचे। वे लोग बरामदे मे खड़े ही हुए थे कि इतने में पुलिस की एक मोटर आयी और उस पर से एक पुलिस अफसर ने उतर कर उन्हें सलाम किया। नेहरू जी तत्काल ही सब कुछ समझ गये अतः उन्होंने हास्य करते हुए कहा, "आइये! आप का इन्तज़ार तो बहुत दिनों से था।" पुलिस इन्सपेक्टर ने क्षमा-याचना करते हुए कहा, "कसूर हम लोगों का नहीं है। वारण्ट कलकत्ते से आया है।"

नेहरू जी ५ महीने १३ दिन की स्वतंत्रता के पश्चात् फिर अपने

चिरपरिचित स्थान जेल में भेज दिये गये। कलकत्ते में उन्होंने जो तीन भाषण दिये थे यह उसी की सजा थी। पहले नेहरू जी को कलकत्ता प्रेसिडेन्सी जेल में रखा गया परन्तु बाद में उनका तबादला अलीपुर सेन्ट्रल जेल में हो गया। वहाँ उन्हें एक १० फुट लम्बी और ६ फुट चौड़ी कोठरी रहने के लिये दी गयी। इस कोठरी के सामने एक बरामदा और छोटा सा सहन था। कोठरी की ओर जेल के बावर्चीखाने की चिमनियाँ थीं जो लगातार अपने मुँह से काला धुआँ उगलती रहती थीं। कभी-कभी यह धुआँ हवा के रुख पर उड़ता हुआ आकर नेहरूजी का दम घोटने लगता था। उन्हें अधिकतर अपनी कोठरी में बन्द रहना पड़ता, कसरत और टहलने की कोई सुविधा न दी गयी थी, अतः उस गन्दे वातावरण में उनका स्वास्थ्य तेजी के साथ गिरने लगा। अंततः उन्हें अधिकारियों ने कुछ समय के लिए कोठरी के बाहर टहलने तथा कसरत करने की इजाजत दे दी।

परन्तु नेहरू जी का स्वास्थ्य न सुधरा और वजन दिन पर दिन गिरता गया, फलस्वरूप उन्हें वहाँ से अपने चिर-परिचित स्थान देहरादून के जेल में भेज दिया गया। नेहरू जी पर्वतीय जलवायु का सेवन तथा हृदयग्राही दृश्यों के अवलोकन की कल्पना कर इस तबादले से काफी प्रसन्न हुए। किन्तु उनकी यह मनोकामनायें पूर्ण न हो सकीं, कारण वे १४ फुट ऊँची चहारदीवारी से घिरे एक बंद स्थान में रखे गये थे। जहाँ से प्रकृति की सहृदय लीला तथा रूप देखने की कल्पना स्वप्नमात्र ही थी। नेहरूजी के ही शब्दों में, 'मैं जानता था कि इन दीवारों के दूसरी ओर कुछ फुट की दूरी पर, वायुमंडल में ताजगी और सुगन्ध भरी हुई है, पृथ्वी और आकाश में धरती की ठंडी-ठंडी महक फैल रही है और दूर-दूर तक के दृश्य दिखलाई पड़ रहे हैं : लेकिन ये सब मेरी पहुँच के बाहर थे। बार-बार उन्हीं घेरेदार दीवारों को देखते-देखते मेरी आँखें पथरा जाती थीं। जेल के वार्डर के आने जाने के लिए जब कभी मेरे सहन का लोहे का दरवाजा खुलता था

तो एक क्षण के लिए बाहरी दुनिया की झलक, लहराते हुए हरे-भरे खेत और रंग-बिरंगे वृक्ष, जिन पर मेह की बूंदें मोती की तरह चमकती थीं, बिजली की कौंध की भाँति अकस्मात् दृष्टिगोचर होकर तत्काल विलीन हो जाते थे" हरियाली और ताजगी की ये अल्प झाँकियाँ अब मुझे अच्छी नहीं लगती थीं। उन्हे देख कर मुझे घर की याद आ जाती और दिल मे एक टीस सी उठती थी; इसलिए जब कभी दरवाजा खुलता मैं बाहर की ओर नहीं देखता था।"

अलीपुर-कारागार मे नेहरू जी को समाचार-पत्र पढ़ने को नहीं दिये जाते थे पर देहरादून मे वे फिर से मिलने लगे, अतः उन्हे बाहर के दूसरे समाचारों का भी कुछ-कुछ ज्ञान होने लगा। उन्हे ज्ञात हुआ कि अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन करीब ३ वर्ष के बाद फिर से पटना मे हुआ है। अधिवेशन की ठंढी कार्यवाहियों से नेहरू जी को विशेष निराशा हुई। वे झुंझला उठे तथा अपने उग्र विचारों के कारण वे अपने देश मे अपने साथियों के बीच भी, अपने को बौद्धिक रूप मे अकेला और असहाय पाने लगे।

जुलाई के अन्तिम दिनों मे कमला नेहरू का स्वास्थ्य बहुत तेजी से गिरने लगा था तथा स्थिति चिंताजनक हो गयी। अतः ११ अगस्त को नेहरू जी को अस्थायी तौर पर मुक्त कर दिया गया। नेहरू जी जब घर पहुँचे तब उन्होने देखा, उनकी प्रिय पत्नी के शरीर मे केवल अस्थि-पञ्जर मात्र ही शेष रह गया है। वह अत्यन्त कमजोर हो गयी थी। रोग से टक्कर लेते-लेते उनका शरीर छायामात्र रह गया था।

श्रीमती कमला नेहरू

जवाहरलाल सरीखे उत्कट देशभक्त, क्रान्तिकारी नेता की पत्नी कमला नेहरू भी कोई सामान्य स्त्री नहीं थी। एक अत्यन्त तेजस्वी और तपस्वी पति के साथी, श्रीमती कमला नेहरू भी संयमी तपस्विनी की तरह सच्ची देश-सेविका हो गयी थीं। वह अपने कर्मठ पति के राजनीतिक आन्दोलन और कार्यों मे जीवन के अन्त समय तक शामिल रहीं, और किसी भी प्रकार के कष्ट सहन करने अथवा आत्मत्याग करने से वह कभी पीछे न हटीं। निश्चय ही नेहरूजी के साथ उनकी आदर्श पत्नी का नाम भी भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में स्वर्णाक्षरो मे अंकित और अमर रहेगा।

नेहरू जी जब २६ साल के थे तब उनके परिणय-सम्बन्ध मे आबद्ध नव वधू कमला ने, सासारिक बातों से सर्वथा अनभिज्ञ अबोध बालिका की भाँति, उनके सम्पन्न गृह मे प्रवेश किया था। नेहरू जी ने असीम आनन्द के साथ अनुभव किया था कि वय और मानसिक दृष्टि-बिन्दुओं मे काफी अन्तर होते हुए भी इस सुकुमार और भावुक बाला का मस्तिष्क फूल की तरह धीरे-धीरे विकसित हो उनके अनुरूप हो रहा है। कभी-कभी वर और वधू विपरीत दृष्टिकोण होने के कारण बच्चों की तरह झगड़ पड़ते और थोड़ी देर बाद ही दूध और पानी की तरह एक हो अपने हठ पर खिलखिला कर हँस भी पड़ते। दोनों का स्वभाव तेज था, दोनो ही तुनकमिजाज थे और दोनो मे ही अपनी शान रखने की बच्चों की सी जिद थी।

कुछ दिनों पश्चात् देश की राजनीति ने नेहरू जी को पूर्णतः अपनी

ओर खींच लिया। पंजाब मे ब्रिटिश शासकों के द्वारा भीषण हत्याकाण्ड होने के पश्चात्, रोते हुए पंजाब के आतप्त आँसुओं को पोछने के लिए जनता के खून ने जोर मारा, एक अभूतपूर्व राजनीतिक आन्दोलन की लहर उठी, जो महात्मा गाधी के नेतृत्व मे दावाग्नि की तेजी के साथ सर्वव्यापी क्रान्ति के रूप मे, हिन्दुस्तान के कोने-कोने तक फैल गयी। स्वतंत्रता-संग्राम में पं० जवाहरलाल, गाधी जी के एक प्रमुख सहयोगी तथा नायक रहे, और वीराङ्गना कमलादेवी पतिदेव की भक्त अनुयायिनी तथा सहकारिणी रही। इतना ही नहीं, वह पति को चिन्तित अथवा निराश देखकर, अपनी वेदना को गरल की तरह पीती हुई प्रसन्न मुख से उन्हे उत्साहित करतीं, और यह कहना अत्युक्ति न होगा कि जवाहरलाल जी को उनकी सम्मति और मीठी वातों से काफी सान्त्वना तथा उत्साह मिलता था।

अस्वस्थ रहने पर भी श्रीमती कमला नेहरू पति की भाँति राजनीतिक आन्दोलन मे सदा उनके साथ रहीं और उन्ही की भाँति वह भी कई बार कारागार गई थी। सत्याग्रह-आन्दोलन ने उन्हे राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रेमी सैनिको की प्रथम पंक्ति मे लाकर खड़ा कर दिया था। वह यद्यपि एक सुकोमल राजकुमारी की तरह थी, पर देश के लिए कष्ट सहन करने और आन्दोलन की गतिविधि संचालन करने मे रण की एक ऐसी निर्भक वोरागना भी थीं, जो किसी भी सुख-चैन की परवाह नही करतीं। स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार होते ही उन्होने अपने विदेशी कपडो की होली जलाई तथा खादी धारण की। वे राष्ट्रीय जुलूसों के साथ झंडा लिए आगे-आगे चलतीं, विदेशी वस्त्र-विक्रेताओ से ऐसा न करने के लिए आरजू-मिन्नत करतीं, तथा दूकानों पर धरना देतीं, और पुलिस के निर्दय प्रहारो की अवहेलना करती हुई लोगों में जोश का संचार करती थी। वह अपने पति की तरह बिल्कुल निडर और साहसी थीं। पं० नेहरू की दोनो बहनो तथा अन्य महिलाओ के साथ वह हर मुहल्ले मे स्वदेशी और स्वराज्य का स्वर पहुँचातीं। उनके प्रयत्न से नगर की वहुतेरी लड़कियां तथा

महिलाओं ने स्वयंसेविकाओं में अपने नाम लिखा लिये थे। नेताओं की गिरफ्तारी के पश्चात् भी ये स्वयंसेविकायें सत्याग्रह-आन्दोलन को जीवित रखती थीं।

महात्मा गांधी ने जब नमक-कानून तोड़ने का आन्दोलन आरम्भ किया तो जवाहरलाल जी भी प्रयाग में अपने साथियों के साथ नमक बनाने में जुट गये थे। गांधी जी डाँडी में गिरफ्तार हुए, तथा जवाहरलाल जी भी दो दिन बाद प्रयाग में गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये थे। श्रीमती कमला नेहरू ने पति की गिरफ्तारी के पश्चात् भी उनका कार्य जारी रखा, तथा अपनी स्वयंसेविका-सेना के साथ प्रयाग में अधिकारियों की नाक के नीचे ही नमक बना कर कानून भंग किया था, पर सरकार ने असन्तोष की वृद्धि के डर से उस समय उन्हें गिरफ्तार न करना ही उपयुक्त समझा।

नमक-कानून-भंग करने के अपराध में पं० जवाहरलाल की गिरफ्तारी के पश्चात् वीराङ्गना कमला देवी के उस रुग्ण दुबले-पतले शरीर में न जाने कहाँ से असीम विद्युत् शक्ति आ गयी। वे बहिष्कार-आन्दोलन में और भी तीव्रता के साथ जुट गयीं। ग्रीष्म की तपती हुई लू और दुपहरिया में, वे स्वयंसेविकाओं के साथ निकलतीं और लोगों से विदेशी वस्त्र न खरीदने के लिए प्रार्थना करतीं। उन्होंने सुदूर गाँवों का दौरा किया और उन्हें स्वराज्य तथा स्वदेशी का सन्देश सुनाया। उन्होंने करबन्दी आन्दोलन में भी प्रमुख भाग लिया था।

एक बार प्रयाग के बाहर एक गाँव में विद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में वे बन्दी कर ली गयीं। उन पर 'कानून द्वारा स्थापित सरकार' के विरुद्ध लोगों को भड़काने का अपराध लगा कर उन्हें कुछ महीनों की सजा दी गई, और वे लखनऊ जेल में भेज दी गयीं। इसके पश्चात् सरकार और कांग्रेस में सुलह की वार्ता प्रारम्भ हुई, और देश में कुछ समय के लिए शान्ति का वातावरण स्थापित हो गया।

अस्थायी संधि के पश्चात् गांधी जी गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के

एक मात्र प्रतिनिधि की हैसियत से गये, और देश में अस्थाई रूप से आन्दोलन रोक लिया गया। पति के अनुसार ही श्रीमती कमला नेहरू भी संधि का महत्त्व, और शान्ति के नियमों के पालन का सन्देश जनता को सुनाती थीं। आन्दोलन में परिश्रम के साथ निरन्तर भाग लेने से उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था अतः पं० जवाहरलाल जी जल-वायु परिवर्तन कराने के उद्देश्य से उन्हें लंका ले गये। कुछ समय तक वहाँ रहने के पश्चात् वे जब फिर सपत्नीक भारत लौटे उस समय तक लंदन में गोलमेज-परिषद् का स्वाँग समाप्त हो चुका था। ब्रिटिश सरकार की कूटनीति और धूर्तता से देश में फिर असन्तोष फैल गया था। गांधी जी लंदन से चल चुके थे और मार्ग में ही थे कि शासकों की ओर से छेड़-छाड़ के फलस्वरूप भारत में फिर आन्दोलन छिड़ गया। नेहरू जी ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का फिर संचालन किया तथा बन्दी हुए। कांग्रेस का आन्दोलन तथा सरकारी दमन-चक्र दोनों ही तीव्रता से चल रहे थे। कुछ दिनों के भीतर ही सभी प्रमुख कांग्रेसी नेता फिर से जेल में ठूँस दिये गये। प्रयाग में सिर्फ श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित तथा कमला जी ही बच गई थीं। नगर में धारा १४४ का कड़ा प्रतिबंध था, परन्तु वे दोनों ही महिलायें पुलिस की लाठी और अन्य निर्दयता के बीच भी कानून-भंग कर स्वयंसेविकाओं का संगठन करतीं।

कमला जी इसी समय कांग्रेस-कार्यकारिणी की सदस्या चुनी गयीं और उसकी बैठक के सम्बन्ध में उन्हें बम्बई जाना पड़ा। वहाँ भी उन्होंने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया तत्पश्चात् प्रयाग लौट आयीं। यहाँ लौटने पर वह अत्यधिक अस्वस्थ हो गयीं। उनकी सास, माता-स्वरूप रानी भी बीमार थीं। आनन्द-भवन में सास और बहू अलग-अलग रोग-शय्या पर पड़ी थीं। कमला देवी को तपेदिक का पुराना रोग था, जो इलाज होने पर कुछ अच्छा हो जाता था पर परिश्रम करने से फिर उभर आता था। कलकत्ते से डाक्टर विधानचन्द्र राय उनके इलाज के लिए बुलाये गये। पं० नेहरू उस समय जेल में थे। माता तथा पत्नी की बीमारी जब

अधिक बढ़ी तब सरकार ने उन्हे अस्थाई तौर पर कुछ दिन के लिए मुक्त कर दिया।

नेहरू जी अपनी प्रिय पत्नी से मिलने शीघ्र आनंद-भवन मे पहुँचे। माता की रुग्णावस्था का समाचार प्राप्त कर उनकी पुत्री इन्दिरा शान्ति-निकेतन से आ चुकी थी। पत्नी के शरीर और स्वास्थ्य की यह दशा देखकर नेहरू जी का हृदय रो पड़ा। दाना चुगने के लिए आते पक्षियों की भाँति, कमला के सहवास मे व्यतीत किये हुए पिछले सुखद दिनों की याद, एक एक कर उनके स्मृति-पटल पर उतरने लगी। वैवाहिक जीवन के ये अठारह वर्ष, परन्तु वे कितने दिनो तक आनंदपूर्वक एक साथ रह सके? जीवन के इन अठारह वर्षों मे से कितने ही साल उन्होने जेल की दुर्गंधयुक्त सीलन भरी कोठरी मे बिता दिये, और उनकी प्रिय पत्नी ने एकाकी ढंग से पति के सान्निध्य और प्रेम-पूर्ण व्यवहार से दूर, मन मारे अस्पताल और सेनिटोरियम मे बिता दिये। वह बीमार पड़ी हुई जीवन के लिये संघर्ष कर रही थीं, क्योंकि राष्ट्रीय संग्राम में पूर्ण हिस्सा लेने में अशक्त होने के कारण उनकी तेजस्वी आत्मा पिंजरे मे बन्द पक्षी की भाँति छटपटा रही थी। शरीर के समर्थ न होने के कारण न तो वह ठीक तरह से कार्य ही कर सकती थी न ठीक तौर पर अपना इलाज ही करा पाती थीं, नतीजा यह हुआ कि अन्दर ही अन्दर सुलगती रहनेवाली आग ने उनके शरीर को खा डाला।

क्रूर काल के निष्ठुर प्रहार होने पर भी उनके सौन्दर्य तथा तेज मे कमी न हुई थी। नेहरू जी के ही शब्दो मे, "वैवाहिक जीवन के अठारह वर्ष पश्चात् भी उसके मुख पर मुग्धा कुमारी का भाव अभी तक वैसा ही बना था, प्रौढ़ता तथा जरावस्था का कोई चिह्न न था। प्रथम दिन नव वधू बन कर वह जैसी हमारे घर आई थी, अब भी बिल्कुल वैसी ही मालूम होती थी।"

अपने छुटकारे के ११ वें दिन, २३ अगस्त को नेहरू जी फिर गिरफ्तार कर लिए गये। जैसे ही वे मोटर पर बैठे उनकी रुग्ण माँ

बाहे फैलाये दौडी हुई आईं । परन्तु बेबस नेहरू को माता को उसी दशा में छोड तत्काल ही नैनी-जेल की ओर रवाना होना पडा । पति के पुनः जेल जाने से कमला देवी की सुधरती हालत फिर बिगड गयी। नेहरू जी को यह सूचना दी गई कि यदि वे सरकार को यह आश्वासन दें कि अस्थायी समय तक के लिए छोड दिए जाने पर वे उन दिनों राजनीति मे भाग न लेंगे—चाहे वह अलिखित ही क्यों न हो—तो उन्हे प्रिय पत्नी की सेवा शुश्रूषा के लिए छोडा जा सकता है। परन्तु उन्होंने कमला के तथा अपने आत्मसम्मान का ध्यान कर उसे स्वीकृत न किया।

अक्टूबर के आरम्भ मे उन्हे एक दिन पत्नी से भेंट कराने के लिये ले जाया गया। वे ज्वर मे अचेत पडी हुई थीं, पति को देखते ही उनके अधरों पर मन्द मुस्कराहट नाच उठी और उन्होने उन्हे कुछ नीचे झुकने का इशारा किया। उनके नीचे झुकने पर उन्होंने धीरे से उनके कान मे कहा—"सरकार को आश्वासन देने की यह कैसी बात हो रही है? ऐसा हरगिज न करना!" पति के सहवास मे रहने की तीव्र इच्छा होते हुए भी उस वीरागना ने अपने कर्तव्य को प्रथम स्थान दिया तथा अपनी मनोभावना के मधुर भावो को भी कुचल डाला।

कमला देवी का स्वास्थ्य तेजी से गिरता देख कर उन्हे डाक्टरों ने भुवाली ले जाने की सलाह दी। जाने के एक दिन पूर्व नेहरू जी को उनके पास पहुंचाया गया। नेहरू जी के दुखित मन मे उस समय अनेक अनिष्टकारी भावनाये उठ रही थी। पर चेहरे से वे अपना भाव व्यक्त नही कर रहे थे। उन्होंने देखा कि उस दिन उनकी प्रिय पत्नी कुछ स्वस्थ तथा प्रसन्न थी। उनके जाने के करीब ३ सप्ताह पश्चात् नेहरू जी भी अल्मोडा जेल पहुँचाये गये, ताकि वे कमला के निकट रहे तथा उनसे मिल सके। पत्नी की हालत मे उतार चढ़ाव होते रहने से उन्हे हमेशा चिन्ता रहती थी और वे उदास से रहते थे, परन्तु पर्वत की शीतल वायु कुछ समय के लिये उन्हे स्वस्थ तथा शान्त कर देती थी।

कमला देवी से नेहरू जी की मुलाकात महीने दो महीने मे एक दो बार ही हो पाती थी। यह बात समाचार-पत्रों में छपने पर तथा विरोधी पार्टी द्वारा प्रश्न किये जाने पर उसका खंडन करते हुए तत्कालीन भारत-मंत्री ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट मे कहा था, "पं० नेहरू को सप्ताह मे एक या दो बार अपनी पत्नी से मिलने की आज्ञा है।" भारत-मंत्री की यह बात कैसी मिथ्या थी। पत्नी के पास ले जाये जाने पर पं० नेहरू भरे हुये हृदय से अपनी रुग्ण प्रियतमा से मिलते, और कभी कभी तो बड़े वेदना भरे हृदय से सोचने भी लगते थे कि निकट भविष्य मे एक ऐसा दिन भी आ सकता है, जब जेल वापस लौटते समय पत्नी से यह विदा शायद चिर विदा हो। इन्हीं दिनो पं० नेहरू पर नियति का दूसरा क्रूर प्रहार हुआ, उन्हें यह सूचना मिली कि उनकी रुग्ण माता को बम्बई में लकवा मार गया है।

इन्ही दिनों बम्बई मे अखिल भारतीय काग्रेस का अधिवेशन हुआ। नेहरू जी को इसकी सूचना प्राप्य अखबारों द्वारा हुई। परन्तु अधिवेशन की तत्कालीन कार्यवाहियों ने उनके मन में स्फूर्ति का संचार नहीं किया। कुछ महत्वपूर्ण निर्णय होते हुये भी उन्हें सम्पूर्ण अधिवेशन की कार्यवाही नीरस सी ज्ञात हुई। इस कान्फ्रेंस मे गाधी जी का काग्रेस से अलग होना कुछ महत्वपूर्ण घटना थी, यद्यपि इसका महत्व कोई विशेष नहीं था क्योंकि यदि वे चाहते तो भी अपने व्यापक नेतृत्व-पद से अपना पीछा नही छुड़ाते सकते थे। वे उस समय शायद काग्रेस से इसलिये अलग हो गये थे कि कहीं उनके कारण काग्रेस किसी कठिनाई मे न पड जाये। वे अपने व्यक्तिगत सत्याग्रह की बात सोच रहे थे, जिसमे यदि काग्रेस को भी घसीटा जाता तो सरकार से फिर युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना थी और वे इसे काग्रेस का प्रश्न बनाना नहीं चाहते थे। इसी अधिवेशन मे काग्रेस ने भारत का भावी विधान बनाने के उद्देश्य से विधान-समिति-निर्माण का विचार स्वीकार कर लिया। नेहरू जी को भी इस विचार से विशेष प्रसन्नता हुई।

बम्बई-कांग्रेस के पश्चात् फौरन ही असेम्बली का चुनाव आया। कांग्रेस ने उसमें भाग लिया तथा काफी स्थानों पर जीती भी। नेहरू जी को चुनाव मे विशेष दिलचस्पी न होने पर भी कांग्रेस की जीत से विशेष प्रसन्नता हुई, क्योंकि चुनाव मे सम्प्रदायवादी तथा अवसरवादी दलों को विशेष हार हुई थी। वे यह पूर्णतः जानते थे कि असेम्बलियों मे पहुँच कर भी कांग्रेसी नेता देश का कोई विशेष हित न कर सकेंगे।

इधर भारतीय राजनीति का क्रम अपनी अबाध गति से बढ़ता हुआ एक-एक पग आगे जा रहा था, और साथ ही उधर नेहरू जी की प्रिय पत्नी के जीवन के दीप का तेल भी धीरे-धीरे चुक रहा था। उनकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी, अतः डाक्टरों की सलाह के अनुसार उन्हे विदेश भेजा जाना निश्चित किया गया। पहले कुछ दिन तक उनका इलाज जर्मनी में होता रहा पश्चात् उन्हे लोंजान (स्विटजरलैंड) भेजा गया। इसके पश्चात् ४ सितम्बर १६३५ को पं० जवाहरलाल जी भी अल्मोड़ा जेल से छोड़ दिये गये। वे तुरन्त वायुयान से अपनी प्रिय पत्नी से मिलने के लिये योरोप रवाना हो गये। उन्होंने देखा कि वहाँ उनकी पत्नी जीवन और मृत्यु के बीच पड़ी संघर्ष कर रही हैं। पति को आया देखकर कमला देवी को काफी सान्त्वना प्राप्त हुई।

२८ फरवरी १६३६ को जब श्रीमती कमला नेहरू का देहावसान हुआ, पं० जवाहरलाल नेहरू उनके निकट ही थे, और अपनी निष्प्राण प्रिया को देखकर आँसू बहा रहे थे। उसके कुछ दिन पूर्व ही उन्हे यह समाचार मिला था कि वे दूसरी बार कांग्रेस के सभापति चुने गये हैं। अभी चिर वियोग के गीले आँसू सूख भी न पाये थे कि कर्त्तव्य ने, देश ने, भारत माता की ३५ कोटि सन्तान ने, अपने युद्ध के नेतृत्व के लिए फिर से उस महान् जननायक का आह्वान किया।

डा० पट्टाभि सीतारमैया के शब्दानुसार, "श्रीमती कमला देवी की मृत्यु केवल जवाहरलाल जी पर ही एक व्यक्तिगत चोट न थी वरन् वह राष्ट्र के लिए एक असाधारण क्षति थी। जवाहरलाल जी के

जीवन-कार्य में उनकी पत्नी का जो सहयोग था, उसके प्रति राष्ट्रीय कृतज्ञता, और जवाहरलाल जी के दुख से राष्ट्रीय सहानुभूति की यह तो एक तुच्छ अभिव्यक्ति थी कि उनको कांग्रेस का दूसरी बार अध्यक्ष बनाया गया।" परंतु क्या यह 'तुच्छ अभिव्यक्ति' विराट् व्यक्तित्व और उस महान व्यक्ति को इस पद पर एक बार फिर अधिष्ठित कर उसके महत्व को कुछ विशेष बढ़ा सकती थी? और उसकी मधुर आशाओं पर वज्र से पड़े उस तुषारपात द्वारा हुई हानि अथवा क्षति को अंश मात्र भी पूर्ण कर सकती थी? नहीं, कदापि नहीं!

पत्नी का अस्थि-फूल लेकर नेहरू जी प्रयाग आये। बमरौली हवाई अड्डे पर अन्य भारतीय नेतागण उनसे मिले। उसी दिन आनंदभवन से एक बहुत बड़ा जुलूस उठा, जो कटरे से होता हुआ चौक गया, और वहाँ जवाहरलाल पार्क में एक बृहत् सभा हुई जिसमें श्रीमती कमला नेहरू की सेवाओं का स्मरण कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गयी। इसके पश्चात् जुलूस वहाँ से त्रिवेणी-तट पर पहुँचा। नेहरू जी ने वहाँ अपनी सहधर्मिणी के अस्थि-फूलों का विसर्जन किया। उस समय हजारों मनुष्यों के कंठ शोक से अवरुद्ध थे। अपने प्रिय नेता की प्रिय पत्नी के शोक में उनके नेत्रों से अश्रु-वर्षा हो रही थी।

—❀—

लखनऊ तथा फैजपुर कांग्रेस एवं चुनाव

लखनऊ मे अखिल भारतीय कांग्रेस का ४९ वॉ अधिवेशन १२ अप्रैल १९३६ को आरम्भ हुआ। इसके पूर्व कांग्रेस का अधिवेशन अक्टूबर १९३४ मे श्री राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता मे बम्बई मे हो चुका था। कांग्रेस मे समाजवादी तथा वामपक्षी विचारधारा का उदय हो जाने के कारण कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए एक ऐसे पुरुष की आवश्यकता सभी को अनुभव हो रही थी, जो कांग्रेस के भीतर दिन पर दिन जोर पकड़ने वाले समाजवादी दल का विश्वास प्राप्त करने के साथ-साथ महात्मा गान्धी के सिद्धान्तो का सच्चा अनुयायी भी हो, तथा उनके आदर्शों के अनुसार कांग्रेस की बागडोर सम्हाल सके। डा० पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों मे, "गान्धी जी के बाद सबसे ज्यादा प्रभावशाली सदस्य वे ही (नेहरू जी) थे, जो कांग्रेस को अन्दर से आगे बढ़ने की शक्ति भी देते और बाहर से उस पर रोक लगाते।" इसके अतिरिक्त "वे पुराने और नये को जोड़ने वाली एक कड़ी भी थे और इसीलिए लखनऊ मे अध्यक्ष-पद ग्रहण करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति भी थे"। अतः उन्हे ही २८ फरवरी १९३६ को कांग्रेस के दक्षिण एवं वाम पक्षी नेताओं ने सर्वसम्मति से उस साल के लिए अपना अध्यक्ष चुना।

नेहरू जी के निर्वाचन पर उनके विपक्षियों ने उन पर व्यंग्य-बाणो के कटु प्रहार भी किये। श्री सुभाष बोस ने चुटकी लेते हुए कहा था, "पं० नेहरू की स्थिति बड़ी मनो रंजक है। उनके विचार तो आमूल परिवर्तन-कारी हैं, और वे अपने को समाजवादी कहते भी हैं, किन्तु कार्य रूप मे

चे महात्मा गान्धी के पूर्ण अनुयायी हैं। उन्होंने एक स्थान पर और भी कहा था, "महात्मा गाधी ने जवाहरलाल का अध्यक्ष-पद के लिये समर्थन कर समझदारी का काम किया, क्योंकि यहां से गाधी जी और पं० नेहरू का सैद्धान्तिक मेल आरम्भ होता है, और परिणाम स्वरूप नेहरू जी और वामपक्षी दल के बीच पार्थक्य आरम्भ होता है।"

विश्व की बदलती परिस्थितियों के साथ भारतीय नेताओं के भी दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा था। उन आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शक्तियों की, जो योरोप को क्रान्ति के भंवर में फेंक रही थीं, प्रतिक्रिया इस महादेश मे भी होना स्वाभाविक ही था। क्या यह सम्भव था कि असीम एटलान्टिक, गम्भीर प्रशान्त महासागर और दुर्गम हिमालय की पर्वत शिखायें, पश्चिम मे उथल-पुथल मचाने वाली विचार-धाराओं को यहाँ आने से रोक सकती! अलग २ जमाने में दुनिया की प्रगति के बुनियादी मकसद नई २ शक्ल ले कर हर जगह उपस्थित होते है। अपनी आन्तरिक समस्याओं और विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रचंड राष्ट्रीय संघर्ष के फलस्वरूप भारत मे समाजवादी विचार धारा का जोरों से प्रचार होने लगा। यहाँ तक कि लखनऊ-काग्रेस के कई माह पूर्व ही 'काग्रेस समाजवादी दल' की स्थापना हो चुकी थी, जिसका युक्तप्रान्त मे विशेष प्रभाव था। इनका एक व्यवस्थित आर्थिक सिद्धान्त था तथा ये जमीदारी प्रथा का पूर्णत: उन्मूलन करना चाहते थे। काग्रेस की नरम नीति मे इसके सदस्य अपने को विशेष 'फिट' नहीं पा रहे थे। आपसी विरोध और वैमनस्यता की यह चिनगारी कभी कभी फूट पड़ती थी। नेहरू जी इधर काफी अर्से से जेल मे बन्दी जीवन ही व्यतीत कर रहे थे, तथा मुक्ति के पश्चात् सीधे रुग्ण पत्नी को देखने विदेश चले गये थे, अत: काग्रेस के अन्दर होने वाली इस भयंकर प्रतिक्रिया तथा विषम स्थिति का पूर्ण ज्ञान उन्हे न था। जब वे स्वदेश वापस लौटे तथा कार्य-भार ग्रहण किया तब उन्हें काग्रेस की परिवर्तित स्थिति का वास्तविक ज्ञान हुआ। उसके भीतर संघर्ष, कटुता और संदेह का बीजारोपण हो चुका था। नेहरू जी ने इस

पर विशेष ध्यान न दिया, कारण उन्हें अपने ऊपर विश्वास था और वे सोचते थे कि कुछ दिनों के परिश्रम से ही वे स्थिति को अपने मनोनुकूल बना लेंगे।

अतः नेहरू जी ने काफी उत्साह के साथ लखनऊ-कांग्रेस के अध्यक्ष पद से कार्य आरम्भ कर दिया। उन्होंने अधिवेशन में १५ प्रस्ताव पास कराये; जिसमें देश-निर्वासन के लम्बे समय के पश्चात् श्री सुभाष चन्द्र बोस की फिर से गिरफ्तारी पर रोष प्रकट किया गया। नागरिक अधिकारों के अपहरण की निन्दा का भी प्रस्ताव पास किया गया; और प्रवासी भारतीयों तथा अन्य देशों की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं और मजदूर-दल से सम्पर्क बढ़ाने के लिए एक वैदेशिक विभाग खोलने का निश्चय किया गया। एक प्रस्ताव द्वारा आगामी साम्राज्यवादी महायुद्ध में भारत के भाग न लेने की घोषणा की गई, और एक अन्य प्रस्ताव में इटली की फासिस्ट नीति से त्रस्त अबीसीनिया के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए लीग आफ नेशन्स के नपुंसकत्व की निन्दा की गई। एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव द्वारा रियासती प्रजा के लिए जनतंत्रात्मक स्वतन्त्रता के अधिकारों की घोषणा की गई। नये शासन-विधान को ग्रहण न करने का प्रस्ताव सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। कुछ लोगों ने वर्किङ्ग कमेटी के इन प्रस्तावों की तीव्र निन्दा की, परन्तु अंत में मूल प्रस्ताव बहुमत से पास हो गये। प्रस्तावानुसार नया शासन-विधान अस्वीकृत कर दिया गया तथा विधान निर्माणार्थ एक परिषद् की माँग की गई। पार्लियामेन्टरी बोर्ड तोड़कर सब अधिकार कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी को दे दिया गया। कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का निश्चय किया। असेम्बलियों में जाकर प्रतिनिधियों का कार्य वहाँ जन-स्वार्थ की रक्षा के लिए युद्ध करना, तथा ऐसा करते हुए अपनी अंदरूनी ताकत बढ़ाना था। वहाँ पर पद-ग्रहण करने का विवाद-ग्रस्त प्रश्न अ० भा० कांग्रेस कमेटी के निर्णय के लिए स्थगित कर दिया गया। एक प्रस्ताव द्वारा जनता से सम्पर्क बढ़ाने के उपायों पर विचार करने के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद, श्री जयरामदास दौलतराम

और श्री जयप्रकाश नारायण की एक उप-समिति बनाई गई। कांग्रेस में किसान मजदूर-सभाओं के प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव तो न पास हो सका पर एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने किसानों की बहुत सी मॉंगे स्वीकार अवश्य कर लीं।

अधिवेशन के समाप्त होते ही नेहरू जी उसके द्वारा निश्चित कार्य-क्रमों को पूर्ण करने के लिए जुट गये। उन्होंने नागरिक-स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अध्यक्षता में 'सिविल लिबर्टी यूनियन' की स्थापना की। इसमें उन्हे विभिन्न दलों और विचारों के डेढ़ सौ से अधिक नेताओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। डा० राममनोहर लोहिया की देख-रेख में कांग्रेस का एक वैदेशिक विभाग भी खोला गया, जो विभिन्न देशों के स्वतंत्रता-आन्दोलन और जन-आन्दोलनों से पूरा सम्पर्क रखता और विदेशों की विभिन्न संस्थाओं और समाचार पत्रों को भारतीय अवस्था का प्रामाणिक परिचय देने का महत्वपूर्ण कार्य करता था।

अपने इन रचनात्मक कार्यों को करने के पश्चात् नेहरू जी को यह पूर्ण विश्वास था कि वे कांग्रेस के अंदर उपस्थित इन दोनों दलों—दक्षिण पंथी तथा वाम पंथी—का विश्वास तथा सहयोग प्राप्त कर लेंगे, परन्तु उनका यह समझना भ्रमपूर्ण साबित हुआ। कारण उनके कार्यों को उनके सभी सहयोगी—वाम पंथी तथा दक्षिण पंथी—संदेह की दृष्टि से देखते थे। समाजवादी वामपक्षी दल उन्हे गांधीजी के सिद्धांतों से विशेष प्रभावित समझ कर बूर्जुआ करार करता था, जब कि कांग्रेस का नरमदल उन्हे आवश्यकता से अधिक क्रांतिकारी विचारों का कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखता था। ऐसी स्थिति में नेहरू जी के लिए कांग्रेस का अध्यक्ष-पद-ग्रहण करते हुए, तथा अपने सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए कार्य करना असम्भव हो गया। उन्होंने पद-त्याग कर देना ही उचित समझा, और इसे ही ध्यान में रखते हुए उन्होंने गांधीजी को तत्काल एक पत्र में लिखा भी था, "योरोप से लौट आने के पश्चात् मैंने देखा कि मैं कार्य-समिति की इन बैठकों से बहुत ऊब गया हूँ।

इसका असर यह हो रहा है कि मेरी ताकत कम होती जा रही है और हर एक नई घटना के पश्चात् मुझे यह अनुभव होने लगा है कि मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ।"

किन्तु तत्कालीन अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं ने, जो अपने साथ प्रबल झंझावात की तरह युद्ध के काले बादल खींचती जा रही थीं, ऐसे संकट काल में उन्हें भारतीय कांग्रेस से अलग होकर उस पर इस प्रकार का अप्रत्याशित आघात करने से रोका। जहाँ गांधी जी दुनिया के पथ-प्रदर्शन में ही नहीं, वरन् विश्व-सभ्यता के पुनर्निर्माण में भारत के लिए ऊँचे स्थान की बात सोच रहे थे, वहाँ जवाहरलाल की तीव्र इच्छा यह थी कि संसार में अंतर्राष्ट्रीयता की प्रगति को ध्यान में रखते हुए भारत को राष्ट्र-समुदाय में एक उचित स्थान मिले। अतः वे भारत के राष्ट्रीय कार्यक्रम को विश्व की घटनाओं से अपरिचित रह कर तथा बिना उससे सम्पर्क रखे हुए ही संचालित होने देना नहीं चाहते थे। अतः बाध्य हो पद-त्याग का विचार उन्हें छोड़ना पड़ा।

जेनरल फ्रैन्को का स्पेन में विद्रोह तथा अपने स्वार्थों के लिए विश्व की प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा उसे सहायता, अंतर्राष्ट्रीय-शस्त्र-नियंत्रण-परिषदों का दुःखद अंत, चीन, अबीसीनिया, जेकोस्लोवाकिया आदि का बलि के बकरे की तरह मूक क्रन्दन, भावी युद्ध का दिग्दर्शन करा रहा था। विश्व शक्तिशाली राष्ट्रों के स्वार्थों की रंग-भूमि बना हुआ था, जहाँ बिना हिचकिचाहट शान्ति के नाम पर छोटे और असहाय राष्ट्रों को खुलकर दाव पर लगाया जा रहा था। सभी 'शान्ति प्रेमी' महान राष्ट्र भूल चुके थे कि यदि विश्व में शांति और स्वतंत्रता की स्थापना करना है तो न केवल फासिज्म और नाजीवाद का ही अंत करना होगा, अपितु साम्राज्यवाद की भी चिता जलानी होगी। नेहरू जी ने शक्तिशाली राष्ट्रों की अधिकार-लिप्सा में विलीन होते हुए शोषित-शासित छोटे-छोटे-राष्ट्रों के प्रति, अपनी समवेदना प्रकट की। उन्होंने

६ मई को अबीसीनिया-दिवस तथा २७ सितम्बर को फिलस्तीन-दिवस मनाकर उन प्रताड़ित राष्ट्रों के प्रति अपनी सद्भावना प्रकट की।

भारत की आन्तरिक अवस्था तो और भी सोचनीय थी। किसानों और मजदूरों की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी। वे भयंकर गरीबी तथा अन्य कई प्रकार के बोझ से कुचले जा रहे थे। इसके अतिरिक्त विरोधों के पश्चात् भी जबरदस्ती लादे गये नये विधान में यद्यपि संघ शासन मंजूर कर लिया गया था, फिर भी देश की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन न हो पाया था; कारण, यद्यपि सत्ता केन्द्रीय शासन के हाथ से निकल कर प्रांतीय नौकरशाही के हाथ में चली गई थी, किन्तु वहाँ भी विशेषाधिकार के नाम पर हुकूमत गवर्नर तथा अन्य ब्रिटिश पदस्थ कर्मचारियों के ही हाथ में जनता के प्रतिनिधियों से छीन कर रख दी गई थी। आश्वासन की मृग-मरीचिका के पश्चात् भी उत्तरदायी शासन अब भी स्थापित न हो पाया था।

यह भारत का दुर्भाग्य रहा है कि जब कभी प्रगतिशील शक्तियों ने किसी माँग को पेश किया तो सबसे पहले उसका विरोध किसी मृतप्राय संस्था के हिन्दुस्तानी नेता द्वारा हुआ। जब कि एक स्वर से जनता के सच्चे प्रतिनिधि नेता इस नये विधान को राष्ट्र के लिये अहितकर बतलाकर उसका विरोध करने के लिए तत्पर थे, कुछ प्रतिक्रियावादी नेता तथा ब्रिटिश नौकरशाही के सदस्य इसे राष्ट्रीय आत्मा तथा जनता के विचारों का सच्चा प्रतिनिधित्व करनेवाला विधान मानकर, अपने अंग्रेज प्रभुओं को उनकी कृपा और राष्ट्र को ऐसे उपहार के लिए धन्यवाद और बधाई देने से न थकते थे। परन्तु इंगलैंड में भी कुछ ऐसे निष्पक्ष अंग्रेज थे, जो हर एक वस्तु को राष्ट्र विशेष की परिधि में न बाँधकर मानव मात्र की उपयोगिता का तराजू पर तौलते थे। राजनीति शास्त्र के दिग्गज अंग्रेज विद्वान प्रो० कीथ पर अफसरों का असर नहीं था और वे अल्प मतवाले मंत्री-मंडल के निन्दक थे। प्रस्तुत विधान का भारतीय

नेताओ द्वारा विरोध देख कर उन्होने गाधी जी और उनके साथियों को इस बात पर बधाई देते हुए प्रसन्नता प्रकट की थी कि उन्होंने उत्तरदायी सरकार के सिद्धान्तो का वास्तविक रूप मे अध्ययन किया है। उनके अनुसार "विचाराधीन विधान दोष पूर्ण था, क्योकि गवर्नर को विशेषाधिकार देकर सारे उत्तरदायित्व को समाप्त कर दिया गया था।"

कांग्रेस वैधानिक ढंग से लडकर ही इस इस विधान को परिवर्तित कराना चाहती थी, अतः उसने यह निश्चित किया कि अगले चुनाव मे वह भाग लेगी। अगस्त मे बंबई मे एक विशेष अधिवेशन भी हुआ, जिसमे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने चुनाव का घोषणा-पत्र पास किया।

लखनऊ-अधिवेशन के पश्चात् दिसम्बर १९३६ मे कांग्रेस का अगला अधिवेशन फैजपुर मे हुआ। अभी तक प्रायः कांग्रेस का अधिवेशन देश के प्रमुख शहरो मे ही हुआ करता था। परन्तु सन् १९३०-३२ के सत्याग्रह के पश्चात् गाधी जी ने ऐसा अनुभव किया कि असली हिन्दुस्तान तीन हजार शहरों और कस्बों मे नही बल्कि साढ़े सात लाख गाँवों में बसता है। अतः गाँवों और शहरों का सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से उन्होने अपना अधिवेशन गाँवो मे करने के लिए कांग्रेस को प्रोत्साहित किया।

नेहरू जी की अनिच्छा होते हुए भी बहुमत से फैजपुर कांग्रेस के भी अध्यक्ष वे ही बनाये गये। वास्तव मे देश विदेशों की ऐसी संकट पूर्ण एवं उलझी हुई परिस्थिति में पं० नेहरू से अधिक उपयुक्त, 'समय का व्यक्ति' दूसरा कोई नहीं था। गाधी जी ने स्वयं फैजपुर-कांग्रेस मे मंजूर किया था, "जवाहरलाल जी ही इस समय के उपयुक्त व्यक्ति हैं।" देश को उस समय अत्यन्त तेजस्वी, शक्तिशाली और साहस से भरे हुए नेतृत्व की आवश्यकता थी और उसने जवाहरलाल जी के रूप में ये सभी चीजे मूर्तिमान पायी।

सभापति-पद के लिये अपना निर्वाचन होने के पूर्व नेहरू जी ने अपनी विचारधारा को देश के समक्ष स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा। अतः उन्होंने एक वक्तव्य द्वारा अपने सहयोगियों तथा राष्ट्र के समक्ष यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया कि वह समाजवादी कार्यक्रम और सिद्धांत को विशेष महत्व देते है। इस स्पष्टीकरण के पश्चात् भी गाधी जी ने नेहरू जी का नाम उक्त पद के लिए उपस्थित किया, तथा गाधी जी की इच्छानुसार सरदार पटेल ने अध्यक्ष-पद की उम्मेदवारी से अपना नाम वापस लेकर नेहरू जी के नाम का समर्थन किया। एक वक्तव्य मे उन्होंने स्पष्टतः कहा कि यद्यपि मै नेहरू जी की विचारधारा से पूर्णतः सहमत नही हूं, फिर भी हम लोगों के मूल उद्देश्य—स्वतंत्रता-प्राप्ति—में कोई अंतर नही है। इसके अतिरिक्त "देश मे जो विभिन्न शक्तियाँ काम कर रही हैं, उनका ठीक दिशा मे नियंत्रण और निदेशन करने, तथा साथ ही साथ राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के लिए जवाहरलाल सर्वोत्तम व्यक्ति हैं।"

फजपुर का अधिवेशन हर ढंग से अपने आप मे सफल कहा जा सकता है। कांग्रेस के कार्यक्रमों एवं निश्चय के पीछे गाधी जी का गहन अध्यवसाय एवं संरक्षण छिपा होता था। वास्तव मे कांग्रेस के पीछे गाधी जी की शक्ति थी, और वे चाहे आगे रहे या पीछे उनकी भारतीय राजनीति के क्षेत्र मे और अपने देश की जनता के बीच बहुत बडी हस्ती थी।

फैजपुर अधिवेशन में अपने राष्ट्रपति-पद से दिये गये भाषण मे श्री जवाहरलाल जी ने खान अब्दुल गफ्फार खाँ और श्री एम० एन० राय का, जो बडी लम्बी और सख्त कैद से हाल मे ही छूटे थे, स्वागत करते हुए योरोप मे फासिस्टवाद के विजय की चर्चा की तथा उस पर प्रकाश डाला। साथ ही इस ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित किया कि अगर रोक-थाम न की गई तो महायुद्ध अनिवार्य हो जायेगा। अबिसीनिया पर बलात्कार एवं स्पेन की दुर्दशा इसके प्रमाण थे।

ब्रिटेन की नीति भी निर्दोष नहीं थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा कि "काग्रेस का ध्येय अब भी लोकतंत्र तथा उसकी प्राप्ति के लिये संघर्ष करना है। वह साम्राज्यवाद विरोधी है तथा मौजूदा सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचे के परिवर्तन की कोशिश मे है। मेरी ऐसी आशा है कि इन घटनाओं के प्रवाह मे समाजवाद स्वयं आ जायेगा, क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि देश की आर्थिक बीमारी का यही एक मात्र इलाज है।" इसके अतिरिक्त उन्होंने आनेवाले चुनाव तथा प्रस्तुत विधान की बुराइयों पर प्रकाश डालते हुए जनता के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला। इसके अतिरिक्त एक प्रस्ताव द्वारा उन्होंने जनता से यह अनुरोध किया कि युद्धारम्भ होने पर वे ब्रिटिश शासकों की धन-जन, किसी प्रकार से भी सहायता न करें। कैदियों के प्रति सरकार की नीति, तथा सीमा-प्रान्त मे किये गये कार्यों की निन्दा भी की गई थी। नये विधान के विरोध में कांग्रेस ने जनता से १ अप्रैल १९३७ को आम हड़ताल करने की अपील की। नेहरू जी तथा काग्रेस के अनुसार यह विधान भारत की स्वतंत्रता के युद्ध के साथ विश्वासघात था, क्योंकि उसके लादे जाने से भारतीय जनता के शोषण के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पकड़ और भी ज्यादा मजबूत हो जाती। हिन्दुस्तान की जनता अपने लिए स्वयं ही विधान निर्मित करना चाहती थी।

चुनाव के उम्मेदवार न होते हुए भी पं० नेहरू ने अपने सहयोगी उम्मेदवारों के प्रचार के लिए सम्पूर्ण देश का दौरा किया। वे दिन-दिन भर लाखों व्यक्तियों की भीड़ में अपनी ओर से काग्रेस का संदेश पहुँचाते, तथा वोटरों से काग्रेस के उम्मीदवार को ही मत देने के लिए आग्रह करते। चार महीने के इस कठिन परिश्रम मे वे देश की करोड़ों जनता के सम्पर्क में आये। इस यात्रा से उन्हें भारत के वास्तविक स्वरूप का पूर्ण ज्ञान हुआ। उन्हीं के शब्दों मे, "मैंने अपने देश के हजारों रूप देखे, लेकिन सब में भारतीयता की छाप थी। मैं उन लाखों स्नेह-भरी आँखों को देखता जो मुझे निहारा करती थीं, और यह जानने की

कोशिश करता था कि उनके पीछे क्या छिपा है ? जितना ही ज्यादा मैं हिन्दुस्तान को अंदर से देखता, उतना ही ज्यादा मुझको लगता कि उसके असीम आकर्षण और विविध रूपों का मुझे कितना कम ज्ञान है। मुझे लगता कि मुझे देखकर भारत माता कभी मुस्करा देती हैं, कभी मेरा उपहास करती हैं, और कभी मेरे लिए अबोध हो जाती हैं।"

इस चुनाव मे कांग्रेस को आशातीत सफलता प्राप्त हुई तथा उसके अवसरवादी विरोधियों ने मुँह की खाई। धारासभाओं के भीतर जमकर काम करने, और असेम्बली के मोर्चे पर राष्ट्रीय युद्ध के इस पक्ष को ले जाने का श्रीगणेश पहली अप्रैल की शान्तिपूर्ण हड़ताल से आरम्भ हुआ। मंत्री पदग्रहण करने से पहले दिल्ली मे एक अधिवेशन होना निश्चित हुआ—दिल्ली, जहाँ सात नष्ट साम्राज्यों की दफनाई स्मृति कब्र से कराह रही थी, और जहाँ नये सिरे से उतने ही क्रान्तिकारी परिवर्तनों की फिर से आशा थी जितने कि विगत इतिहास ने खो चुके थे। मंत्री-पद-ग्रहण के सवाल पर महासमिति ने इस बात का अधिकार व अनुमति दी थी कि जिन प्रांतों मे कांग्रेस-बहुमत है, वहाँ यदि उस प्रांत की धारा-सभा-की कांग्रेस-पार्टी को इस बात का विश्वास हो, और यदि वह इस बात को खुले आम घोषित कर सके कि गवर्नर हस्तक्षेप के अपने अधिकारों का प्रयोग नहीं करेगा, या वैधानिक कार्यवाहियों ने मंत्रियों के निर्णय को अमान्य नहीं करेगा, तो वहाँ कांग्रेस पद-ग्रहण कर सकती है। उस सम्मेलन में कांग्रेस के सभी सदस्यों ने देश-सेवा, और धारासभा के भीतर व बाहर भारत की आजादी के लिए वैधानिक युद्ध करने की शपथ ग्रहण की।

मन्त्री-पद ग्रहण करने के पूर्व गवर्नर से यह आश्वासन माँगा गया कि वह विशेषाधिकारों के बल पर सदस्यों के अधिकारों मे हस्तक्षेप नहीं करेंगे, और मंत्रियों के वैधानिक कार्य को अमान्य नहीं करेंगे। देश के कुछ नेताओं, विशेषतः लिबरल नेता श्री सप्रू ने कांग्रेस की इस माँग को

सरासर अवैधानिक बतलाया। उनके अनुसार जब विधान द्वारा ही गवर्नर को 'विशेषाधिकार' दे दिये गये हैं तब गवर्नर उनका खंडन कर कांग्रेस के इस प्रस्ताव को मान ही कैसे सकता था। किंतु इंगलैंड के विधान-विशारद प्रो० बेरिडल कीथ ने, तथा भारत के दो धुरंधर कानून पंडित भूतपूर्व एडवोकेट जेनरल श्री तारापोरा वाला तथा डा० बहादुर जी ने, उनकी बातों का खंडन करते हुए कांग्रेस की माँग का समर्थन किया। कांग्रेस की माँग का मतलब था कि गवर्नर, आस्ट्रेलियन गवर्नर की तरह काम करे। उसको यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वह जब चाहे अपनी इच्छा से मंत्रियों को पदच्युत कर दे। उनके कथनानुसार मंत्रियों का वेतन कांग्रेस द्वारा तै होना चाहिए। गवर्नर मंत्रियो की काउन्सिल में सभापति न बन सके। वह सुरक्षा के नाम पर आर्डिनेन्स न लागू कर सके तथा एडवोकेट जेनरल की नियुक्ति मे उसका हाथ न हो। वह पुलिस के नियम भी न बनाये। अंत में काफी वाद-विवाद के पश्चात् वायसराय का आश्वासन प्राप्त कर लेने के पश्चात् कांग्रेस ने मंत्रि-मंडल में पद-ग्रहण किया। इस प्रकार कांग्रेस ने देश में राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में ही सात प्रांतों मे अपना मंत्रि-मंडल स्थापित किया।

उस वर्ष पं० नेहरू ने राष्ट्रपति-पद से अत्यन्त उत्साह तथा परिश्रम से कार्य किया। जंजीबार-दिवस २१ जून, चीन-दिवस २६ सितम्बर, नव विधान-विरोधी दिवस १ अप्रैल, झंडमंड-दिवस, स्वाधीनता-दिवस २६ जनवरी १६३७, तथा सीमाप्रांत दिवस २२ मई १६३७ को मनाये गये। इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न समस्याओं पर राष्ट्रपति के वक्तव्य भी प्रकाशित होते रहे। कांग्रेस के वैदेशिक और आर्थिक विभाग भी सुचारु रूप से संगठित हो जाने के कारण उनकी अध्यक्षता मे उत्साह और लगन के साथ कार्य करते रहे।

युद्ध-संकट और भारत

१९३८ के पतझड में युद्ध के बादल घिरने लगे थे। पहले वे मनुष्य के हाथ से अधिक बड़े न थे, किन्तु शीघ्र ही आसमान में अँधेरा छा गया और दुर्दिन की काली मेघमालायें समस्त संसार को डसने के लिए नागिन सी झुक पड़ीं। ब्रिटेन और जर्मनी में उन दिनों जो कुछ हो रहा था उसकी सूचना कांग्रेस कार्य समिति को प्रति सप्ताह नेहरू जी से मिलती रहती थी, जो २ जून को यूरोपीय परिस्थिति के अध्ययन के लिए भारत से रवाना हो चुके थे और मलाया में भारतीय व्यापारियों तथा सिकन्दरिया में नहासपाशा व दूसरे वफद नेताओं से मिलने के बाद सीधे बर्सिलोन चले गये थे। वहाँ उन्होंने निर्दयतापूर्वक होती हुई बम-वर्षा तथा उससे होने वाले विनाश को आँखों से देखा। इसके उपरान्त वे पेरिस गये—जन क्रांति का स्थल पेरिस, सारी दुनिया की आजादी का प्रतीक—वहाँ उन्होंने रेडियो पर भाषण करते हुए भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन के आदर्शों पर प्रकाश डाला तथा फ्रांसीसियों से सहानुभूति की माँग की। स्पेन के युद्ध की दूसरी सालगिरह के दिन पण्डित जी ने ट्राफल्गार स्क्वेयर में नेलसन की मूर्ति के नीचे, खद्दर की पोशाक में, फासिज्म के विरोध में संघर्ष करते हुए स्पेन के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा था, "हम आपका समर्थन करते हैं तथा आपसे शिक्षा ग्रहण करते हैं। हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद से किसी भी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं हैं, जो हमारे ऊपर विशुद्ध प्रभुत्व का प्रतीक है और भारत में अपने साम्राज्यवाद का अन्त करने के लिए तैयार नहीं है।"

युद्ध आरम्भ होने के पश्चात् अपने भावी कार्यक्रम पर विचार करने के लिए काग्रेस कार्यसमिति की बैठक सितम्बर १९३८ को दिल्ली में हुई। गाधी जी ने इस समय कार्यसमिति के समक्ष स्पष्ट शब्दों में कहा था, यदि भारत की राजनीतिक प्रगति के लिए काग्रेस इस संकट पूर्ण परिस्थिति से लाभ उठाना चाहती है तो वे उसका साथ न देंगे, और उसे आदोलन के नेतृत्व के लिए दूसरा नेता चुन लेना आवश्यक होगा। उनका यह सिद्धान्त था कि दुश्मन पर ऐसे समय में कदापि चोट न करनी चाहिए जब कि वह स्वय सकटापन्न अवस्था में हो। वे इसे अहिंसात्मक नीति के विरुद्ध समझते थे।

कार्यसमिति की बैठक के एक साल पश्चात् विश्वव्यापी द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। जिस समय महायुद्ध आरम्भ हुआ, पं० नेहरू चीन में थे। काग्रेस अध्यक्ष ने युद्धारम्भ होते ही तत्काल लौट आने के लिए उन्हे तार द्वारा सूचित किया। जिस समय नेहरू जी भारत वापस लौटे इस समय युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियो, तथा काग्रेस के अगले कदम पर विचार करने के लिए काग्रेस-कार्यसमिति की बैठकें जारी थी। देश के लिए एक सम्मिलित कार्यक्रम निश्चित करने के लिए इस बैठक मे श्री जिन्ना को भी निमंत्रित किया गया, परन्तु उन्होंने आने मे अपनी असमर्थता प्रकट की। इधर वायसराय ने भारत को बिना उसके नेताओं से सलाह लिए जबर्दस्ती युद्ध में शामिल कर लिया था, तथा सुव्यवस्था के नाम पर मंत्री-मंडल की राय लिए बिना कई आर्डिनेन्स जारी कर दिये थे। ब्रिटिश-पार्लियामेन्ट ने भी भारत में अपनी स्थिति विशेष सुरक्षित रखने के लिए सन् १९३५ के विधान में मनमाना संशोधन कर दिया था। इसने प्रान्तों की सरकारों के अधिकार और कार्यक्षेत्रो को सीमित कर दिया था। देश के किसी भी दल के नेताओं से इस विषय मे परामर्श लेना उचित न समझा गया था, तथा काग्रेस की हमेशा से दुहराई जाने वाली इच्छाओं और प्रस्तुत की गयी सूचनाओं की पूर्ण अवहेलना की गई थी। अन्त में वाध्य हो काग्रेस-कार्यसमिति ने १४ दिसम्बर १९३९ को लम्बी

वहस के पश्चात् महायुद्ध के सिलसिले मे एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित कराया, जिसमे वायसराय तथा वृटिश-पार्लियामेट द्वारा भारत के प्रति अविश्वास कर उठाये गये कदमों की निन्दा की गई थी, और यह शिफारिस की गई थी कि "काग्रेस कार्यसमिति को इन घटनाओं को बड़े गम्भीर रूप में लेना चाहिए, तथा अपने मत और कार्यक्रम को तत्काल निश्चित करना चाहिये।"

कार्यसमिति के फैसले का स्पष्टीकरण करते हुए जवाहरलाल जी ने वतलाया कि यद्यपि भारत इस संकट-काल मे वृटिश सरकार को सहयोग देने के लिए तैयार था परन्तु अब जवर्दस्ती मढ़े हुए इस फैसले को मानने के लिए वह वाध्य नही है। यदि किसी ऊँचे आदर्श को लेकर कोई सहयोग की मॉग करता हे तो वह जवर्दस्ती या दवाव से कदापि नहीं मिल सकता, और न काग्रेस-कार्यसमिति ही इस वात को, कि हिन्दुस्तानी उन हुक्मों को पावन्दी करने को वाध्य हे जो विदेशी शक्ति द्वारा दिये गये हैं, मानने के लिए तैयार है। नेहरू जी के अनुसार भारत किसी ऐसी लडाई मे कदापि शामिल होना न चाहेगा, जिसके लिए कहा तो यह जाये कि यह लोकतंत्र की आजादी के लिए है लेकिन वह आजादी उसे खुद हासिल न हो, वल्कि जो कुछ थोडी सी आजादी उसे मिली भी हो वह भी सुरक्षा के नाम पर इस प्रकार छीन ली जाये।

नेहरू जी की राय में काग्रेस-कार्यसमिति ने राष्ट्रीय होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया था। जिस संकट से यूरोप घिरा था वह सिर्फ यूरोप का ही नहीं, सारी दुनिया का संकट था। इस संकट से दुनिया का राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक ढॉचा वदल जाने वाला था। इस संकट के आविर्भाव की वुनियाद इस पर थी कि एक देश का दूसरे देश के ऊपर से आधिपत्य और शोषण समाप्त हो जाये, तथा आर्थिक सम्वन्धों को एक नये सिरे से ऐसे टरें पर लाया जाये जिसमे सवके फायदे और सवके साथ इन्साफ का ध्यान हो। उन्होंने वृटेन को चेता-

वर्णन देते हुए कहा था कि आजादी का बँटवारा नहीं हो सकता। दुनिया के किसी भी हिस्से में साम्राज्यवादी कब्जा बनाने की कोशिश का अवश्यम्भावी फल ऐसा ही भयंकर विध्वंसक युद्ध होता है।

अस्तु, कार्य समिति ने ब्रिटिश सरकार को आमंत्रित किया कि वह "बिल्कुल साफ शब्दों में यह स्पष्ट करे कि लोकतंत्र और साम्राज्यवाद, तथा विचाराधीन दुनिया के नये नक्शे के बारे में उसकी इस लड़ाई के मकसद क्या हैं; और ये युद्धोद्देश्य भारत में किस प्रकार कार्यरूप में परिणत किये जायेंगे? क्या उनमें साम्राज्यवाद को मिटाने और भारत के साथ एक स्वतंत्र राष्ट्र की तरह व्यवहार करने की बात सन्नद्ध है—उस आजाद भारत के साथ जिसकी नीति जनता की इच्छाओं से तय होगी?"

नेहरू जी तथा कांग्रेस-कार्यकारिणी ने ब्रिटिश सरकार से भारत को आजादी देने के लिए अपील की, तथा इस बात का आश्वासन दिया कि पूर्ण स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् भारत धन-जन से इस युद्ध में मित्र-राष्ट्रों की पूर्ण सहायता करेगा। नेहरू जी को उम्मीद थी कि घटनाओं की मार से त्रस्त ब्रिटिश नेता अपने संकुचित विचारों के गड्ढों से बाहर आकर, दूर तक की चीजों को ध्यान में रखते हुए, कांग्रेस के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेंगे।

पं० नेहरू तथा कांग्रेस के प्रयत्न के पश्चात् भी हुआ वही जिसके होने का भय था। क्योंकि सरकार तो अपनी इच्छानुसार ही कार्य करना चाहती थी, "तथा ब्रिटिश-राजमुकुट के सबसे बहुमूल्य हीरे भारत को खो देने का उसका इरादा कदापि न था।" 'विश्व के लोकतंत्रों की रक्षा' आदि का नारा तो अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए एक 'शब्द-जाल मात्र था। वे भारत के साथ मित्रवत् व्यवहार पसन्द न कर जोर और जुल्म से अपनी इच्छा उसके द्वारा मनवाना चाहते थे। 'भारत उनके साथ युद्ध में सहयोग करे' से उनका तात्पर्य यह था कि भारत उनकी इच्छानुसार संचालित हो, तथा अपने छुटकारे के लिए जबान तक न हिलाये। देश के राष्ट्रीय नेता अपने चरम लक्ष्य, स्वतंत्रता से मुँह मोड़ कर इसे कैसे

बरदाश्त कर सकते थे ? फलस्वरूप कांग्रेस ने विभिन्न प्रान्तों में मंत्रिमण्डल से स्तीफा दे दिया। धारासभायें तथा संसद स्थगित हो गयीं एवं कांग्रेस ने नये चुनाव की माँग की। परन्तु सरकार यह पूर्णतः जानती थी कि नये चुनाव में भी वे ही व्यक्ति फिर आवेंगे तथा संवैधानिक संघर्ष अनिवार्य होगा; अतः उसने मन्त्रिपरिषद् को अपने विशेषाधिकारों से स्थगित रहने दिया तथा नये चुनाव की आज्ञा न दी। प्रान्तीय गवर्नरों ने पूर्ण अधिकार अपने हाथों में ले लिए और अब वे अपने प्रान्तों के पूर्ण रूप से निरंकुश शासक हो गये। कांग्रेस इस गतिरोध को कैसे बरदाश्त कर सकती थी। नेहरू जी के शब्दों में, "कांग्रेस जैसी शक्तिशाली क्रान्तिकारी संस्था ....चुप होकर एक व्यक्ति (वायसराय) के निरंकुश राज्य को बरदाश्त नहीं कर सकती थी। जो कुछ हो रहा था उसके लिए वह एक दर्शक भी नहीं हो सकती थी, बल्कि उस समय तो और भी नहीं जब वह सब उसी के खिलाफ था।" ब्रिटिश सरकार ने अब तक कांग्रेस के उक्त आग्रह पर भी अपना इरादा जाहिर न किया था।

परिस्थिति विशेष गम्भीर हो जाने के पश्चात्, तथा सरकार की ओर से उसके इरादों का कुछ भी स्पष्टीकरण न होने के कारण, कांग्रेस कार्यसमिति ने इसके लिए एक युद्ध समिति का निर्माण किया जिसके अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नेहरू बनाये गये। इसका कार्य यह था कि परिस्थितियों को देखकर वह देश की समस्त कांग्रेस कमेटियों को आदेश जारी करे कि उन्हें मौजूदा स्थिति का सामना करने के लिये क्या कार्य करना है। इसके पश्चात् ही कार्यसमिति ने एक घोषणा-पत्र भी प्रकाशित कराया, जिसमें ब्रिटिश सरकार द्वारा भविष्य में कार्य में लाई जाने वाली नीति का पूर्ण स्पष्टीकरण न करने से रोष प्रकट किया गया था। तथा भारत की स्वतंत्रता के युद्ध के विषय में अपने इरादे और अन्तिम फैसले घोषित कर देने की माँग की गई थी। सरकार ने ८ अगस्त १९४० को इस विषय पर अपनी घोषणा प्रकाशित की जिसमें एक बार फिर कांग्रेस को ठुकराने का प्रयत्न किया गया था।

बृटिश सरकार ने स्थिति तथा अपना विचार साफ तौर पर व्यक्त नहीं किया था, फलतः विवश हो कांग्रेस को बृटिश सरकार से इस विषम परिस्थिति मे भी अपना सम्बन्ध तोड़ना पड़ा, और उनके असहयोग का पहला कदम था प्रान्तों के मंत्री-मंडल तथा धारासभाओं से कांग्रेस का पद-त्याग। रामगढ़-कांग्रेस (१९४०) मे मौलाना आजाद के सभापतित्व मे कांग्रेस को मजबूरन तै करना पड़ा कि अब सिर्फ सविनय-अवज्ञा के अतिरिक्त कोई रास्ता कांग्रेस के पास शेष नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त आतरिक संकट इस तरह घनीभूत हो उठा था कि उसका टालना अब असम्भव हो गया था, क्योंकि युद्ध के निमित्त शासकों ने भारत-रक्षा-कानून जनता पर लाद दिया था जो उनकी सामान्य स्वतंत्रता तथा अधिकार को भी कुचलता हुआ देशव्यापी हो लोगो को अपनी लपेट में जकड़ रहा था। इङ्गलैंड को संकट मे देख कांग्रेस म० गाधी जी की नीति के अनुसार इंगलैंड से सघर्ष नही करना चाहती थी अतः उसने सरकार से समझौते की अंत तक पूर्ण कोशिश की थी। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने एक प्रस्ताव द्वारा बृटेन से हिन्दुस्तान को स्वतंत्रता देने की मॉग की, तथा केन्द्र में वायसराय की अध्यक्षता मे तत्काल एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार बना देने के लिये कहा जो मौजूदा केन्द्रीय धारासभा के प्रति उत्तरदायी हो उसमे यह आश्वासन दिया गया था कि यदि सरकार इस प्रस्ताव को मंजूर कर ले तो भारत विश्व युद्ध मे योग देने के लिए तैयार है। इस लाभप्रद योजना से कांग्रेस यह चाहती थी कि शासन मे एक नई भावना का जन्म हो, एक नई शक्ति का उदय हो और लड़ाई की तैयारियों मे तथा राष्ट्र के सामने जो गम्भीर समस्याये हैं उन्हे हल करने मे जनता का सहयोग हो। यद्यपि इस सीमित सरकार से देश को और कोई विशेष लाभ होने की उम्मीद न थी। कांग्रेस में बहुत विरोध के पश्चात् इस प्रस्ताव ने कार्य-समिति की मान्यता प्राप्त की, कारण गाधी जी किसी भी हालत मे इस संकट-पूर्ण नाजुक परिस्थिति के अवसर पर अपने शत्रु बृटिश साम्राज्यवादियो को तंग न करना चाहते थे। यदि कांग्रेस ऐसा करती तो वे उससे अलग

हो जाने के लिए तैयार थे। परिस्थितियों के प्रवाह में बहती कांग्रेस को उस समय उनसे भी अलग होना मंजूर था। परन्तु घटना-चक्र ने ऐसा न होने दिया और इस विषम परिस्थिति में गांधी जी कांग्रेस को छोड़ कर अलग न हो सके।

सरकार ने कांग्रेस की इन माँगों और सुझावों को बंदर-घुड़की समझ कुछ भी ध्यान न दिया अतः समझौता करने का प्रयत्न निष्फल हुआ। तत्कालीन अदूरदर्शी वायसराय लिनलिथगो ने विषम परिस्थिति पर बिल्कुल ध्यान न देते हुए उसे अमान्य कर दिया। नेहरू जी के शब्दों में, "लार्ड लिनलिथगो का शरीर बड़ा था परन्तु दिमाग शून्य था। उनका मस्तिष्क चट्टान की तरह ठोस था और उसी की तरह जड़ भी था। उनमें पुराने ढंग के बृटिश रईसों की तरह ही गुण और अवगुण थे।"

भारत की परतंत्रता के जबर्दस्त समर्थक अप्रगतिवादी प्रधानमंत्री मि० चर्चिल हिन्दुस्तान को बृटिश साम्राज्य से निकलता नहीं देख सकते थे। उनके शब्दों में "बृटिश राष्ट्र का भारत की आजादी और तरक्की पर से अपना नियंत्रण उठा लेने का विचार कदापि नहीं है, बादशाह के ताज के सबसे ज्यादा कीमती और सबसे ज्यादा चमकीले उस हीरे को खो देने का हमारा इरादा कतई नहीं है। वह अकेला ही और सब उपनिवेशों और अधिकृत प्रदेशों के मुकाबले बृटिश शासन की ताकत और शान कायम रखता है।" उन्होंने दिसम्बर सन् १६३१ में कहा था कि "भारत में अपने साम्राज्य को छोड़ देने के पश्चात्, इंगलैण्ड की अपार शक्ति क्षीण हो जायेगी।" इससे ज्ञात होता है कि चर्चिल की दृष्टि में भारत ही बृटिश साम्राज्यवाद का सबसे बड़ा क्षेत्र था तथा हिन्दुस्तान पर अधिकार और शोषण ने ही इंगलैंड को अतुलनीय ऐश्वर्य और शक्ति दे रखा था। वे उस इंगलैंड की कल्पना ही नहीं कर सकते थे जिसमें वह भारत की शासन सत्ता से वंचित हो गया हो।

नेहरू जी के अनुसार मि० चर्चिल में "हिम्मत और नेतागिरी की अनेक खूबियाँ होने के पश्चात् भी वे उन्नीसवीं शती के अनुदार साम्राज्य-वादी तथा प्रगति विरोधी, इंगलैंड के एक नागरिक थे। ऐसा मालूम होता था कि नई दुनिया, उसकी जटिल समस्यायें और उसकी ताकत को समझ सकने में वे असमर्थ थे, तथा उससे भी कम उस भविष्य को समझ सकते थे जो अब बनने की स्थिति में था।"

नेहरू जी ने सरकार की स्पष्ट नीति परख लेने के पश्चात् "अलग अलग रास्ते" शीर्षक एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने बतलाया कि जब तक भारत स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर लेता, उसकी सर्वांगीण उन्नति कोरी कल्पना ही होगी। उसे साम्राज्यवादी बृटिश सरकार से अपने लाभ की विशेष आशा न रखनी चाहिए।

अंत में कांग्रेस के सभी प्रयत्न विफल हो चुके थे, अतः वह सत्याग्रह के लिए कटिबद्ध हो गई। १७ अगस्त को सत्याग्रह की रणभेरी बज उठी। उसके पहले सेनानी विनोबा जी थे। उनकी गिरफ्तारी के पश्चात् सर्वसम्मति से नेहरू जी को दूसरा सत्याग्रही सेनानी बनाया गया। वे भी विद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में गिरफ्तार कर लिए गये तथा सरकार ने उन्हें ४ साल के कठिन कारावास का दंड दिया। यह उनकी नवीं बार की परन्तु अंतिम और सबसे लम्बी कैद थी। यहीं कैदी-जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने अपनी महत्व पूर्ण पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इंडिया' लिखी थी। नेहरू जी की गिरफ्तारी के पश्चात् सत्याग्रह आन्दोलन बड़ी तीव्रता से बढ़ने लगा। सरकार पं० नेहरू को अधिक दिनों तक जेल में न रख सकी। अतः अन्य नेताओं की भाँति ४ दिसम्बर १९४१ को उन्हें भी रिहा कर दिया गया।

———

सन् बयालीस

भारत मे विषम विरोधी परिस्थिति तथा सामयिक अन्तर्राष्ट्रीय संकट से चिन्तित हो, अगस्त १९४० की घोषणा के लगभग दो वर्ष पश्चात् वृटिश सरकार ने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को उचित और अन्तिम हल के प्रस्तावो को लेकर भारत भेजा। सर क्रिप्स ने भारत मे आकर २९ मार्च सन् १९४२ को अपनी योजना सम्बन्धी वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसे नेहरू आदि नेताओ ने विल्कुल पसन्द नहीं किया। गाधी जी ने भी उस योजना को "भविष्य मे भुनाने की तारीख वाला चेक" कहकर अस्वीकार कर दिया। कारण क्रिप्स की योजना के अनुसार युद्ध के पश्चात् भी भारत को सिर्फ एक डोमीनियन बनाने का आश्वासन दिया गया था न कि पूर्ण स्वतन्त्रता का। उनके कथनानुसार वास्तविक अधिकार और अन्तिम नियन्त्रण-शक्ति वृटिश सरकार के ही हाथ मे रह जानेवाली थी। क्रिप्स महोदय भारत के सभी दलो के प्रमुख नेताओं से मिले। रूस मे सफलता प्राप्त करने के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे उनकी काफी ख्याति हो चुकी थी और भारत के सम्बन्ध मे भी वृटिश सरकार को उनसे बहुत आशा थी। किन्तु उसकी आशा पर तुषारपात हुआ जब कि भारत की सभी प्रमुख राजनीतिक सस्थाओं ने उनकी योजना को एक स्वर से अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप मि० क्रिप्स को असफल हो लौट जाना पड़ा। सरकार ने क्रिप्स-मिशन की असफलता का सारा दोष काग्रेस पर डाल दिया जिसका तत्कालीन पत्रों ने तर्कपूर्ण विरोध किया।

क्रिप्स के चले जाने के पश्चात् महात्मा गाधी भारतीय राजनीति से बन्धित लेखमाला 'हरिजन' मे प्रकाशित करते रहे, जिनमे उन्होंने

कांग्रेस का मत संसार के समक्ष रखा और उसके पक्ष का समर्थन किया। इन्हीं लेखों का साराश आगे चल कर अगस्त में 'भारत छोड़ो' विचार तथा प्रस्ताव के रूप में प्रकट हुआ। अंग्रेजों की नीति से गाँधी जी को क्रमशः यह स्पष्ट हो गया था कि भारतीय समस्याओं के जटिल होने का मुख्य कारण देश में अंग्रेजों का अस्तित्व है, अतः उन्होंने कहा था, "भारत तथा बृटेन का हित इसी में है कि समय रहते अंग्रेज अनुशासित ढंग से यहाँ से हट जायें।" मौलाना आजाद ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये थे। उनके अनुसार "सरकार की ओर देखना और उससे समझौते की आशा करना केवल समय को नष्ट करना है।" गाधी जी का 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव जुलाई में कांग्रेस के वर्धा-अधिवेशन द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया, कारण देश की जापानी आक्रमण से रक्षा के लिए यह आवश्यक था। कांग्रेस ने यह भी घोषणा कर दी थी कि यदि इस अपील को अमान्य किया गया तो कांग्रेस देश-रक्षा के लिए देशव्यापी अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ कर देगी, और इस प्रकार के व्यापक संघर्ष का नेतृत्व गाधी जी ही करेंगे। ८ अगस्त सन् १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भी बम्बई के अधिवेशन में इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया।

गाधी जी ने अपने वक्तव्य को इस प्रकार समाप्त किया "प्रत्येक व्यक्ति को अहिंसात्मक होकर, हड़ताल, कामबन्दी, तथा अन्य अहिंसात्मक साधनों द्वारा अधिक से अधिक दूरी तक जाने की स्वतन्त्रता है। सत्याग्रहियों को मरने के लिए, जीवित रहने के लिए नहीं, आगे बढ़ना है। जब व्यक्ति इस प्रकार मृत्यु की खोज तथा उसका सामना करने के लिए तैयार हो जायंगे तभी वे राष्ट्र को सजीव बना सकेंगे।" समस्त भारतीयों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा, "आज से प्रत्येक भारतीय अपने को स्वतन्त्र समझे। ...हम कोई निकम्मा वार नहीं करेंगे।......मैंने कांग्रेस को बाजी पर लगा दिया है; वह करेगी या मरेगी......अब की जो लड़ाई होगी वह सामूहिक लड़ाई होगी।... हम एक सल्तनत का मुकाबला करने जा रहे हैं और हमारी

लड़ाई बिल्कुल सीधी होगी।" महात्मा गांधी के इस वक्तव्य का असर भारत की कोटि-कोटि जनता पर जादू सा हुआ था, इससे भारतीयों में एक नूतन आत्मविश्वास और आत्मबल का संचार हुआ। उनमें यह जबर्दस्त इच्छा पैदा हुई कि अपनी वर्तमान अवस्था के फटे-पुराने, विच्छिन्न चीथड़ों को चीर-फाड़ कर राजनीतिक, आर्थिक और मानसिक बन्धनों को छिन्न-भिन्न कर, तथा मार्ग की सब विघ्न-बाधाओं को ठुकरा कर हम आगे बढ़ ऊपर उठें और संसार में अपना योग्य स्थान बनाने का आमरण प्रयत्न करें। उनके मन, मा॰॰क और दृष्टि-क्षेत्र में एक क्रान्ति उपस्थित हुई जिसने झकझोर कर उन्हें उठाया और बतलाया कि वे दूसरे देश की गुलामी की बेड़ी में आबद्ध रह कर, दुसह दारिद्र्य, दुःख, शोषण और निराशा का जीवन बिताने के लिए नहीं पैदा हुए हैं। उन्हें भी विश्व में शीश उठा कर चलने का अधिकार है, उन्हें भी दुनिया के स्वतन्त्र वायु-मण्डल में साँस लेने का अधिकार है, उनके भी कुछ मनुष्योचित अधि-कार हैं जिनसे संसार की कोई भी नारकीय भौतिक ताकत उन्हें अधिक दिन तक अलग नहीं रख सकती। आज उन्हें अपनी महान शक्ति और स्वरूप का अनुभव हुआ था जिसे भुला कर वे अब तक अपने मनुष्यत्व और पौरुष को नष्ट कर रहे थे। अब उन्होंने समझा कि वे एक विशाल देश के निवासी हैं जो दुनिया में अपूर्व है, यह विश्व में महान तथा अजेय कहे जानेवाले राष्ट्र ग्रेट बृटेन से १५ गुना बड़ा और फ्रांस तथा जर्मनी से आठ-आठ गुना बड़ा है। इस देश की जन-संख्या सम्पूर्ण मनुष्य जाति का ५ वाँ हिस्सा है। चीन को छोड़कर अन्य किसी भी देश से इसकी जन-संख्या अधिक है। रूस की जनसंख्या से दुगुनी, अमेरिका से ढाई गुनी, जर्मनी से पाँच गुनी, फ्रांस से आठ गुनी तथा सम्पूर्ण बृटेन की जनसंख्या से दस गुनी बड़ी है। यह देश दुनिया के हर हिस्से की जलवायु, गरमी, सर्दी और वनस्पति का प्रतिनिधि है। इतने महान देश के अधिवासी होकर, तथा असीम शक्ति के स्वामी होकर भी परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़े रहना उनकी निम्न प्रवृत्ति तथा अकर्मण्यता का द्योतक

हुई। अन्तर्विरता की रणभेरी बज चुकी थी और वीरवरों ने उसकी झंकृत ताल से आन्दोलित हो केसरिया जामा पहनना आरम्भ कर दिया था। एक चिनगारी की आवश्यकता थी जो विशाल अग्नि का रूप धर कर ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता को अपनी जिह्वा से चाट लेती।

सरकार पर इस प्रस्ताव, तथा इस नवीन जनजागृति का स्वाभाविक असर पड़ा। उसने दमन के साधनों का प्रयोग पुनः आरम्भ किया। तैयारियाँ पहले से ही थीं अतः कांग्रेस के सभी सदस्य सुबह होते-होते गिरफ्तार कर लिए गये तथा अज्ञात स्थानों को भेज दिये गये। सरकार ने इतनी व्यग्रता और शीघ्रता शायद इसलिए दिखलाई कि वह अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ होने के पहले ही दबा देना चाहती थी। कांग्रेस गैरकानूनी करार कर दी गई। लगभग ६ घंटे में सारी परिस्थिति बदल गई थी। मौलाना आजाद के शब्दों में, "एक रात में दुनिया बिल्कुल बदल गई थी। शाम को लोगों के दिलों में उमंगों की रंगीनियाँ थीं, हसरतों की हलचल थी, कहकहों के फूल थे और अब क्रन्दन था, बेड़ियाँ थीं, गुलामी थी।"

जनता इस विद्युत्-परिवर्तन से स्तम्भित सी रह गयी। समस्त देश में यह समाचार पाते ही हड़ताल हुई तथा जुलूस निकाले गये। इसके विरोध में पुलिस ने निहत्थी जनता पर लाठियों और गोलियों के प्रहार किये और सरकार ने अध्यादेशों का शासन स्थापित किया। कांग्रेसी नेतागण के अन्दर बन्द थे। जनता नेता-विहीन हो गयी और दूसरी ओर अधिकारियों के दबाव ने उसे और भी उत्तेजित किया। वह वर्षों से पढ़ाये गये गांधी जी के अहिंसात्मक युद्ध का पाठ भूल गई। विप्लव हिंसात्मक हो गया। तार काटे गये, रेल की पटरियाँ उखाड़ी गयीं, थानों में आग लगाई गयी, सरकारी अफसरों पर आक्रमण किये गये, और सरकारी खजाने तथा डाकखाने लूटे गये: गुप्त रेडियो-स्टेशन खोले गये तथा समानान्तर सरकारी संस्थाओं का निर्माण हुआ। विद्यार्थियों, किसानों तथा मजदूरों ने इस आन्दोलन में पूर्ण हाथ बटाया। सरकार ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया। अन्धाधुंध दमन-चक्र चलाया गया तथा जनता पर भयंकर अत्या-

चार हुए। जनता के साथ जो बर्बरता का व्यवहार किया गया उसके समक्ष सन् '५७ के विद्रोह के पश्चात् का बर्ताव दया का मूर्तिमान स्वरूप प्रतीत होता है। अवसर पा कर बृटिश पार्लियामेन्ट की कामन्स सभा में भारत की स्वतन्त्रता के कट्टर शत्रु मि० एमरी ने कांग्रेस-नेता तथा उनके सिद्धान्तों के प्रति विष उगलते हुए कहा था कि कांग्रेस एक ऐसा आन्दोलन करने जा रही है जिसमें हिंसा और अहिंसा मे कोई भेद-भाव नहीं रखा गया है। इस प्रकार उन्होंने भारत मे होनेवाले दमन का समर्थन किया था। किन्तु दमन का स्थायी प्रभाव भारत की अंग्रेजी सरकार और बृटिश राष्ट्र के पक्ष में न होकर भारतीय राष्ट्र के पक्ष मे हुआ। बृटिश सरकार को भारतीय जनता की दृढ़ता का ज्ञान हो गया और कालान्तर मे उसे वही करना पड़ा जो गांधी जी, प० नेहरू तथा कांग्रेस कार्य-समिति एवं अ० भा० कांग्रेस कमेटी चाहती थी।

नेहरू आदि सभी नेताओं ने सरकार की इस निर्दयता पूर्ण दमन-नीति को अत्यन्त घृणित बतलाया। यद्यपि जनता के हिंसात्मक कार्यों से नेहरू जी को क्लेश अवश्य हुआ फिर भी उन्होंने गर्व का अनुभव करते हुए कहा था कि यदि जनता उस राष्ट्रीय अपमान को चुपचाप सह लेती तो मुझे विशेष निराशा तथा अफसोस होता। उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे कहा है कि "मेरी यह निश्चित धारणा है कि अगस्त सन् १९४२ के आन्दोलन से राष्ट्र को वह अदम्य शक्ति और बहुमूल्य अवसर प्राप्त हुआ जिसकी हमें बहुत आवश्यकता थी। इससे हमें अपनी बलिदान-शक्ति और बृटेन के दमन करने की बर्बर शक्ति का भी काफी ज्ञान हुआ।"

विद्रोह के अंत के पश्चात् बृटेन की कामन्स सभा मे भाषण देते हुए मि० चर्चिल ने 'गर्वपूर्वक' कहा था, "सरकार की पूरी ताकत से यह उपद्रव कुचल दिया गया।" इतिहास के पन्नों पर पड़े हुए खून के छींटे, असहाय सत्य और मानवता की छाती में भोंकी हुई कटार और बेवस

दर्दनाक चीख, युग युग तक आने वाली सन्तानों को साम्राज्यवादी ब्रिटेन के घृणित तथा नृशंस कारनामों की याद दिलाते रहेंगे।

१९४२ का साल भारतीय इतिहास में सिर्फ अगस्त की क्रांति के लिए ही नहीं प्रसिद्ध रहेगा बल्कि एक और हृदय विदारक घटना के लिए भी वह याद किया जायेगा। वह घटना है बंगाल का भयंकर अकाल।

जापानी बढ़ रहे थे। अंग्रेज बर्मा छोड़कर भाग रहे थे सरकार ने बंगाल को भय का क्षेत्र घोषित कर दिया तथा वहाँ से अनाज आदि हटाना आरंभ कर दिया। साथ ही साथ यातायात के साधन आदि भी अव्यवस्थित हो गये। बर्मा से चावल आना बंद हो गया। उसके बदले शरणार्थियों के दल के दल पहुँचने लगे। उन्हीं दिनों बंगाल में एक बड़ा तूफान आया। इन सब संकटों के साथ-साथ बंगाल की तत्कालीन सरकार की अयोग्यता, सरकारी कर्मचारियों की स्वार्थता और पूँजीपतियों की कभी न तृप्त होने वाली मुनाफा कमाने की इच्छा ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि बंगाल एक भयंकर विपत्ति के झंझावातों से ग्रसित हो गया। देश की विभिन्न संस्थाओं ने तथा विद्वानों ने इस अकाल से करीब ३५,००,००० व्यक्तियों की मृत्यु-संख्या का अनुमान लगाया। इस मनुष्यकृत अकाल ने बंगाल की जन-हानि ही नहीं की किन्तु उससे भी बढ़कर उसकी नैतिक रीढ़ तोड़ डाली। पेट की ज्वाला ने भूखे माँबाप को अपनी मासूम बच्चियों को वेश्याओं के हाथ बेचने के लिए लाचार किया। चन्द चाँदी के टुकड़ों पर मनुष्य की आत्मा तथा सती काया खरीद लेने का दम्भ रखनेवाले धनिक कुत्तों ने इन सूखी हड्डियों से अपनी कामाग्नि शान्त करने का प्रयत्न किया। मानवता रो पड़ी, और 'न्यायी' ईश्वर ने भय से अपनी आँखें बन्द कर लीं।

———

आजाद् हिन्द् फौज के मुकदमे

कांग्रेस से सैद्धान्तिक मतभेद होने के पश्चात् नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति का दूसरा उपाय सोचने लगे। अंग्रेजों की शक्ति और कांग्रेस की सफलताओं से उनका विश्वास अहिंसात्मक आन्दोलनों से उठने लगा था, और उनके विचार से इन सब आन्दोलनों से यदि स्वराज्य पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। अतः वे बलपूर्वक, अंग्रेजों के शत्रुओं की सहायता से तथा विश्व की अशान्तिपूर्ण राजनीतिक स्थिति से फायदा उठाकर, लंदन की सरकार के चंगुल से अपने देश को स्वतन्त्र करा लेने का स्वप्न देखने लगे। उन्होंने घूम-घूम कर देश के जोशीले नवयुवकों तथा सेना के देशभक्त अफसरों को सगठित कर आजाद् हिन्द् फौज की स्थापना की। वे और उनके सैनिक साथी बृटिश सरकार की आँख बचाकर भारत की सीमा पार करते हुए मित्र राष्ट्रों के शत्रुओं से 'स्वतन्त्रता प्राप्ति में सहायता' की शर्तों पर जा मिले।

अपनी आजाद् हिन्द् फौज के साथ नेता सुभाष ने 'दिल्ली चलो' के नारे के साथ भारत में प्रवेश भी किया था, परन्तु अभाग्यवश तभी उनकी सहायक (कम से कम सहायता के लिए उनका जिसपर भरोसा था) जापानी सरकार ने आत्मसमर्पण कर दिया। फलतः युद्ध सामग्री की कमी के कारण उन्हे निराश हो वापस लौटना पड़ा था। युद्ध-समाप्ति के पश्चात् निराश आजाद् हिन्द् फौज के सेनानी एक-एक कर भारत लौटने लगे। सरकार ने बृटिश स्वार्थों के विरोधी उन बहादुर नवयुवकों को गिरफ्तार कर लिया तथा न्याय और अनुशासन का ढोंग करती हुई उनपर मुकदमा चलाने की तैयारी करने लगी। विरोधी जनता बृटिश

सरकार के इस कार्य से उन्मत्त हो उठी। इन वीर बंदियों को बचाने के लिए तीव्र आन्दोलन आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण भारत में प्रदर्शनकारियों को हतोत्साह करने के लिए गोलियाँ चलीं। कलकत्ते में ४० व्यक्ति मरे तथा ३०० घायल हुए। बम्बई आदि स्थानों पर मृत्यु तथा घायलों की संख्या करीब-करीब उतनी ही रही। इसी प्रसंग में १८ फरवरी को भारतीय नौ-सैनिकों ने प्रसिद्ध नाविक-विद्रोह शान्तिमय ढंग से आरम्भ किया। उन्होंने जंगी जहाजों पर से अंग्रेजी झंडे उतार कर कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के झंडे फहरा दिये, और आजाद हिन्द के सैनिकों को छोड़ देने तथा इण्डोनेशिया से भारतीय सैनिकों को हटा लेने की माँग की। यह नाविक-विद्रोह कलकत्ता, विशाखापट्टम, मद्रास और करांची में फैल गया। वायु-सेना का भी कुछ अंग इसमें सम्मिलित हुआ। बम्बई में तीन लाख मजदूरों ने सहानुभूति में हड़ताल की। इस असन्तोषात्मक विद्रोह को दबाने के लिए सरकार ने अपनी दानवीय शक्ति से काम लिया, परन्तु उससे विद्रोह की भावना दबी नहीं। आजाद हिन्द फौज की छूत फैलने लगी। अगले महीनों में सेना और पुलिस के कर्मचारियों ने भी अनेक स्थानों पर हड़ताल की।

विपत्ति में पड़े इन साहसी व्यक्तियों की रक्षा और सहायता के लिए पं० नेहरू ने भी जेल से छूटते ही सर्वप्रथम इसके विरुद्ध आवाज उठायी, तथा बाद में उस फौज के कैप्टन शाहनवाज, कैप्टन सहगल और लेफ्टिनेन्ट ढिल्लन आदि के मुकदमों की पैरवी के लिए उन्होंने कांग्रेस को तैयार कर अपनी सारी शक्ति और ध्यान उस ओर लगा दिया। जो पं० नेहरू २५ वर्ष पूर्व अपने वकालत पेशे का त्याग कर स्वराज्य-प्राप्ति के संग्राम में जुट गये थे, वे अपने असहाय पर देशभक्त भाइयों के मुकदमे की मिलिटरी कोर्ट के सामने पैरवी करने के लिए श्री भूलाभाई देसाई, बैरिस्टर आसफअली आदि के साथ वकालत की पोशाक में एकबार फिर फौजी न्यायालय के स्थान, लाल किले में उपस्थित हुए थे।

नेहरू जी तथा श्री सुभाष बोस में सिद्धान्ततः इतना मतभेद था कि श्री

बोस ने कांग्रेस-सिद्धान्त के विरोध में फार्वर्ड ब्लाक संस्था बनायी थी, और नेहरू जी आदि व्यक्तियों के विरोध के पश्चात् भी हिंसात्मक ढंग से देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आजाद हिन्द फौज की स्थापना की थी। इतना विरोध होते हुए भी नेता श्री सुभाष बोस ने गाँधी जी, उनके सिद्धान्त अहिन्सा तथा उनके साथियों के प्रति अंत तक सम्मान तथा आस्था ही प्रकट की थी। उन्होंने आजाद हिन्द फौज के सेनानायक की हैसियत से सिंगापुर-रेडियो से बोलते हुए भारत की आत्मा के प्रतीक से आशीर्वाद माँगा था, "हमारे राष्ट्रपिता महात्मा जी! भारत को स्वतंत्र करने के इस पवित्र युद्ध तथा अपने प्रयत्न में हम आपके आशीर्वाद और शुभकामना की याचना करते हैं।" स्वयं महात्मा गाँधी ने ऐसे अवसर पर कहा था, "सुभाष बाबू के साथ मेरा सम्बंध सदा पवित्रतम तथा सर्वोत्तम रहा है। बलिदान की उनकी योग्यता मैं सदैव से जानता रहा हूँ। लेकिन उनकी संगठन की योग्यता, सैनिक का चातुर्य एवं साहस और साधन जुटाने की क्षमता का पूरा ज्ञान तो मुझे तब हुआ, जब वे भारत से भाग निकले।" नेताजी की फौज के एक परम प्रतिष्ठित मेजर जेनरल शाहनवाज खाँ ने अपने मुकदमे से छुटकारा पाने के पश्चात् अपने एक विचारपूर्ण लेख में नेताजी की निस्वार्थता का बयान करते हुए लिखा था कि, बृहत्तर पूर्वी एशिया की एक कान्फ्रेन्स में जब जापान के प्रधान मंत्री जेनरल तोजो ने अपने भाषण में यह कहा कि नेताजी स्वतंत्र भारत के सर्वे-सर्वा होंगे, तब नेताजी ने उठकर दृढ़तापूर्वक कहा कि आपको ऐसी बात कहने का कोई अधिकार नहीं हैं। कारण भारत में कौन क्या होगा, यह निश्चय करने का पूर्ण अधिकार भारतीय जनता को होगा। मैं तो भारत का एक तुच्छ सेवक हूँ, और वस्तुतः भारत के सर्वे-सर्वा बनने के जो लोग अधिकारी हैं, वे हैं महात्मा गाँधी, मौलाना अबुलकलाम आजाद और पं० जवाहरलाल नेहरू।'

पं० नेहरू का सुभाष बाबू के प्रति क्या विचार था यह शिमले में, १ जुलाई १९४५ को एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने व्यक्त किया था,

"मेरे विचार आज भी वही हैं, जो १९४२ के आरम्भ में मैंने व्यक्त किया था। तब मैंने कहा था यदि सुभाष बोस जापान की सरकार के तत्वावधान मे भारत आयेंगे, तो मैं उनके विरुद्ध लड़ूँगा, क्योंकि ऐसी हालत में उनका भारत आना भारत के भविष्य के लिए खतरनाक सिद्ध होगा, किन्तु जापान की लडाई के बाद यदि वे भारत आये तो उनका विरोध करना ठीक न होगा।......कोई भारतीय नेता किसी दूसरे भारतीय नेता के प्रधान उद्देश्य की उपेक्षा नहीं कर सकता, और श्री बोस के सम्बन्ध मे मुझे कोई शक नहीं कि उनका प्रधान उद्देश्य 'भारत की स्वतन्त्रता' है।

स्वयं महात्मा गाँधी ने भी कहा था कि मै इस बात से अत्यन्त प्रसन्न हूँ कि भारत ने आजाद हिंद के छूटे हुए फौजी जवानों का शानदार स्वागत किया। "मैं आजाद हिन्द फौज और नेताजी सुभाष बोस की कुर्बानी और देश-प्रेम की सराहना करता हूँ, लेकिन उन्होंने जिस तरीके को अपनाया था उससे मैं सहमत नहीं हूँ।" उन्होंने आगे कहा था, "नेताजी मेरे लिए पुत्र के समान थे। स्व० श्री देशबन्धु चितरंजन दास के नेतृत्व में कार्य करने वाले एक होनहार कार्यकर्ता के रूप में मैंने पहले-पहल उन्हें जाना था। आजाद हिन्द फौज के लिये उनका आखिरी सदेश यह था कि विदेश में वे हथियारों से लड़ रहे हैं, लेकिन भारत लौटने पर उन्हें काँग्रेस के नेतृत्व मे अहिसा का सिपाही बनना है और इस नाते देश की सेवा करनी है। हिन्दुस्तान के लिए आजाद हिन्द फौज और नेताजी का सदेश यह नहीं है कि आपसी झगड़ों को मिटाने के लिए हम हथियार चलाने के तरीकों को अपनाये—क्योंकि उसकी आजमाइश हो चुकी है, और वह कच्चा साबित हो चुका है—बल्कि उनका संदेश तो यह है कि अपने बीच हम अहिंसा, एकता, मेलजोल और सगठन बढ़ायें।........हिन्दुस्तान के सभी धर्मों और सभी कौमों के लोग एक ही झण्डे के नीचे, एक ही उद्देश्य से एकत्रित हुए यही उनका सबसे बड़ा तथा अनुकरणीय कार्य था।........तलवार की ताकत से सत्याग्रह की ताकत कहीं ज्यादा मजबूत है। आजाद हिन्द फौज के लोगों से

मैंने यह बात कही और उन्होने खुशी के साथ मुझसे कहा कि वे इस चीज को समझ चुके हैं और अब वे कॉंग्रेस के झण्डे के नीचे, अहिंसा के सच्चे सिपाही बनकर, भारत की सेवा करने का प्रयत्न करेंगे ।" कहने की आवश्यकता नही कि नेहरू जी तथा काँग्रेस के अन्य सभी नेताओं का भी आजाद हिंद फौज के सम्बन्ध मे यही भाव था।

आजाद हिन्द फौज से सम्बन्धित दो प्रस्ताव कॉंग्रेस वर्किंग कमेटी ने पास किया। एक प्रस्ताव इस आशय का था, "चूँकि आजाद हिन्द फौज के लोगो की कानूनी पैरवी के लिए नियुक्त की गई कमेटी के बाद भी उनके सम्बन्ध की अनेक समस्याये और है, इसलिए एक और कमेटी नियुक्त की जाती है, जो 'आजाद हिन्द फौज-जाँच और सहायता कमेटी' कही जायेगी। इस कमेटी का कार्य उन लोगों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त कर उन्हे सहायता पहुँचाना होगा। यह कमेटी आजाद हिन्द फौज की सेवा में मरे हुए लोगों के आश्रितो के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करके उनको सहायता प्रदान करेगी। कमेटी के अध्यक्ष श्री पटेल बनाये गये तथा सदस्यों मे सर्वप्रथम नाम नेहरू जी का ही था। कॉंग्रेस कमेटी ने एक अन्य प्रस्ताव द्वारा घोषित किया कि, "यद्यपि कॉंग्रेस आजाद हिन्द फौज द्वारा प्रदर्शित बलिदान, अनुशासन, देशभक्ति और वीरता तथा एकता की भावना के लिए गर्व अवश्य अनुभव करती है, जो श्री सुभाषचन्द्र बोस द्वारा विदेशों मे अभूतपूर्व अवस्थाओ मे संगठित की गई थी, और यद्यपि काग्रेस यह ठीक और उचित समझती है कि वह उस सगठन के उन लोगों की पैरवी करे जिन पर मुकदमें चल रहे हैं, और उसमें उन लोगों की सहायता करे जो कष्ट मे हैं, पर काग्रेस-जनों को यह भूलना नहीं चाहिए कि उनकी सहायता और सहानुभूति का अर्थ यह कदापि नहीं है कि काग्रेस अपनी उस नीति से हट गई है, जो उसने शान्तिपूर्ण और उचित साधनो से स्वराज्य प्राप्त करने के लिए बना रखी है।" स्वयं नेहरू जी ने भी यह कहा था कि काग्रेस द्वारा निर्धारित 'आजाद हिन्द फौज-रक्षा-कमेटी' का विशेष कार्य उन लोगो की रक्षा करना है जिन

पर मुकदमा चलेगा। हम लोगों को स्वभावतः आजाद हिन्द फौज के सभी सदस्यों के भाग्य की चिन्ता है। इस फौज के जो सदस्य मर गये हैं, अथवा जो काम करने के योग्य नहीं है, उनकी हम लोगों पर विशेष जिम्मेदारी है।

बन्दी होने के पश्चात् आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को सरकार के हाथ से अनेक यातनायें मिलीं, परन्तु कांग्रेस तथा देश के एकमत से पक्ष में हो जाने के पश्चात् दिन-प्रतिदिन उनके दुःख कम होने लगे। जिन सैनिकों पर कोर्ट मार्शल के अन्तर्गत मुकद्में चलाये गये थे उनके मुकद्मों की पैरवी निस्वार्थ भाव से देश के नामी वकीलों—श्री सप्रू, श्री कैलाशनाथ काटजू, श्री नेहरू आदि—ने की।

कांग्रेस को आजाद हिन्द फौज के लोगों की पैरवी करते देखकर सरकार को भी अपनी नीति अन्त में यह बनानी पड़ी थी कि जिन आद-मियों के विरुद्ध युद्ध-कैदियों के प्रति निर्दयता एवं पाशविकता के अप-राध करने का आरोप है, सिर्फ उनके विरुद्ध ही मुकदमें चलाये जायें, तथा किसी पर केवल इसलिए कानूनी कार्यवाही न की जाये कि वह उस फौज में था। पहला और सबसे महत्वपूर्ण आरोप वह था जो आजाद हिन्द फौज के मेजर जेनरल शाहनवाज, कैप्टन सहगल और ढिल्लन पर लगाया गया था। इन्हें छोड़ देने के लिए देश भर में जुलूस आदि निकाल कर विराट प्रदर्शन हुआ और स्वयं नेहरू जी ने भारत के प्रधान सेनापति सर आचिन लेक से मिलकर आजाद हिन्द फौज वालों के सम्बन्ध में नरम नीति काम में लाने का अनुरोध किया था। मामला नियमपूर्वक चला और अंत में कोर्ट मार्शल के न्यायालय ने तीनों अभियुक्तों को अपराधी ठहराते हुए आजीवन कालेपानी की सजा दे दी थी। पर वह सजा सुनाई नहीं गई, न किसी पर प्रकट ही की गई थी, क्योंकि कोर्ट मार्शल द्वारा दी गई सजा जब तक प्रधान कमाण्डर से स्वीकृत न कर ली जाये वह सुनाई नहीं जाती। जेनरल सर आचिन लेक ने कोर्ट मार्शल के फैसले पर विचार कर कालेपानी की सजा तो

रद्द कर दी, किन्तु सेना से उनके बर्खास्त किये जाने और बकाया वेतन तथा एलाउन्स की जब्ती की आज्ञा जारी रखी। इस प्रकार ये तीनों सेनानी ३ जनवरी १९४६ को छोड़ दिये गये। उनके मुक्त होने के पश्चात् देश ने असाधारण प्रसन्नता व्यक्त की थी। उस अवसर पर नेताजी सुभाष बोस के कलकत्ते के निवासस्थान से ६ जनवरी की रात को तीन तार भेजे गये थे; उनमे से एक तो उन छूटे हुए तीनो व्यक्तियों के नाम और दूसरा पैरवी-कमेटी के नाम बधाई सूचक था। तीसरा तार पैरवी के लिए सबसे उद्योगी प० नेहरू के नाम इस आशय का था, "देश को जाग्रत करने के आपके प्रारम्भिक प्रयास से ही इन लोगों की जीवन-रक्षा हुई है। जयहिन्द।" इसमे सन्देह नहीं कि नेहरू जी ने आजाद हिन्द फौज के अभियुक्तो को छुड़ाने में इस प्रश्न को लेकर जैसा जाग्रत लोकमत तैयार कराया, उससे नेहरू जी की महानता सम्पूर्ण भारत में फैल गयी।

कि इन जातियों की सामूहिक प्रतिद्वंद्विता अंग्रेजी राज्य के समय से आरम्भ हुई है।" प्रधान मंत्री रैमजे मैकडानल्ड भी यह कहने पर बाध्य हुए थे कि, "हिन्दू और मुसलमान-समाज मे फूट डालने के लिए सरकार की ओर से दुष्ट शक्तियाँ कार्य कर रही हैं।···भारतीय विषयों से जानकारी रखने वाला कोई भी इसे इनकार नही कर सकता कि हिन्दू-राष्ट्रीयता के विरुद्ध......और मुसलमानों के पक्ष में बृटिश शासक-वर्ग मे एक जबर्दस्त पक्षपात का भाव है।" ऊपर व्यक्त किये गये इन कुछ विचारो तथा वक्तव्यों से अंग्रेजों की साम्प्रदायिक कूटनीति का स्पष्ट भंडाफोड़ हो जाता है।

अस्तु, साम्प्रदायिक विचारो से सचालित तथा सरकार के दूध से पली मुसलिम लीग आरम्भ से ही कांग्रेस के विरुद्ध विष उगलती रही, तथा अपने सम्प्रदाय के स्वार्थ के लिए कार्य करती रही। यह दूसरी बात है कि कभी-कभी अपने ही स्वार्थ से प्रेरित हो वह कुछ दिनों तक के लिए कांग्रेस से मिल गई हो। इस छोटी पर उच्चवर्गीय सस्था का न तो जनता से विशेष सम्पर्क ही था और न उसपर विशेष प्रभाव ही। प्रथम महायुद्ध तथा तुर्की मे खिलाफत और मुस्लिम तीर्थ-स्थानों के प्रश्नों को लेकर भारत के मुसलमानो मे काफी उत्तेजना तथा जागृति का प्रसार हुआ, और वे भीतर ही भीतर भीषण रूप से बृटिश नीति के विरोधी हो गए। लीग के नेताओं ने इस स्थिति से लाभ उठाया और उन्होंने कांग्रेस से मिलकर तथा खिलाफत का प्रश्न उठाकर उत्तेजित जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। १९२०–२३ के असहयोग आन्दोलन के पश्चात् धीरे-धीरे खिलाफत कमेटी का भी अंत होने लगा, क्योंकि अब उसका आधार—तुर्की-खिलाफत का मामला–दब चुका था। खिलाफत कमेटी के काफी मुसलिम नेता कांग्रेस मे आ गये। अतः १९३० के अवज्ञा-आन्दोलन मे मुसलमानो का काफी साथ कांग्रेस को मिला। पीछे मि० जिन्ना जब लीग में जा शामिल हुए, तब लीग का आन्दोलन और उसके साथ ही सरकारी नौकरियों और कौंसिलो मे

मुसल्मानों के लिए काफी प्रतिनिधित्व की उनकी माँग ही लीग के आन्दोलन का प्रमुख कार्य रह गया। उनकी विचार-धारा, उनके द्वारा उपस्थित की जाने वाली माँग, एक संकुचित क्षेत्र, एक सम्प्रदाय के स्वार्थों तक ही सीमित रह गई। गाँधी जी तथा नेहरू जो आदि नेताओं ने, जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आन्दोलन में सभी वर्गों, सभी सम्प्रदायो का—सम्पूर्ण भारत के नेताओ का—सहयोग चाहते थे, काग्रेस और लीग मे समझौता कराने का अथक परिश्रम किया, परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल रहे।

अब प्रश्न उठता है कि भारत को खंडित कर पाकिस्तान बनाने के विचार की उत्पत्ति ही कैसे हो पायी। पाकिस्तान की 'सूझ' का काफी श्रेय सर मुहम्मद इकबाल को है। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' राष्ट्रीय गीत के रचयिता कवि ने अपना चोला बदल कर उसे साम्प्रदायिकता के रग मे रग लिया था। बृटिश-सरकार अपना कूटनीतिक खेल बड़ी योग्यता और चालाकी से खेल रही थी। काग्रेस-मंच से गरम राष्ट्रीय मुसलिम नेता के तौर पर दहाड़ने वाले उन अली-बंधुओ के भी पाव लड़खड़ाने लगे थे, जिनके छोटे भाई मौलाना मुहम्मद अली ने १९२३ मे काग्रेस की अध्यक्षता भी की थी। मि० स्मिथ के अनुसार, "आदर्शवादी होने के कारण वे मानवीय व्यवहार को समझने मे असमर्थ थे।" सन् १९३० के मुसलिम लीग के प्रयाग के अधिवेशन मे उन्होंने परोक्ष रीति से पाकिस्तान के विचार की नींव डाली। वह चाहते थे कि प्रान्तो के पुनर्संगठन के समय मुस्लिम प्रान्तों को भारतीय संघ के अंतर्गत स्वायत्त शासन का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो। इसके तीन वर्ष पश्चात् कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के चार मुस्लिम छात्रो ने, "अब या कभी नहीं" नामक चार पृष्ठों की एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसमे मुसल्मानो की सास्कृतिक पृथकता पर जोर देते हुए उन्होंने यह सुझाव पेश किया था कि भारत का बॅटवारा करके मुस्लिम राष्ट्र का एक पृथक् राज्य स्थापित किया जावे। उस समय मुस्लिम लीग के नेताओं ने इसे 'काल्पनिक' तथा 'अव्यवहारिक' लड़को

की योजना बतलाई थी। परन्तु पाँच वर्ष पश्चात् ही यह 'अव्यवहारिक कल्पना' समझी जाने वाली विचार-धारा से सभी प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक मुसलमान अनुप्राणित हो उठे। मि० जिन्ना ने कांग्रेस के 'सहयोग तथा सम्मिलित कार्य' के नियन्त्रण पर कहा था कि ऐसा केवल तभी किया जा सकता है जब कि हम खुले शब्दों मे मंजूर कर ले कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था मुस्लिम लीग है, तथा काग्रेस अपने को विशुद्ध हिन्दू सगठन समझे। ऐसा घोषित करना काग्रेस के लिए कभी सम्भव नहीं था, अतः उनसे कभी मेल न हो सका। मि० जिन्ना को वृटिश शासको के परोक्ष 'अभय वरदान' पर भरोसा था, और वे सोचते थे कि यदि काग्रेस के उद्योग से देश को कुछ भी प्राप्त हो सका तो उसमे वे बड़ा हिस्सा बिना मेहनत ही पाने से वंचित न रहेंगे।

सन् १९३८ मे सिंध के प्रान्तीय मुस्लिम-सम्मेलन मे अध्यक्ष-पद से मि० जिन्ना ने यह माँग पेश की कि एशिया, विशेषतः भारतीय महाद्वीप मे स्थायी शान्ति बनाये रखने, उसके हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायो को सास्कृतिक विकास का अवसर देने, तथा उन्हें आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर करने के उद्देश्य से भारत दो सघ राज्यों मे बाँट दिया जाना चाहिए, जिसमें एक मुस्लिम प्रान्तो का सघ-हो और दूसरा हिन्दू प्रान्तों का। कुछ दिनों पश्चात् सन् १९४० में इस प्रस्ताव को भारतीय मुस्लिम लीग की कार्य-समिति ने अपने लाहौर-अधिवेशन में भी अपना लिया। नेहरू जी ने इसपर अपनी राय जाहिर करते हुए कहा था कि यदि राष्ट्रीयता का आधार मजहब है तो दो ही क्यों, भारत के बहुत से टुकड़े हो सकते हैं।

पाकिस्तान की इस माँग का काग्रेस की ओर से जोरदार विरोध हुआ, परन्तु मि० जिन्ना की अध्यक्षता मे मुस्लिम लीग की यह माँग जोर पकड़ती गयी। देश जब कि महान् सकट के गर्त पर खड़ा था, और विपरीत वायु का एक झोंका ही उसे अनन्त काल के लिए चिर निद्रा मे सुला देता, नेता कहे जाने वाले ये रंगे सियार अबोध मुस्लिम जनता को

धर्म के नाम पर मीठा जहर पिला रहे थे। जनता नीलकंठ तो है नही, आखिर वह इसे कब तक पचा पाती ?

मुसलमानों के एक अलग मजहबी राज्य पाकिस्तान के बारे मे नेहरू जी के विचार हमेशा ही विरोधी रहे हैं। ७ जनवरी १९४६ को सिन्ध की एक विराट सभा मे भाषण देते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा था, "विश्व की वर्तमान सकटपूर्ण स्थिति मे पाकिस्तान की मॉग बिल्कुल अवाञ्छित और अवास्तविक है। पाकिस्तान स्वतन्त्र नहीं रह सकता, उसका अर्थ गुलाम देश होगा।······काग्रेस देश का विभाजन हर्गिज न होने देगी। काग्रेस का लक्ष्य सयुक्त एवं सगठित भारत है।" उन्होने अपने एक और भाषण में भी कहा था, "हम प्रगतिशील आधुनिक विचारों के कारण अखंड भारत के समर्थक हैं। विभाजित भारत एक कमजोर राष्ट्र होगा।····· पाकिस्तान साम्प्रदायिक समस्या का हल नही है।······यदि मुसलमान विभाजन पर अड़ ही जायेगे तो वे रोके नही जा सकते, लेकिन विभाजन से किसी का भी हित न होगा, मुसलमानो का भी नही।"

भारतीय साम्प्रदायिक स्थिति तथा लोकमत का ज्ञान करने के लिए तथा उसके आधार पर उन्हे शासन-व्यवस्था सौपने के उद्देश्य से (यद्यपि यह सब बृटिश शासन की ऊपरी दिखलावे की चाल थी और वह स्वयं हृदय से भारत को दो भागों मे विभाजित हो दो निर्बल राष्ट्र बनते देखना चाहती थी।) यहाँ इगलैंड द्वारा एक शिष्ट-मंडल भेजा गया। जिसके एक सदस्य मि० सोरेन सेन ने, आते ही पूर्व निश्चित योजना के अनुसार अपना रटा-रटाया विचार व्यक्त किया, "मेरा विचार है कि यदि मुस्लिम बहुसख्यक प्रान्तों को डोमीनियन स्टेट्स के आधार पर पृथक् अस्तित्व का आश्वासन दे दिया जाये तो अखिल भारतीय विषयो मे शेष भारत के साथ उनके सहयोग की समस्या कुछ अंश तक हल की जा सकती है।" बृटिश सरकार ने अपनी जीत का अंतिम पासा फेका था।

सरदार पटेल ने उक्त प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा था,

"कांग्रेस न्यायोचित तरीके से अल्प-संख्यकों की रक्षा तथा संरक्षण के पक्ष मे है, किन्तु वह देश का बँटवारा करके मि० जिन्ना की असंभव माँग को स्वीकार नहीं कर सकती।'' 'अपने प्रस्ताव में कांग्रेस भारत की स्वतन्त्रता और एकता के प्रस्ताव को अपना चुकी है।" किन्तु इन सबका कोई परिणाम न हुआ। मुस्लिम लीग अपनी पाकिस्तान सम्बन्धी माँग पर अडी रही।

९ अप्रैल १९४६ को मि० जिन्ना के सभापतित्व में केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान-मंडलो मे मुस्लिम लीग का सम्मेलन हुआ, जिसमें मि० जिन्ना ने भारत निवासी मुसलमानो की रक्षा और उद्धार के लिए पाकिस्तान बनाना आवश्यक बतलाया। सर फिरोज खाँ नून ने एक भाषण में मुसलमानो से कहा, "हमारे ऊपर एक बहुत बड़ा सकट आने वाला है। हमारी अतर्भावना की गहराई को न तो हिन्दू समझते हैं न अंग्रेज। यदि हिन्दू हमे पाकिस्तान और स्वतन्त्रता देंगे तो वे हमारे सर्वश्रेष्ठ मित्र है; और यदि अंग्रेज देंगे तो अंग्रेज। लेकिन यदि इनमें से कोई न देगा तो रूस हमारा सर्वश्रेष्ठ मित्र होगा। ''' चाहे हमें लड़ते हुए ही क्यों न मरना पड़े, हम ऐसा काम करेंगे कि हमारे वंशज अखंड हिन्दुस्तान के गुलाम न रहे।'''यदि ग्रेट ब्रूटेन हमे हिन्दू राज्य के अधीन रखेगा, तो हम उसे यह बतला देना चाहते हैं कि मुसलमान इस देश मे इतनी ज्यादा सत्यानाशी और तबाही करेंगे कि उनके कारण चंगेज खाँ के तत्सम्बन्धी कार्य भी फीके पड़ जायेंगे।" मुसलमान नेता की यह धमकी और चुनौती कितनी निम्नकोटि की तथा नृशंसतापूर्ण थी कि हमे एकबार फिर इस देश में आकर बस जाने, और इसकी सोंधी मिट्टी को अपनी न समझने वाले सदियो पूर्व के लुटेरे काफिरों की याद आ जाती है, जिनकी रूह काबुल, फारस, मिश्र और इरान आदि देशों की गलियो मे चक्कर लगाती थी, और जिनका नापाक जिस्म भारत की कुंआरी धरती के साथ बलात्कार करने के लिए यहाँ डोलता था।

अग्रेजो की कूटनीति का साम्प्रदायिक पासा उनके मन के मुताबिक

पड़ा। उन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष आक्षेपों से बच कर, मुस्लिम लीग की पीठ के पीछे से, भारतीय आत्मा पर अपना अन्तिम प्रहार किया। मजहबी मुसल्मानों की मूर्खतापूर्ण नीति के फलस्वरूप हिन्दुस्तान के दिल के दो टुकड़े होना निश्चित हो गया। लार्ड लिस्टोवेल ने भी घाव पर निमक छिड़कते हुए कहा, "विभाजन से लाभ उस समय भलीभाँति समझ में आ जायेगा जब विभाजन कर दिया जायेगा।" सारे राष्ट्रीय नेता स्तब्ध थे। स्थिति से निराश गाँधी जी ने अन्त में कहा था, "जनता को यह विस्मरण न कर देना चाहिए कि कांग्रेस को इस स्थिति में (विभाजन की) आने के लिए बाध्य किया गया है। मैं आप लोगों के हृदय की कसक को यह कह कर कम कर देना चाहता हूँ कि हिन्दुओं, मुसल्मानों और सिक्खों का अब तक कुछ भी नुकसान नहीं हुआ है। जो कुछ वायसराय ने किया है उसे वे परस्पर समझौते द्वारा रद्द कर सकते हैं।" हिन्दू महासभा के सभापति श्री एल० बी० भोपटकर के विचारानुकूल नयी योजना से यह स्पष्ट था कि "बृटिश सरकार सत्ता हस्तान्तरण के लिए उत्सुक थी, और मुस्लिम लीग का परिपक्व नेतृत्व (Virile Leadership) कांग्रेस हाई कमाण्ड के कच्चे नेतृत्व (Puerile Leadership) के सम्मुख विजय प्राप्त कर रहा है।" कुछ विदेशी लोगों के विचार भी विभाजन के अनुकूल न थे। बर्मा के नेता आंगसेन के शब्दों में, "विभाजित भारत केवल भारतीयों के ही लिए नहीं, वरन् समस्त एशिया और समस्त संसार की शान्ति के लिए अपशकुनसूचक था।" अमेरिका के भी कुछ लोग विभाजन के प्रतिकूल थे। डेमोक्रेटिक पार्टी के न्यूयार्क के प्रतिनिधि मि० इमेन्युएल सेलर के अनुसार, "बृटिश सरकार ने मि० जिन्ना को प्रसन्न करने की कोशिश की है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि किस प्रकार से देश का पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभाजन किया जायेगा, अथवा अंग-विच्छिन्न पाकिस्तान अपना काम चला सकेगा।"

प्रधान मंत्री नेहरू

आज विश्व का प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि जागते हुए विश्व में, जागते हुए एशिया, और जागते हुए एशिया में जागते हुए भारत की कल्पना को साकार करने वाले पं० जवाहरलाल इस महान गणतंत्रात्मक राष्ट्र के पहले प्रधान मंत्री हैं। वे ही जवाहरलाल जिन्हें महात्मा गाँधी 'भारत के जवाहर' और उनके सहयोगी तथा मित्र 'मनुष्यों में जवाहर' कह कर सम्मान से सम्बोधित करते थे; और जिन्हे आज से बहुत दिन पूर्व ही महात्मा गाँधी ने अपना 'राजनीतिक उत्तराधिकारी' घोषित कर दिया था। महात्मा गाँधी की तरह जनता को भी अपने इस प्रिय नेता पर पूर्ण विश्वास है। भारत के भावी भविष्य और उसके भाग्य से सम्बद्ध जवाहर की विश्वस्त कल्पना करते हुए कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा था, 'निस्संदेह नव भारत के सिंहासन पर जवाहरलाल का स्वत्वाधिकार है।......यौवन के नव संचार एवं विजयोल्लास, अन्याय के प्रति दुर्जय संग्राम एवं स्वतंत्रता के प्रति अक्षुण्ण आस्था का प्रतिनिधित्व करने वाले जवाहरलाल भारत के ऋतुराज हैं।" आखिर किन कारणों से बाध्य होकर अंग्रेजों ने अपनी साम्राज्यवादी नीति के कट्टर शत्रु पं० नेहरू के हाथों में इस महादेश का शासन-सूत्र संचालित करने के लिए सर्वोच्च सत्ता सौंपी ! भारतीय राजनीति और उसमें नेहरू का स्थान ज्ञात करने के लिए विहंगम दृष्टि से तात्कालिक घटनाओं की ओर दृष्टिपात करना अत्यन्त आवश्यक है, जिसने उन्हें इस महान उत्तरदायित्व के पद पर आरूढ़ कर दिया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि अंग्रेजों की अस्पष्ट नीति के फलस्वरूप, गाधी जी के प्रयत्न से १९४२ में कांग्रेस ने 'भारत को छोड़ा'

प्रस्ताव पास किया था, तथा अपने इस उद्देश्य-पूर्ति के लिए उसने गाधी जी को सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ करने तथा उसका संचालन करने का पूर्ण अधिकार दे दिया था। अपने रचनात्मक कार्यों के फलस्वरूप इधर कई वर्षों से नेहरू जी, महात्मा गाँधी के बाद इन् आन्दोलनों के प्राण तथा इसके प्रधान नेता हो गये थे। वे कार्यकारिणी के इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, गाँधी जी की इच्छानुसार भावी आन्दोलन की रूपरेखा तैयार करने में जी-जान से जुट गये थे।

बृटिश सत्ता ने यह पहले ही निश्चित कर लिया था कि अबकी काग्रेस कोशान को मिट्टी मे मिलाकर इस अन्दोलन को पूर्णतः कुचल देंगे, जिससे इसे फिर कभी सिर उठाने का साहस ही न हो। अतः आन्दोलन आरम्भ होने के पूर्व ही काग्रेस के सभी नेताओ को एक साथ गिरफ्तार कर, उसे गैरकानूनी संस्था करार कर दिया गया था। परन्तु जनता को अपने नेताओं के निश्चय का ज्ञान हो गया था; अतः उसने नेता विहीन होने पर भी भीषण रूप से विद्रोह आरम्भ कर दिया। सरकार ने आन्दोलन कुचलने के लिए उन सभी बर्बरतापूर्ण नृशंस साधनों का प्रयोग किया जो उसके पास थे। अपने घृणित पक्ष का समर्थन करते हुए, इस अवसर पर बृटिश पार्लियामेन्ट की कामन्स सभा मे, भारत की स्वतंत्रता के कट्टर शत्रु मि० एमरी ने काग्रेस और उसके सिद्धान्तों पर आक्षेप करते हुए तथा महात्मा गाधी और उनकी नीति को झूठा बतलाते हुए कहा था, "काग्रेस एक ऐसा आन्दोलन करने जा रही है जिसमें हिंसा और अहिंसा मे कोई भेद नहीं रखा गया है।"

जिस लोकतत्र के नाम पर अंग्रेज और उनके 'प्रजातंत्र-रक्षक' साथी, जर्मनी और जापान की फासिस्ट शक्तियों से जीवन और मरण का सग्राम कर रहे थे, उसीके सारे सिद्धान्तो की हत्या उन्हीं अंग्रेज साम्राज्यवादियों ने भारत की सबसे बड़ी, जनप्रिय लोकतंत्री सस्था काग्रेस को कुचल डालने के उद्देश्य से कर डाला। जिससे कि वह अपने देश को स्वतंत्र करने के लिए, और उसमें जनतंत्रात्मक—"जनता का, जनता

के लिए, जनता के द्वारा"—शासन की स्थापना का सफल प्रयास न कर सके। उनके दानवीय कार्यों द्वारा आतंक और भय की स्थापना हो जाने के फलस्वरूप, यद्यपि थोड़े समय के लिए अंग्रेज शासकों को अल्प सफलता मिल तो अवश्य गई, किन्तु नेता विहीन होते हुए भी भारत की जनता ने जिस साहस तथा देश-प्रेम की भावना से पूर्ण, साम्राज्यवादी शासन के प्रति अपनी घृणा प्रकट की, उससे अंग्रेजों की आत्मा भी कांप उठी, और उन्हें यह निश्चय हो गया कि अब और अधिक समय तक भारत पर विदेशी शासन बनाये रखना असम्भव है।

इसके अतिरिक्त बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में भारत के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने में ही वे अपनी भलाई समझने लगे थे। विश्व, द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ से ही दो गुट्टों में विभक्त हो गया था। एक तो अमेरिका, इङ्गलैण्ड आदि का पूँजीवादी गुट्ट, दूसरा सोवियत रूस का साम्यवादी गुट्ट, जो सर्वहारा के अधिनायकत्व के अन्तर्गत मज-दूरों के विश्व-स्वातंत्र और सगठन, तथा उनके राज्य का स्वप्न देख रहा था। भारत एक अतिविशाल देश है। गणना के अनुसार विश्व का हर पाँचवा व्यक्ति भारतीय है। इतने बड़े राष्ट्र और उसकी इतनी बड़ी जनसंख्या को उसके जन्म सिद्ध अधिकारों से दीर्घकाल तक वंचित रख उनके रोष और घृणा का पात्र बनना, इंगलैण्ड और अमेरिका आदि पूँजीवादी राष्ट्रों के स्वार्थतापूर्ण अस्तित्व के लिए हानिकर हो सकता था। अंग्रेजों के बर्बरतापूर्ण व्यवहार तथा शोषण से त्रस्त भारतीय जनता तथा नेताओं का ध्यान पहले ही उन्नतिशील रूस की ओर जा चुका था और वे उससे प्रभावित भी हो चुके थे। इस बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए, भविष्य की आशंकाओं से त्रस्त पूँजीवादी राष्ट्रों, विशेषतः अमे-रिका के दबाव तथा अपने भावी स्वार्थों की रक्षा के निमित्त, पहले ही से भीषण कांग्रेसी आन्दोलन से त्रस्त, विवश इङ्गलैण्ड को मित्रता का ढोंग कर भारत के क्षत-विक्षत घावों पर मलहम लगाने का उपक्रम करते हुए उसे बेमन से स्वतंत्रता देने का निश्चय करना पड़ा। लेकिन फिर भी

भारत की असीम और अजेय आन्तरिक शक्ति को शिथिल और नष्ट कर देने के उद्देश्य से, जिससे वह आने वाले युग मे अपने प्रभाव से विश्व की स्वार्थपूर्ण गलित तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियों का नियंत्रण न कर सके, उन्होंने भारत को दो ऐसे भागो में विभाजित करने का कुचक्र किया जो हमेशा आपसी वैमनस्य मे उलझे रहकर एक दूसरे की ही शक्ति क्षीण करते रहने का प्रयत्न करे। इंगलैण्ड का यह अमानवीय प्रयत्न बहुत अंशो तक सफल भी हुआ। इतिहास और राजनीति के विद्यार्थी जिन्होंने विशेषतः इंगलैण्ड के शक्ति-संतुलन (Balance of power) के लिए विश्व की राजनीति में किये गये घृणित कार्यों का अध्ययन किया होगा, वे उसके भारत के साथ किये गये इस अन्तिम कार्य तथा उसमें छिपे कूटनीतिक तात्पर्य के स्वार्थमय अंश को अवश्य ही अवलोकित कर लेगे।

लार्ड वेवेल के शासन-काल मे सन् १९४५ से ही भारत को थोड़ी-थोड़ी करके सत्ता हस्तातरित करने का निश्चय कर लिया गया था। इसी उद्देश्य से जून मे लार्ड वेवेल ने शिमला मे 'सर्वदल-सम्मेलन' बुलाने का निश्चय किया, जिसका उद्देश्य, केन्द्र में सर्वदली सरकार की स्थापना करना था। इस योजना के कारण भारत का निस्तब्ध वातावरण फिर से स्फूर्तिमय हो गया। यद्यपि प्रारम्भ मे तो वह कान्फ्रेन्स सफल होती मालूम पड़ी, किन्तु अंत मे मुस्लिम लीग के नेता मि० जिन्ना की जिद और साम्प्रदायिक भावना ने उसे सफल नहीं होने दिया। उन्होंने कांग्रेस और गाँधी जी के प्रति क्रमशः, 'सजातीय हिन्दू संस्था' और 'सजातीय हिन्दू' कह कर असतोष तथा अविश्वास प्रकट किया था। उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता था कि कांग्रेस मुसलमानों के स्वार्थों का भी ध्यान रख कर कार्य करेगी।

२३ मार्च १९४६ को वृटिश सरकार ने अपने मंत्री-मंडल के तीन सदस्यों का एक कमीशन भारत को इस उद्देश्य से भेजा कि वह वायसराय की सहायता से वहाँ के प्रमुख दलों के नेताओं से मिल कर समझौते

की बातचीत करे तथा भारतीय संविधान के निर्माण के विषय में विचार-विनिमय करे। कमीशन ने भारत पहुँच कर सरकारी पदाधिकारियों से तथा विभिन्न दलों के नेताओं से सम्पर्क स्थापित कर उनका मनोभाव ज्ञात किया। कुछ ही दिनों में यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय नेताओं का मतभेद अत्यन्त दृढ़ है तथा उसे आसानी से नही मिटाया जा सकता। लीगी नेता स्पष्ट तथा खुले शब्दो मे पाकिस्तान की माग कर रहे थे। फिर भी कतिपय प्रदेशों को समूहबद्ध करने की जो योजना कमीशन ने प्रस्तुत की थी उससे भारत के उत्तर-पश्चिमी, और उसी प्रकार उत्तरपूर्वीय क्षेत्रो पर मुसलमानों के नियंत्रण होने की माग की पूर्ति होती थी। दोनो दलों—कांग्रेस तथा लीग ने—इस योजना को मान लिया था। मि० जिन्ना ने तो प्रान्तों के समूहबद्ध किये जाने की योजना यह कह कर लीग वालों को मान लेने के लिए सलाह दी थी कि इससे पाकिस्तान की नींव पड़ जाती है,और दो वर्ष के भीतर ही पूर्ण पाकिस्तान प्राप्त हो जाने की सम्भावना है। परन्तु नेहरू तथा अन्य नेताओ ने इस योजना के कार्यान्वित किये जाने में किसी प्रान्त या उसके किसी भाग को, उसके निवासियों की इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती किसी समूह मे न रखने, यानी स्वभाग्य निर्णय के सिद्धान्त पर जोर दिया था। केन्द्र में संयुक्त दली सरकार बनने में इसलिए रुकावट खडी हुई कि मि० जिन्ना ने, राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य मुसलमानों पर अविश्वास प्रकट करते हुए माँग की थी कि, लीग के लिए निर्धारित सीट के अतिरिक्त भी जो सीटे साम्प्रदायिक आधार पर मुसलमानो को दी जाये उनपर मुस्लिम लीग के ही सदस्यों को निर्वाचित होने का अधिकार हो, न कि राष्ट्रीय कांग्रेस के मुस्लिम सदस्यों को; क्योंकि वे मुसलमानों का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं करते। तत्कालीन स्थिति तथा मि० जिन्ना के हठ से ऐसा लग रहा था कि भारत मे कोई भी ऐसी सरकार स्थापित नहीं हो सकती जिसको सम्पूर्ण जनता का सहयोग और विश्वास प्राप्त हो, तथा जिसमे सभी दलो का प्रतिनिधित्व हो; क्योंकि

काग्रेसी नेताओं ने मि० जिन्ना को समझाने का अथक प्रयत्न किया पर वे किसी भी प्रकार राजी होने के लिए तैयार न थे। मि० जिन्ना के शब्दो मे, "यदि वायसराय ने पं० जवाहरलाल नेहरू को गवर्नर जेनरल की इक्जेक्यूटिव कौंसिल के निर्माण का अधिकार, तथा उनके परामर्श को कार्यान्वित करने का वचन दिया है तो मेरे लिए इस आधारजनित स्थिति का मानना असम्भव है।"

फलस्वरूप लीग के सहयोग के बिना ही अन्तःकालीन सरकार बनी। नयी सरकार ने २ सितम्बर से अपना कार्य आरम्भ कर दिया। वह मुस्लिम लीग के सक्रिय आन्दोलन का सामना करने के लिए तैयार थी। मुस्लिम लीग ने भी अपने निर्धारित कार्यक्रम—सीधी चोट (Direct Action)—को घृणित ढंग से आरम्भ कर दिया। पंजाब मे लीग-आन्दोलन के फलस्वरूप भारी अशान्ति पैदा हो गई, और जब उसे सयुक्त दली मंत्री मण्डल का अन्त करने मे सफलता न मिली, तब सीमाप्रान्त की काग्रेसी मिनिस्टरी को गिराने का हिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ किया गया। कलकत्ते मे १६ अगस्त से ही भीषण हत्याएँ और अग्निकांड हो रहे थे, तत्पश्चात् नोआखाली की बारी आयी। ऐसा लगता था कि मजहब के नशे से प्रमत्त मनुष्य ने मनुष्यता खो दी है। लागी बहुमत प्रान्तों में अल्पसख्यक हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार होते रहे, जिन्हे रोकने मे उनकी सरकारे असमर्थ थीं, और जिनके सम्बन्ध में प्रान्तीय स्वराज्य के कारण न तो केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप कर सकती थी और न गवर्नर जेनरल अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग ही कर सकते थे। ऐसी भीषण परिस्थिति के बीच नेहरू-सरकार का २ सितम्बर १९४६ को जन्म हुआ था। महामना मालवीय जी के शब्दों में इस पुण्य तिथि को "अपने देश मे अपना राज्य स्थापित हुआ।"

अन्तःकालीन सरकार बन तो गई, किन्तु उससे लीग के अलग होने के कारण न तो काग्रेस को सन्तोष था न तो वायसराय को ही। अतः सितम्बर के अन्त मे भूपाल के नवाब ने मध्यस्थ का कार्य किया। मि०

जिन्ना, पं० नेहरू तथा लार्ड वेवेल में डेढ़ महीने तक इसी आशय का पत्र व्यवहार होता रहा। अन्त में अपने साम्प्रदायिक स्वार्थों की रक्षा के लिए मि० जिन्ना ने अन्तःकालीन सरकार में शामिल हो जाना ही उचित समझा। मुस्लिम लीग ने अपने ५ मनोनीत नेताओं के नाम भी भेज दिये।

अन्तःकालीन सरकार में आते ही लीगी नेताओं ने अड़ङ्गा की नीति अख्तियार की। वे पं० जवाहरलाल नेहरू को अपना नेता मानने के लिए तैयार न थे। फलस्वरूप संयुक्त उत्तरदायित्व की सब आशाएँ विफल होने लगीं। एक ही देश के नेताओं द्वारा बने हुए मंत्री मंडल के सदस्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर एक दूसरे के प्रतिकूल अपने विचार प्रकट करने लगे। अब लीगी नेताओं को निकालने से देश की अशान्तिपूर्ण परिस्थिति और भी अधिक बिगड़ जाती, अतः भीतर ही भीतर कांग्रेस और लीग में समझौता कराने का प्रयत्न जारी रहा। किन्तु मुस्लिम लीग ने संविधान सभा में सम्मिलित न होने की घोषणा कर दी तथा पाकिस्तान की माँग करती रही।

१९४७ के मार्च में लार्ड वेवेल चले गये तथा लार्ड माउन्टबेटन गवर्नर जेनरल होकर भारत आये। इसके पूर्व फरवरी में बृटिश प्रधान मन्त्री ने स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि "सम्राट की सरकार स्पष्ट रूप से अपने इस निश्चय की घोषणा करती है कि वह जून १९४८ तक, उत्तरदायी भारतीयों के हाथों में अधिकार सौंपने के कार्य को सम्पन्न कर देगी।" देश की साम्प्रदायिक स्थिति, तथा अमानुषिक रक्तपात होते हुए देखकर अन्त में कांग्रेस को देश-विभाजन के प्रस्ताव को मानना पड़ा; और १५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान नाम के दो उपनिवेश बनाकर हमेशा के लिए भारत की अविभाज्य आत्मा को खण्डित कर दिया गया। इसके पूर्व नेहरू जी को ब्रिटिश मंत्रीमण्डल के निमंत्रण पर इंगलैण्ड जाना पड़ा था, परन्तु वहाँ भी लीगी नेताओं से समझौता करने में वे असमर्थ रहे। अत. ९ दिसम्बर से आरम्भ होने वाली विधान-परिषद् के लिये उन्हें लौट आना पड़ा था। ३ जून १९४७ को पं० नेहरू

ने एक घोषणा प्रकाशित की जिसमे अपने और कांग्रेस के द्वारा भारत के विभाजन की स्वीकृति की असहायतापूर्ण अवस्था पर शोक प्रकट करते हुए उन्होंने कहा था, "जिस संयुक्त भारत के लिए हम लड़ते और काम करते आये हैं उसका आधार जबरदस्ती नहीं, जनता की स्वेच्छा होना चाहिए। हो सकता है कि इस प्रकार हम संयुक्त भारत के ध्येय को जल्दी प्राप्त कर सके।" ४ जून को गाधी जी ने विभाजन के प्रति अपने विचार प्रकट किये थे, "जनता को यह विस्मरण न कर देना चाहिए कि कांग्रेस को इस स्थिति को मानने के लिए बाध्य किया गया है।"

४ जुलाई सन्, १९४७ को ही, जबकि भारतीय स्वतन्त्रता बिल बृटिश पार्लियामेंट मे पेश किया गया था तभी से मोटे तौर पर देश का विभाजन हो गया था। १९ जुलाई को मुस्लिम लीग और उसके नेताओं द्वारा पाकिस्तान की निरन्तर मॉग, बृटिश सरकार की भेद और शासन की नीति के फलस्वरूप भारत दो स्वतन्त्र डोमीनियनों मे विभक्त हो गया। भारत अखण्ड न रह कर खण्डित हो गया, और उसकी उस मौलिक एकता की इतिश्री हो गयी जो वैदिक काल से उस समय तक अकाट्य तथा सर्वमान्य थी, और जो देश की भौगोलिक रचना के अतिरिक्त उसके सांस्कृतिक जीवन तथा उसकी इच्छाओं और आकांक्षाओं का मूर्तिमान स्वरूप थी। बृटिश सरकार ने देश को छोडते-छोडते परिस्थिति को जटिलतर बनाने वाली एक और बात कर डाली थी। भारतीय रियासतें, जो समस्त बृटिश शासनकाल में व्यवहारिक दृष्टि से भारत-सरकार के आधीन थीं, उन सब बन्धनों से मुक्त कर दी गई जो संधियों, सनदों, सम्बन्धों तथा चलनों पर निर्भर थे। प्रभुसत्ता हटा ली गयी। इस प्रकार भारतीय नवाबों तथा नरेशों को यह समझने का अवसर मिला कि वह नवनिर्मित भारत-सरकार से सर्वथा स्वतन्त्र हैं और स्वतन्त्र शासकों की भाँति उनसे व्यवहार कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त भारत की आन्तरिक तथा अंतर्राष्ट्रीय स्थिति भी बहुत भयानक एवं निराशाजनक थी। यूरोपीय महासमर के प्रभाव

के कारण भारत मे अन्न-वस्त्र का अत्यन्त अभाव था। मुद्रा-बाहुल्य के कारण वस्तुओं का मूल्य अत्यधिक बढ गया था। चोर बाजार गर्म था और मुनाफाखोरो की बन आयी थी। श्रमजीवियो की कमी थी और जो थे वे ऐसे लोगों के प्रभाव में थे, जो उत्पादन वृद्धि द्वारा देश का हित-साधन न करके, उन्हे वर्ग।संघर्ष की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे। साम्प्रदायिक वैमनस्य के कारण हिन्दू और मुसल्मानों मे फूट का अस्तित्व था तथा उनके कुत्सित कार्यों पर मानवता धिक्कार रही थी। दो सौ वर्ष के विदेशी शासन के कारण, भारतीयों का नैतिक अधः पतन इतना अधिक हो गया था कि बहुत से मनुष्य, मानव जीवन के उच्च आदर्शों को भूल कर, अपने सब कार्यों को स्वार्थपरायणता वश करते थे। सरकारी नौकर तक इस प्रकार के अधःपतन से मुक्त न थे। उनमें से कुछ साम्प्रदायिक पक्षपात की ओर झुके थे और कुछ आर्थिक लोभ की ओर। मानसिक दासत्व, राजनीतिक दासत्व की अपेक्षा कई गुना अधिक था, और उसका अस्तित्व उस शिक्षित समुदाय पर भी था जिसके अधिकाश व्यक्ति राजनीतिक स्वतन्त्रता का राग अलापते तथा अन्य सब बातों मे राष्ट्रीय उन्नति के लिए प्रयत्नशील थे। यह थी देश की आन्तरिक स्थिति, जब कुटिल बृटिश सरकार ने भारत का शासन भारतीयों के हाथ मे देने का निश्चय किया।

अतर्राष्ट्रीय परिस्थिति इससे भी अधिक चिन्ताजनक थी। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विजयी राष्ट्र अपनी शक्ति-वृद्धि करने तथा स्वार्थ-साधन मे लिप्त थे। वे दो प्रधान गुट्टो मे विभक्त थे, जिनमें से एक लाल रूस को अपना नेता मानता था, और दूसरा 'सफेद पोश' इगलैड और अमेरिका को अपना नायक। ससार के विभिन्न देशों मे भारतीयों के साथ अत्याचार हो रहे थे, और किसी देश मे भारत का कोई ऐसा राजदूत अथवा प्रतिनिधि नही था जो प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा करते हुए वहाँ अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण को समझाता तथा उसके अनुकूल कार्य करता। पाकिस्तान की नव-निर्मित डोमीनियन के कारण अतर्राष्ट्रीय

परिस्थिति और भी जटिल हो गयी थी। इधर विभाजित भारत मे भी धर्म के नाम पर पूर्वी और पश्चिमी पंजाब मे अनेक हिन्दू और मुसलमान हताहत हो रहे थे। इसके कारण शरणार्थियों की एक नयी विकट समस्या नवजात दुधमुहे भारतीय राष्ट्र के समक्ष उपस्थित थी।

ऐसे सकट-काल में देश के शासन-भार को सम्हाल कर उसे उन्नति के पथ की ओर ले जाना सरल कार्य न था। सम्पूर्ण देश अबाध रूप से ऐसे व्यक्ति को ढूँढ़ रहा था जो भगवान शिव की भाँति इन विषम परि-स्थितियों का कालकूट विष धारण कर, नीलकंठ की तरह उन्हें भावी की चिन्ता और भय से मुक्त करता। ३५ कोटि व्यक्तियों की दृष्टि सहसा नेहरू पर केन्द्रित हो गयी और अचानक उनके हृदय गाँधीजी के पूर्व-कथित शब्दों से झंकृत हो उठे, "राष्ट्र उनके हाथों मे सुरक्षित है।" अतः १५ अगस्त १९४७ को पं० जवाहरलाल नेहरू एक स्वर से स्वतंत्र भारतीय गणतन्त्र के प्रथम प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए और उन्होने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। इसके पूर्व २२ जुलाई को अशोक-चक्र के साथ, काग्रेस के तिरगे झडे को भारतीय सविधान सभा ने भारत का राष्ट्रीय झंडा स्वीकार कर लिया था। १५ अगस्त को आधी रात मे २०० वर्ष का हमारा दासत्व धुल गया और स्वतन्त्र भारत मे नया प्रभात हुआ।

ब्रिटिश शासकों द्वारा सत्ता हस्तान्तरित होते समय नेहरू जी ने स्वतन्त्र भारत की भावी शासन-नीति तथा कार्यक्रम पर कुछ प्रकाश डाला था। गृह-शासन में अल्पसख्यकों को धर्म, संस्कृति और भाषा की स्वतन्त्रता का आश्वासन देने के पश्चात् उन्होने कहा था, "हमारा ध्येय है भारत के जनसाधारण, किसान और मजदूर को स्वाधीनता और सुयोग देना; अज्ञान, बीमारी और गरीबी के विरुद्ध लड़ना और उनको मिटाना; समृद्ध, प्रगतिशील और सम्पन्न जनतन्त्र का निर्माण करना, ऐसी राज-नीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था बनाना जिससे देश के प्रत्येक नर-नारी को समुचित अधिकार और जीवन के पूर्ण विकास का अवसर मिल सके।"

विधान-परिपद् और नेहरू

९ दिसम्बर १९४६ को वयोवृद्ध डा० सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में विधानसभा का अधिवेशन बडे समारोह के साथ आरम्भ हुआ। ११ दिसम्बर को डा० राजेन्द्र प्रसाद उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। डा० राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार विधानसभा के अधिवेशन के आरम्भ मे २९६ सदस्यों में से २१० उपस्थित थे। उनमे से १५५ हिन्दू, ३० परिगणित जातियों, ५ सिक्खों, ६ भारतीय ईसाइयो, ५ पिछडी हुई जातियो, ३ अंग्रेज भारतीयों, ३ पारसीयों और ४ मुसलमानो के प्रतिनिधि थे। सम्प्रदाय की दृष्टि से मुसलमानों के अतिरिक्त भारतीय संविधानसभा सब दलो की प्रतिनिधि स्वरूप थी। भारतीय विधानसभा में मुसलमानों की संख्या की यह अल्प स्थिति मुस्लिम लीग के उस साम्प्रदायिक निर्णय (पाकिस्तान) के कारण थी। अन्यथा पहले मुसलमानों के प्रतिनिधियों की संख्या ८० निर्धारित हुई थी।

१३ दिसम्बर को पं० जवाहरलाल नेहरू ने परिषद् के उद्देश्य और लक्ष्य (objectives) के सम्बंध मे प्रस्ताव उपस्थित किया; जिसमे भारत का लक्ष्य "सम्पूर्ण सत्ताधिकारी प्रजातंत्रात्मक गणराज्य" बतलाया गया था। उसे उपस्थित करते हुए नेहरू जी ने इस आशय का वक्तव्य दिया; "हम जो शासनविधान बनाने जा रहे हैं, यह प्रस्ताव उसका भाग नही है, इसलिए इसे उसका भाग समझ कर विचार करना ठीक न होगा। इस परिषद को चाहे जैसा विधान बनाने की पूर्ण स्वतंत्रता है, और जो लोग इसमें सम्मिलित नहीं हुए हैं उन्हे भी, जब वे परिपद मे

शामिल होंगे, पूरा हक होगा कि वे विधान को चाहे जैसा रूप दें। यह प्रस्ताव महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार को उपस्थित करता है, जिसके विषय में किसी दल या व्यक्ति को शायद कोई आपत्ति न होगी। यह परिषद् के आगे के कार्यों में किसी प्रकार का दखल नहीं देता, और न यह दो दलों के किसी वार्तालाप में ही बाधा उपस्थित करता है। एक तरह से यह हमारा काम सीमित करता है यदि आप इसे सीमित करना कह सके।...........जो नई दिक्कतें सामने आ गयी हैं, वे इसलिए उठ खड़ी हुई हैं कि बृटिश मंत्री-मंडल तथा अन्य व्यक्तियों ने हाल में ही कुछ खास तरह के वक्तव्य दिये हैं: लेकिन मैं आशा करता हूँ कि ये दिक्कते हमारा रास्ता बंद न कर सकेंगी।........हम में से अधिकांश पिछले वर्षों में एक पीढ़ी से अधिक समय तक मृत्युछाया की दुर्गम घाटी से गुजर चुके हैं और जरूरत हो तो फिर उसी रास्ते से गुजरने के लिए तैयार हैं।"

"उस विकट समय में भी हम यह सोचते थे कि युद्ध करने और विध्वंस होने के पश्चात् रचना और विकास का भी अवसर आयेगा। अब ऐसा लगता है कि स्वतन्त्र भारत के निर्माण-कार्य का शुभ अवसर आ उपस्थित हुआ है। हम इस शुभ मुहूर्त का उत्साह से स्वागत करते हैं। हमारे सामने पिछले महीनों में जो कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, उनके होते हुए भी हमने परस्पर सहयोग का वातावरण उत्पन्न करने की ईमानदारी से काफी चेष्टा की।......हम एक महान कार्य की सिद्धि के लिए संकल्प-बद्ध हैं। अतः अपना प्रयत्न जारी रखेंगे और मुझे आशा है कि बराबर प्रयत्नशील रहने से अन्त में सफल भी रहेंगे।......हमारे कुछ भाइयों ने गलत रास्ता पकड़ा है।......हमें इस देश में एक साथ रहना है और एक साथ ही काम करना है, आज नहीं तो कल या परसों सही। इस-लिए उन बातों से हमें दूर रहना चाहिए, जो उस भविष्य के निर्माण में कठिनाइयाँ उत्पन्न करें, जिसके लिए हम परिश्रम कर रहे हैं। हमें अपने देशभाइयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए पूरी-पूरी कोशिश

करना चाहिए, परन्तु सहयोग के माने यह नही है और न होंगे कि हम जिन आधारभूत सिद्धान्तों पर खड़े हैं, जिन पर राष्ट्र को खड़ा रहना चाहिए, हम उन्ही को त्याग दे।......"

"गत महायुद्ध से छुट्टी पाने के पश्चात् हम एक ऐसे युग मे खड़े हैं, जिसमें लोग भावी युद्ध के विषय मे अस्पष्ट पर जोरदार चर्चा कर रहे हैं। ऐसे ही समय मे नव भारत का जन्म हो रहा है। विश्व की अशान्ति के बीच मे ही शायद नव भारत का अभ्युदय श्रेयस्कर हो, लेकिन इस अवसर पर हमारी दृष्टि साफ होनी चाहिए। हमारे समक्ष आज विधान बनाने का महान कार्य है। हमे वर्तमान के महान दायित्व को भी सम्हालना है और भविष्य के कठिन दायित्व को भी निभाना है। ऐसे अवसर पर हमे इस या उस दल के छोटे-मोटे लाभ मे अपने आप को नहीं भुला बैठना चाहिए।"

"कुछ लोगो ने मेरा ध्यान इस बात की ओर खीचा कि प्रस्ताव मे 'रिपब्लिक' शब्द का होना भारत की देशी रियासतों के शासकों को शायद कुछ नाराज न कर दे। हो सकता है कि इस शब्द से वे नाराज हो, लेकिन मै स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मै व्यक्तिगत तौर से कहीं भी राजतन्त्र पसन्द नही करता और आज के संसार मे राजतन्त्र तेजी से मिटता जा रहा है, किन्तु इस विषय मे व्यक्तिगत विचार का प्रश्न नहीं उठता। रियासतों के विषय मे वर्षों से हमारी सर्वोपरि राय यह रही है कि आनेवाली स्वतंत्रता मे रियासतों की जनता को पूर्ण अधिकार होना चाहिए। यह कैसे हो सकता है कि विभिन्न रियासतों की प्रजाओं मे स्वाधीनता की मात्रा और रूप भारत की जनता से भिन्न हो? रियासते भी हमारे सघ का अङ्ग होंगी। हम चाहे विधान मे लिख दे या आपस में सहमत हो जाये कि स्वाधीनता का रूप देशी रियासतों और भारत मे समान होना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से मै यह पसन्द करता हूँ कि भावी रियासती सरकारो की रचना और रूप भी एक समान हो। यह ऐसा प्रश्न है कि जिसपर देशी रियासतों से बात की जायगी और उनके सह-

योग से यह प्रश्न हल किया जायेगा।......अगर किसी खास रियासत की प्रजा किसी खास तरह का शासन चाहती है, तो फिर वह शासन चाहे राजतन्त्र ही क्यो न हो, वहाँ की प्रजा अपनी मर्जी के अनुसार उसे अपना सकती है।"

"परिषद जानती है कि बहुत से सदस्य अनुपस्थित हैं। हमें इसका दुःख है, क्योंकि हम भारत के अधिक से अधिक भागों और अधिक से अधिक दलो के प्रतिनिधियों से मिलना चाहते हैं। हमने एक महान कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है जिसमें हम सब का सहयोग चाहते है, क्योंकि भारत के जिस भविष्य की कल्पना हमने की है वह किसी धार्मिक, प्रान्तीय या अन्य प्रकार के दल विशेष की नहीं है।...... हमें हर काम भारत के ४० करोड़ निवासियों को दृष्टि में रखकर करना है।......ताकि दुनिया यह मान ले कि इस महान अवसर पर हमने वैसा ही कार्य किया है जैसा हमें करना चाहिए था।"

महात्मा गाधी की अनुपस्थिति की चर्चा करते हुए पं० नेहरू ने कहा, "एक और महापुरुष अनुपस्थित है।......वह पुरुष हमारी जनता और हमारा महान नेता, हमारे राष्ट्र का पिता, इस परिषद् का जनक, और जो बीत चुका तथा जो आने वाला है उसका निर्माता है। वह आज हमारे बीच में नहीं है, क्योंकि अपने आदर्श की प्राप्ति में वह भारत के एक सुदूर कोने में कार्य-रत है। लेकिन मुझे तनिक भी सदेह नहीं कि उसकी महान आत्मा हमारे साथ है और हमारे कार्य को आशीर्वाद दे रही है।"

"हम भारत के लिए एक नवीन शासन-विधान बनाने जा रहे हैं। यह प्रत्यक्ष है कि हम भारत में जो कुछ करने जा रहे हैं, शेष संसार पर उसका काफी असर पड़ेगा। आज भी जब की हम स्वतंत्रता के सिंहद्वार पर खड़े हैं, भारत संसार की समस्याओं में महत्त्वपूर्ण भाग लेने लग गया है। निरतर उसमें वृद्धि होगी; अतः भारत के विधान-विधायक विस्तृत दृष्टिकोण रखे, यह आवश्यक है। हमारा समस्त ससार से विश्व-बंधुत्व

का नाता है। हम सब देशों के साथ मित्रता चाहते हैं, अतीत में संघर्ष का लम्बा इतिहास रहते हुए भी हम इंगलैण्ड के साथ भी मित्रता चाहते हैं।"

२० जनवरी के द्वितीय अधिवेशन में नेहरू जी का यह प्रस्ताव विधान परिषद द्वारा स्वीकार कर लिया गया। नेहरू जी अपने बहुमूल्य सलाह से विधान निर्मात्री समिति को पूर्ण सहयोग देते रहे। भारतीय विधान की पाण्डुलिपि तैयार हो जाने के पश्चात् विधान-परिषद् ने मई १९४८ में उसे मान्यता प्रदान कर दी।

एशियाई सम्मेलन और नेहरू

"एशिया में एक नया जीवन लहरें मार रहा है और एक पुराना युग समाप्त हो चुका है। अब सदियों बाद फिर भारत अपने पड़ोसी देशों और मित्रों के लिए अपने द्वार खोल रहा है, जिससे वह अपनी इस प्राचीन भूमि पर उन सब देशों के प्रतिनिधियों से मिलकर उनके साथ फिर से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सके। शान्ति, स्वतन्त्रता और प्रगति के हेतु को सामने रखकर इस दिशा में पहला कदम उठाते हुए भारत-वर्ष अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। इस सामान्य हेतु से प्रेरित होकर एशिया के विविध भागों से बहुत से महत्वपूर्ण व्यक्ति हमारे देश में आ रहे हैं। पिछले कटु अनुभव ने उन्हें सिखला दिया है कि कोई भी एक देश अन्य देशों से सहयोग किये बिना न तो अपनी रक्षा ही कर सकता है, और न अपनी स्वतन्त्रता को ही कायम रख सकता है।"

भारतीय स्वतन्त्रता के अभ्युदय के पश्चात् किये गये अपने प्रथम महान् कार्य एशियाई-सम्मेलन के अवसर पर पं० जवाहरलाल नेहरू का उपर्युक्त संदेश भारत की राजधानी दिल्ली के प्राचीन किले से—दिल्ली, जहाँ भारतीय इतिहास की रूप-रेखा निर्मित हुई थी और जो अपने गर्भ में ७ साम्राज्यों के न जाने कितने मीठे और कड़वे तथ्यों को छिपाये हुए है—प्रसारित हुआ। सम्मेलन २३ मार्च १९४७ को आरम्भ हुआ। यह सम्मेलन भारत तो क्या समस्त एशिया में अपने ढंग का अकेला था। दिल्ली अपने सम्मानित अतिथियों के स्वागत के लिए उमड़ पड़ी थी। सम्मेलन जिस वातावरण में हुआ वह अत्यन्त प्रभावोत्पादक था। सम्मेलन के प्राण पं० जवाहरलाल नेहरू के निमंत्रण का एशियाई देशों से आशातीत

उत्तर मिला। सम्मेलन की अध्यक्षा श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मर्मस्पर्शी शब्दों में अपने हृदय के भाव व्यक्त किये थे, "एशियाई देशों को एक दूसरे के निकट लाने की कल्पना कई वर्षों से विचार-जगत में भ्रमण कर रही थी, किन्तु उसके व्यावहारिक रूप धारण करने के लिए अनुकूल समय और परिस्थिति की आवश्यकता थी। वह अनुकूल समय भी आया और इस दिशा में पहला कदम उठाने का सौभाग्य भारत को ही प्राप्त हुआ। देशभक्त स्व० श्री चित्तरंजन दास की यह प्रथम प्रिय कल्पना थी। इस ऐतिहासिक अवसर को देखने के लिए काश वे जीवित रहते। एशिया का भूतकाल महान था; किन्तु पिछली कुछ शताब्दियों से वह पश्चिम के लोलुप राष्ट्रों की अर्थलिप्सा का शिकार हुआ और राजनीतिक बन्धनो मे जकड़ा जाकर शोषण का क्रियास्थल बन गया।"

"अब एशिया की काल-रात्रि का अन्त हो गया है। उसके राजनीतिक बन्धन या तो टूट चुके हैं या टूट रहे हैं। वह अपनी जडता और स्थिरता को छोड कर आगे कूंच करने के लिए कटिबद्ध हो रहा है।" नेहरू जी के शब्दों मे, "अब वह जमाना गुजर गया है जब एशियाई देश पश्चिमी राष्ट्रों की चापलूसी मे आवेदनकर्ता के रूप में हाथ बांधे खड़े नजर आते थे। अब उन्हे शतरंज के मुहरे नहीं बनाया जा सकता। उनका अपना अस्तित्व और व्यक्तित्व होगा और वे नये विश्व की रचना और निर्माण मे, अपनी ऐतिहासिक एवं सास्कृतिक परम्पराओं के अनुसार भाग लेंगे।"

वह कौन सा आदर्श है जो नव-जागृत एशिया को उस समय भी प्रेरित और अनुप्राणित कर रहा था; और जिसकी अभिव्यक्ति नेहरू और श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा अन्य एशियाई प्रतिनिधियों ने अपने वक्तव्य मे की थी? वह है एक मात्र एशिया के भ्रातृ-प्रेम द्वारा विश्व-ऐक्य की स्थापना। साम्राज्यवाद के कष्टों से अवगत एशिया ने सकुचित राष्ट्रवाद को तज कर, संयुक्त एशिया, विश्व-एकता और विश्व-सहयोग के लिए पहला प्रयत्न किया था।

एशियाई सम्मेलन के सम्बन्ध में नेहरू जी ने कहा था, "इस सम्मेलन में न तो कोई नेता है और न कोई अनुयायी। समस्त एशियाई देशों को समान रूप से, समान कार्य के लिए एक साथ कार्य करना है। भारत भी एशिया के विकास में महत्वपूर्ण भाग लेना चाहता है।" उनका यह पूर्ण विश्वास था कि "संसार में स्थाई शान्ति तभी हो सकती है, जब ससार के समस्त राष्ट्र स्वतंत्र हो जाये और सभी प्राणियों को स्वतंत्रता एवं व्यक्तिगत सुरक्षा प्राप्त हो।"

करवट बदल कर जागते एशिया की ओर इंगित करते हुए नेहरू जी ने सभी एशियाई राष्ट्रों को सदेश दिया था कि पुनर्निर्माण के लिए हमे "जन साधारण की ओर ध्यान देना होगा, और उनके चतुर्मुखी विकास का मार्ग प्रशस्त करना होगा, जिनकी अब तक बहुत ही उपेक्षा की गई है।" उन्होंने एक स्थान पर कहा था, "एशिया के देश बहुत पिछडे हुए हैं और उनके जीवन का मान अन्य देशों की तरह नहीं है। इस असमानता के प्रश्न को हमे तत्काल हल करना होगा। हमे सभी मनुष्यों के लिए समान आदर्श रख कर अपने राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक ढाँचे को खडा करना होगा, ताकि वे उन समस्त भारों से मुक्त हो जाये, जिनसे उनका व्यक्तित्व दबा हुआ है।"

श्रीमती सरोजिनी नायडू के शब्दों मे, एशिया के स्वर्णयुग की कल्पना को पूर्ण करने के पहले हमें "जनसाधारण को शोक, दुःख, शोषण, कष्ट, दरिद्रता, अज्ञान, विनाश और मृत्यु के मुख से बचाना होगा तभी वे नये विश्व की रचना करने में अपना योग दे सकेंगे।" 'जनसाधारण का उत्थान ही प्रगति की कसौटी होगी' का महत्वपूर्ण लक्ष्य इस सम्मेलन मे निश्चित हुआ।

२३ मार्च १९४७ को श्री जवाहरलाल नेहरू के कर-कमलों द्वारा, नये उत्साह और नई आशा से इस सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। इस अभूतपूर्व ऐतिहासिक सम्मेलन में एशिया के प्रायः समस्त राष्ट्रों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ था। यह पहला अवसर था जब कि ससार की

आधी से अधिक जनता के लगभग २५० प्रतिनिधि अपनी सास्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति के साधनों पर विचार करने के लिए भारत की पवित्र भूमि पर एकत्रित हुए थे। एक विशाल रग-मंच पर एशिया के विराट मानचित्र के दोनों पक्षों में एशिया के विभिन्न राष्ट्रों की पताकायें एक पास लगी अपनी मित्रता की सूचना दे रही थीं। सम्मेलन २३ मार्च की शाम को आरम्भ हुआ। ज्योंही विशाल तोरण के नीचे से विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों ने पंडाल में प्रवेश किया कि सारा मंडप गगनभेदी करतल ध्वनि से गूंज उठा।

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष ने एक छोटे वक्तव्य मे प्रतिनिधियां का स्वागत करते हुए बतलाया कि "यह सम्मेलन एक महान भावी कल्याण का सूचक है और ऐसे ही अनेक भावी सम्मेलनों का अग्रदूत है। सम्मेलन किसी राष्ट्र के तत्वावधान में नही हो रहा है, बल्कि सभी देशों ने अपनी-अपनी समस्याओं पर विचार करने के लिए स्वेच्छा से अपने प्रतिनिधि भेजे हैं।"

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए हमारे राष्ट्रनायक श्री जवाहरलाल नेहरू ने अपना वक्तव्य दिया, "किसकी पुकार सुनकर आप लोग यहाँ दूर-दूर से आये हैं?.........यह वक्त का तकाजा था।......एक जमाना खत्म हो रहा है और दूसरा आरम्भ हो रहा है। बीच में हम खडे हैं और यह कान्फ्रेन्स उस नये जमाने की ओर अगला कदम है। एशिया आज पहली बार अपने कदम पर खड़ा हो रहा है, लड़ने के लिए नही बल्कि अपनी पुरानी शान से दुनिया को आगे बढ़ाने के लिए.........बड़े-बड़े इन्कलाब हो रहे हैं, दुनिया बदल रही है, एशिया बदल रहा है, सैकड़ों वर्षों से यह पड़ा रहा, इसके हाथ पैर अब धीरे-धीरे खुल रहे हैं।"

"आज हम अपने अतीत की ओर दृष्टिपात करते हैं और फिर उस भविष्य की ओर देखते हैं जिसका हमारी आँखो के सामने नवनिर्माण हो रहा है। बहुत दिनों तक अंधकार में रहने के पश्चात् एशिया ने फिर

विश्व की आँखो मे अपना सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया है। इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि एशिया के इस महाद्वीप ने, जिसमें मिश्र का सास्कृतिक सम्बन्ध भी शामिल है, मानव-जाति के विकास मे अपना प्रमुख योग दिया है। वह एशिया ही है जहाँ मानव-सस्कृति का जन्म हुआ और जहाँ के निवासियो ने मानव-जीवन के अत्यन्त साहस पूर्ण कार्य किये। यहीं मनुष्य ने सर्वप्रथम सत्य का पूर्ण रूप से अनुसधान किया, और मानवता की आत्मा प्रकाश-दीप बनकर इतने वेग से प्रज्वलित हुई कि उसने सम्पूर्ण संसार को प्रकाशमय बना दिया। परन्तु कालान्तर पश्चात् वही एशिया, जहाँ से सभ्यता और संस्कृति की प्रचंड धाराये समस्त दिशाओ मे प्रवाहित हुई थी, क्रमशः इकलाब से हट गया और उसका विकास रुक गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य महादेशों, और विशेषतः योरोप के लोग शक्ति-सम्पन्न हो क्रमशः रंगमच पर आ धमके और उन्होंने विश्व के समस्त देशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। यही नहीं धीरे-धीरे योरोपीय देशो ने एशियाई देशों का मनमाना शोषण किया और एशिया योरोप का क्रीडा-स्थल बन गया। परन्तु समय ने पलटा खाया है, अब एशिया एकबार फिर अपने गौरव को प्राप्त कर रहा है। आज हम फिर इस महान अवसर पर एक साथ मिल रहे हैं, और निसन्देह यह भारतवासियो के लिए सौभाग्य का विषय है कि उन्हें अपने दूर देश,से आये सहयोगी एशियावासियो का स्वागत करने और उनसे वर्तमान एवं भविष्य के सम्बंध मे परामर्ष करने का अवसर मिला।" इसके पश्चात् नेहरू जी ने भारत और उसके समवर्ती अन्य एशियाई राष्ट्रों की नष्ट प्राय प्राचीन संस्कृति तथा उससे भारत के सम्बध पर प्रकाश डाला।

नेहरू जी ने भावी एशिया के रचनात्मक कार्यक्रम तथा उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा, "हमारा ध्येय आक्रमणकारी नहीं है। हमारी एक मात्र महान योजना सारे संसार मे शान्ति-स्थापना करना और उसे समृद्धिशाली बना देना है। हम विदेशों का काफी मुख देख चुके हैं।

अब हम अपने पैरों पर खड़े होना चाहते हैं, और उन लोगों के साथ सहयोग करना चाहते हैं जो हम से सहयोग करने को तैयार हैं' ..... प्राचीन काल की भाँति आज भी बिना एशिया के सहयोग और मत्प्रयत्नों के शान्ति असम्भव है।"

"एशिया के महान निर्माताओं—श्री सनयात सेन, जगतुल पाशा और कमाल पाशा—के परिश्रम और सद्प्रयासो का ही लाभ आज एशिया उठा रहा है। एक महान आत्मा की प्रेरणा और प्रयत्न से भारत भी आज स्वतत्रता के द्वार पर पहुँच चुका है। यह महामानव—महात्मा गाधी—आज जनता की सेवा में लीन हैं।"

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए कहा, "मै अपने देश में आपके आगमन का स्वागत करती हूँ..... हम एशियावासी विरोधों तथा कठिनाइयो से न घबड़ाकर अपने सम्मुख उपस्थित होने वाली समस्त आपत्तियों का सामना करते हुए साथ-साथ आगे बढ़ेंगे।" उन्होंने आगे कहा, "हमे आगे बढते जाना चाहिए जब तक हमें अनंत लक्ष्य तक पहुँचने का पथ न मिल जाये। हमें नक्षत्रों की ओर उठना चाहिए, हम आकाश-स्थित चन्द्र का स्वप्न ही नहीं देखते बल्कि उसे आकाश से तोडकर एशियाई स्वातंत्र के मंगलसूत्र मे पिरो कर पहनने की सामर्थ्य भी रखते हैं। . . . महात्मा गाँधी ने हमे सिखलाया है कि विश्व की मुक्ति, युद्ध, घृणा या क्रोध से नही, बल्कि शान्ति से होगी; क्षमा से होगी, दया और अहिसा से होगी। यह हमारे महादेश एशिया का प्राचीनतम सन्देश है। आज भारत ने एशिया के अन्य देशों को विश्व के लिए आशा के नये संदेश पर विचार करने के लिए याद किया है।"

इसके पश्चात् आगत सभी राष्ट्र के प्रतिनिधियो ने सम्मेलन के प्रति आस्था तथा शुभकामनायें प्रकट कीं, सभी ने एक स्वर से इसके इस निर्णय को माना कि आज एशिया कि मुक्ति एवं विश्व-शान्ति हमारी एकता पर ही निहित है।

एशियाई सम्मेलन के अधिवेशन का दूसरा दिन चीन के एक सन्देश से आरम्भ हुआ, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि संसार की मुक्ति एवं शान्ति का एक मात्र मार्ग महात्मा गाँधी की अहिंसा ही है। इसके पश्चात् विभिन्न प्रतिनिधियों ने भारत की मित्रता के सूत्र में बँधे रहने का आश्वासन दिया; तथा एक स्वर से कहा कि महान भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह एशियाई संगठन के कार्य का नेतृत्व करे।

भारतीय स्वतंत्रता-दिवस

१९४७ के अगस्त की समाप्ति के साथ भारत से अंग्रेजी प्रभुसत्ता का हमेशा के लिए अन्त हो गया। १५ अगस्त को सारे देश मे स्वतंत्रता प्राप्ति के उपलक्ष्य मे आनन्दोत्सव मनाया गया। खंडित देश की स्वतंत्रता का आनन्द हमने उसी प्रकार मनाया जिस प्रकार एक घायल सिपाही युद्ध की विजय का आनन्द मनाता है। उसी दिन पं० नेहरू के प्रधान मंत्रित्व में स्वतंत्र-भारत का प्रथम मंत्री-मण्डल बना, जिसमें पं० जवाहर लाल सहित चौदह मंत्री थे। भारत की विधान परिषद् की बैठक १५ अगस्त को सवा घन्टे तक होती रही जिसमे सभी सदस्यों ने निम्न-लिखित शपथ ली, "इस गम्भीर अवसर पर जब की भारत की जनता ने कष्ट सहन और बलिदान द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त की है, मैं......भारत की विधान परिषद् का एक सदस्य होने के नाते, विनम्र भाव से भारत और उसकी जनता की सेवा में अपने को इस उद्देश्य से अर्पित करता हूँ कि यह प्राचीन देश विश्व मे अपने यथोचित स्थान को प्राप्त करे, और विश्व-शान्ति तथा मानव जाति के कल्याण की वृद्धि मे पूर्ण रूप से और स्वेच्छापूर्वक योगदान करे।"

स्वतंत्रता प्राप्ति के अवसर पर भारत के प्रधान मंत्री नेहरू ने राष्ट्र को संदेश दिया, "निर्धारित दिवस आ गया है—वह दिवस जो नियति द्वारा निर्धारित हुआ था। लम्बी निद्रा एवं संघर्ष के पश्चात् भारत आज जाग्रत, जीवित, स्वतन्त्र एवं स्वाधीन होकर फिर खड़ा हुआ है। भूतकाल की कुछ बातें अब तक हम से चिपकी हुई हैं और हम जो प्रतिज्ञायें कर चुके

हैं उनको पूरा करने के लिए हमें अभी बहुत कुछ करना है, तथापि अवस्था बदल चुकी है। हमारे लिए इतिहास फिर नये सिरे से शुरू हो रहा है—वह इतिहास जिसमें हम रहेंगे और कार्य करेंगे और जिसके विषय में भावी इतिहासकार लिखेंगे।"

"यह अवसर भारत में हम लोगों के लिए, समस्त एशिया के लिए और विश्व के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक नये नक्षत्र का उदय हो रहा है। यह पूर्व में स्वतंत्रता का नक्षत्र है। एक नई आशा साकार हो रही है और बहुत दिनो का स्वप्न चरितार्थ हो रहा है। आज हमारी यही कामना है कि यह नक्षत्र कभी अस्त न हो और हमारी आशा कभी भंग न हो।"

"हम इस स्वतंत्रता में आनन्द अनुभव कर रहे हैं, यद्यपि हमारे सभी ओर बादल घिरे हुए हैं और हमारे बहुत से देशभाई शोकाकुल हैं, तथा कठिन समस्यायें हमें सभी ओर से घेरे हुए हैं। किन्तु स्वतंत्रता के साथ उत्तरदायित्व भी आते हैं और हमें स्वतंत्र अनुशासनशील राष्ट्र की भाँति उन्हें वहन करना है।"

"आज के दिन हमारा ध्यान सर्वप्रथम इस स्वतन्त्रता के निर्माता की ओर जाता है, जो हमारे राष्ट्र-पिता हैं, जिन्होंने भारत की प्राचीन आत्मा की साकार प्रतिमा के रूप में स्वतन्त्रता की मशाल सदा ऊँची रखी, और हम जिस अन्धकार से घिरे हुए थे, उसके बीच प्रकाश फैलाया। हम बहुधा उनके अयोग्य अनुयायी रहे हैं और उनके सन्देश से भटक जाते रहे हैं, किन्तु केवल हम ही नहीं, आने वाली पीढ़ियाँ भी इस सन्देश को स्मरण रखेंगी और उनके हृदयों पर भारत के इस महान् पुत्र के सन्देश की सदा छाप रहेगी, जो अपने विश्वास, शक्ति, साहस और नम्रता में इतना विभूतिमान है। हवा चाहे कितने ही वेग से क्यो न चले या आँधी चाहे जितनी ही प्रचण्ड क्यो न हो, हम स्वतन्त्रता की मशाल को कभी बुझने न देंगे।"

"हमारा ध्यान स्वतन्त्रता के उन अज्ञात सैनिकों एवं स्वयंसेवकों की

भी ओर जाता है, जिन्होंने बिना किसी प्रशंसा या पुरस्कार की आशा के भारत की सेवा की और अपने प्राण तक उत्सर्ग कर दिये। हमें उन भाइयों और बहनों का भी ध्यान आता है जो राजनीतिक सीमाओं द्वारा हमसे अलग हो गये हैं और जो दुर्भाग्य से इस समय आयी हुई स्वतन्त्रता में भाग नही ले सकते। चाहे जो हो वे हमारे हैं और हमारे बने रहेंगे, तथा हम उनके सौभाग्य और दुर्भाग्य के एक समान भागी होंगे।"

"भविष्य हमारी ओर देख रहा है। हम किस ओर जायेंगे और हमारा प्रयत्न क्या होगा? हमें सर्वसाधारण के लिए तथा भारत के किसानों और श्रमजीवियों के लिए सुराज एवं सुअवसर लाना है। गरीबी, अज्ञान और रोगो से लड़ना और इनका अन्त करना है। एक समृद्धिशाली प्रजातन्त्र और प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करना है, और ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक संस्था बनाना है जो प्रत्येक नर-नारी के लिए न्याय और जीवन की पूर्णता को निश्चित बनायेगी।"

"हमारे आगे कठिन कार्य करने को है। जब तक हम अपनी प्रतिज्ञा पूर्णरूप से पूरी न कर ले, और जब तक भारत के सभी निवासियों को वैसा ही न बना ले जैसा नियति उसे बनाना चाहती है, तब तक हममें से किसी को विश्राम नहीं करना है। हम एक महान देश के नागरिक हैं, जिसे साहस के साथ आगे बढ़ना है। हमें उस उच्च आदर्श के अनुसार ही जीवन-यापन करना है। हम चाहे जिस धर्म के अनुयायी हो, हम सभी भारत की सन्तान हैं और हम सभों के समान अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं। हम साम्प्रदायिकता या संकीर्णता को प्रोत्साहन नहीं दे सकते, क्योंकि जिस राष्ट्र के लोग विचार या कार्य मे संकीर्ण हों, वह कदापि महान् नही हो सकता।"

"हम ससार के सभी राष्ट्रों और उनके निवासियों का अभिवादन करते और शान्ति, स्वतन्त्रता एवं प्रजातन्त्रवाद को आगे बढ़ाने में उनसे सहयोग की प्रतिज्ञा करते हैं। हम भारत को, अपनी प्यारी मातृ-

भूमि को, जो प्राचीन, अनन्त एवं चिर नवीन है, अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, और उसकी सेवा में अपने जीवन को लगा देने की फिर से प्रतिज्ञा करते हैं। जय हिन्द।"

भारत की स्वतन्त्रता के अवसर पर नेहरू जी के पास अनेक राष्ट्रों के प्रधान मन्त्रियों के अभिनंदन एवं शुभकामना के पत्र आये थे। नेहरू जी ने उन्हें उनका उत्तर देते हुए लिखा था, "भारत-सरकार के अपने सहयोगियो तथा अपनी ओर से मै आपके अभिनंदन तथा शुभकामनाओ के उन संदेशों के लिए आपको कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ, जो आपने इस ऐतिहासिक दिवस पर भेजा है जब भारत स्वतंत्र हो रहा है। इस स्वतन्त्रता का अर्थ हमारे लिए बहुत है, किन्तु यह एशिया और विश्व के लिए भी महान अर्थ रखती है। हम इस स्वतंत्रता का उपयोग जैसे अपने देशवासियो की उन्नति के लिए, उसी प्रकार विश्व की शान्ति एवं समृद्धि को उन्नत बनाने के लिए करने की आशा करते हैं। इस कठिन कार्य मे हम आपकी गवर्नमेन्ट से घनिष्ट सहयोग की आशा करते हैं।"

स्वतंत्रता के द्वितीय जन्मोत्सव, १५ अगस्त १९४८ को पं० नेहरू—भारत के प्रधान मंत्री—ने राष्ट्र को यह सदेश सुनाया था, "१५ अगस्त की तारीख आयी और देश के विभाजन की पीड़ा होने पर भी अपनी नवजात स्वतंत्रता की प्राप्ति पर हमने आनंद मनाया। हम स्वतंत्रता के सूर्योदय और स्वतंत्रता द्वारा लाये जाने वाले अवसर की ओर दृष्टि लगाये हुए हैं। यद्यपि सूर्य का उदय हुआ किन्तु वह काले बादलों से आच्छादित होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं हुआ और हमारे लिए ऊषाकाल ही बना रहा। इस ऊषाकाल को काफी समय बीत चुका है और अब दिवस का प्रकाश छाने वाला ही है। स्वतंत्रता केवल राजनीतिक निर्णय या नये शासन विधान का ही विषय नहीं है और न वह और भी अधिक महत्व वाली आर्थिक नीति का ही विषय है, वह तो मस्तिष्क और हृदय का विषय है। और यदि मस्तिष्क अपने को सकीर्ण और धुँधला बना लेता है और हृदय कटुता एवं घृणा से पूर्ण है तो स्वतंत्रता कहाँ?"

"आज एकबार फिर १५ अगस्त की तारीख आयी है। अतीत की सारी घटनाओं के होते हुए भी हमारे लिए यह दिवस गम्भीर और पवित्र है। इस वर्ष के भीतर बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है और हमे जो लम्बा मार्ग पूरा करना है उस पर बहुत दूर तक हम आगे बढ़े हैं। किन्तु यह वर्ष दुःख और अमर्यादा; एवं उस भावना के परित्याग से भी परिपूर्ण है जो भारत के लिए मुक्तिदायक विशेषता रही है। इस वर्ष ने राष्ट्रपिता की हत्या मे पाप की विजय देखी है, और इससे अधिक लज्जा और दुःख हममे से किसी के लिए और क्या हो सकता था।"

"हम यह पवित्र दिवस उसी प्रकार मना रहे है, जैसे हमें मनाना चाहिए। किन्तु इस अवसर पर हमें न तो व्यर्थ की डीग हॉकनी चाहिए और न कोरी निरर्थक बकवाद ही करनी चाहिए। आज हमे अपने दिल को टटोलना चाहिए, और फिर से अपने महान कार्य के लिए अपने को अर्पित करना चाहिए। हमे उसका इतना विचार नही होना चाहिए, जो हम कर चुके हैं। विचार तो होना चाहिए उसका जो हम नहीं कर पाये हैं; और उसका, जिसे हमने ठीक से नहीं किया है। हमें उन लक्ष-लक्ष शरणार्थियों के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए जो अपने सर्वस्व से वंचित हो जाने से बेघर-द्वार के होकर अभी तक भटक रहे हैं। हमें भारत के जनसाधारण के सम्बन्ध म सोचना चाहिए जो आज भी कष्ट झेल रहे हैं। जिन्होंने हमारी आर आशा भरी दृष्टि से देखा है और अपने असुखी भाग्य के सुधरने की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे है। हमे भारत के उन साधनों का भी ध्यान करना चाहिए जिन्हें ठीक से तैयार कर यदि जन-कल्याण के लिए उनका उपयोग किया जाये तो वे भारत को कुछ का कुछ बना दे सकते हैं। उसे महान तथा समृद्धि-शाली बना दे सकते हैं। आइये, हम सब अपनी सारी शक्ति के साथ इस महान कार्य मे जुट जायें, लेकिन सबसे अधिक हमें महात्मा गॉधी के सिखाये हुए पाठों का ध्यान होना चाहिए और उन आदर्शों का स्मरण होना चाहिए जिन्हे उन्होंने हमारे लिए उन्नत किया था। यदि हम उन

पाठों और आदर्शों को भुला देंगे, तो अपने महान कार्य और देश के प्रति विश्वासघात करेंगे।"

"अतः अपनी स्वतंत्रता के इस द्वितीय वर्ष के अवसर पर हम स्वतंत्र भारत और उसकी जनता के महान कार्य के लिए फिर से अपने को अर्पित करते हैं। हमारी कामना है कि हम योग्य सिद्ध हों। जय-हिन्द।"

इसी प्रकार प्रति वर्ष स्वतंत्रता-दिवस आता है और अतीत के संघर्षों और हमारे उद्देश्यों की ओर इंगित कर चुपचाप समय की शिला पर एक अंक खींच जाता है। उससे हमें अपने आदर्शों को पूर्ण करने के लिए साहस मिलता है, धैर्य मिलता, और मिलती है असीम आत्मतुष्टि और शान्ति की चिर संचित निधि।

साम्प्रदायिक दंगे

यह भारत का दुर्भाग्य है कि भारतीय राजनीति में हम राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता की भावनाओं को एक साथ बढ़ते तथा पल्लवित होते देखते हैं। एक दूसरे के समकक्ष बहने वाली इन धाराओं मे हम कभी एक को अधिक वेगवान पाते हैं तथा कभी दूसरी को अधिक द्रुतगामी। कायदे आजम जिन्ना और लीग के नेतृत्व में पाकिस्तान की माँग एक राजनीतिक सौदे के आधार से कहीं अधिक व्यापक रूप ले चुकी थी। हिन्दुस्तान की जमीन में मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना कितनी गहरी चली गई थी, इसका ठीक अंदाज और उसके भयंकर दुष्परिणाम का पता शायद साम्प्रदायिक अग्नि सुलगाने वाले लीगी नेताओं को भी ठीक से नहीं था। पाकिस्तान की बुलंद माँग ने दानव का रूप धारण कर लिया था। लीग के जिम्मेवार समझे जाने वाले नेताओं ने अपने जलसे में जिस मजहबी पागलपन से भरे भाव व्यक्त किये थे उसे सुनकर आश्चर्य होता है। कहा गया कि मुसलमान एक बार फिर चंगेज खाँ और हलाकू खाँ के समान हिन्दुस्तान की जमीन खून से रंग देगे। हिन्दुओं की हस्ती को बिल्कुल मिटा देगे और देश भर मे तलवार के जोर से अपना शासन स्थापित कर लेगे। आगे आने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया की यह कोरी धमकी ही नहीं थी। यद्यपि पं० नेहरू ने आने वाले दुर्दिन का कुछ अनुमान बहुत पहले ही कर लिया था, किन्तु फिर भी उन्होंने देश की हिन्दू और मुसमान जनता के प्रति अहमदनगर के किले से, १९४४ में, विश्वास प्रकट करते हुए कहा था, "मजहब के

आधार पर हिन्दू और मुसलमानों के बीच हिन्दुस्तान का बटवारा, जैसा कि मुसलिम लीग सोचती है, इन खास दो धर्मों को मानने वालों को अलग-अलग नही कर सकता, क्योंकि वह सारे देश मे फैले हुए हैं।"

इसके अतिरिक्त उन्होंने विभाजन के दुष्परिणामो की ओर इंगित करते हुए चेतावनी भी दी थी, "यदि भारत को दो या इससे अधिक भागों में तोड दिया जायेगा, और यदि वह एक आर्थिक और राजनीतिक एकाई की तरह काम न करेगा, तो उसकी उन्नति पर भारी प्रभाव पडेगा। एक तो स्वयं निर्बलता आयेगी, लेकिन इससे भी बुरी चीज वह मनोवैज्ञानिक लड़ाई होगी, जो भारत को अखंड बनाये रखने के पक्षपातियो और उसके विरोधियों मे होगी।" कालान्तर पश्चात् हम जानते हैं कि नेहरूजी की यह आशंका सच हुई।

धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता के इस जिहाद का आरम्भ १६ अगस्त १९४६ की उस 'सीधी कार्यवाही' (Direct action) से हुआ जिसने कलकत्ते की सडको की खुली छाती को खून से रंग दिया। रक्तपात और वर्बरता का नग्न ताण्डव आरम्भ हुआ जिसने देश भर मे साम्प्रदायिक विद्वेष की एक ऐसी ज्वला को, और हिंसा-प्रतिहिंस की एक ऐसी विषैली धूमशिखा को जन्म दिया, जिसने अपने खूनी दामन मे मानवता का गला घोट दिया। कलकत्ते के बाद नोआखाली और पूर्वी बंगाल; पूर्वी बंगाल के बाद बिहार, गढमुक्तेश्वर और पंजाब के पश्चिमी जिले, एक के बाद एक इस आग की लपट मे जलने लगे, जिसे १५ अगस्त की महान सत्ता परिवर्तन की घडी भी, जिसने हमे २०० वर्षो की अंग्रेजी गुलामी से मुक्त किया था और जो हमारे इतिहास की एक स्वर्णिम घडी थी, अपने समस्त महत्व के साथ भी बुझा नही सकी।

नोआखाली और बंगाल का हत्याकाड देख कर शैतान की भी रूह काप उठी होगी, सारे देश का हृदय क्षुब्ध था, पीडित मानवता रोती थी, और उसकी हँसी उडाते थे अट्टहास करते हुए श्रृगाल और स्वान।

गाँव-गाँव में कत्ले आम मचा था तथा अनन्त धन-राशि स्वाहा हो रही थी। नगर और गाँव उजड़ गये थे। डगर-डगर पर मनुष्य को सस्ती काया बिखरी हुई थी, हिंसा के प्रचंड ताण्डव के आगे खूंखार पशु भी पराजित था। हिन्दुस्तान की कुलदेवी अपनी छाती पर हो रही उस अमानुषिकता को देख कर फूट-फूट कर रो रही थी।

नोआखाली के अवर्णनीय अत्याचारों को सुनकर बिहार के हिन्दू भी क्रोध से पागल हो गए। उन्होंने वहाँ के उन दृश्यों की पुनरावृत्ति अपने यहाँ करनी आरम्भ की। बिहार के भयंकर उपद्रव का ज्ञान होते ही नेहरु जी तत्काल वहाँ पहुँचे और उपद्रवियों को करारी फटकार सुनायी। बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करने से रोकते हुए उन्होंने कहा कलकत्ता या नोआखाली में किये गये हिन्दुओं पर अत्याचार का बदला यहाँ बिहार के निरपराध मुसलमानों से लेना अनुचित है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि उपद्रवकारी अपनी प्रतिहिंसा की इस भावना को नहीं छोड़ेंगे तो वे राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्ति से उसे कुचल डालने तथा उसमे लगे साम्प्रदायिक व्यक्तियों को कठोर से कठोर दंड देने की व्यवस्था करेंगे। नेहरू जी के प्रयत्न से कुछ दिनों के अन्दर ही बिहार का साम्प्रदायिक हिंसात्मक आन्दोलन रुक गया, इसके विपरीत मुसलिम क्षेत्रों मे यह घृणित और दुर्दमनीय कार्य उसी वेग से जारी रहा, तथा उसे बंद करने का किसी भी नेता ने विशेष प्रयत्न नहीं किया।

१५ अगस्त के विभाजन के पश्चात् पंजाब में साम्प्रदायिक दगों ने तीव्र अग्नि का रूप धारण कर लिया। देश के बंटवारे तथा साम्प्रदायिक उत्पात् के कारण सीमाप्रान्त, पश्चिमी तथा पूर्वी पंजाब, सिन्ध आदि प्रांतों मे रक्तपात, नरसंहार, लूट-मार और आगजनी के जो भयकर काण्ड हुए उनका स्मरण कर आज भी रोंगटे खडे हो जाते हैं। पैशाचिकता का नग्न ताण्डव हुआ। गाँव के गाँव जला दिये गये। हजारों बेबस नर-नारी और मासूम बच्चों की निर्मम हत्याएँ हुई। निस्सहाय स्त्रियों के साथ, जिनके पति, भाई और पुत्र कत्ल कर दिये गये थे, खुलेआम बलात्कार किया गया। हजारों

व्यक्ति जिन्दा जला दिये गये। इन्हे देख और सुनकर चङ्गेज खाँ और हलाकू खाँ की नृशंसताओ की स्मृति सजीव होने लगी थी। इस साम्प्रदायिक भावना का भारत मे बढ़ने का दो विशेष कारण था। एक तो जगह-जगह पर उन असह्य अत्याचारो से पीड़ित शरणार्थियो का फैल जाना, जो अपने साथ पाकिस्तान मे आपबीती लोमहर्षक घटनाओ की तीखी स्मृति लाये थे और सजल नेत्रों से उन्हे सुनाते फिरते थे, जिससे लोगो के हृदय मे बदला लेने की भावना का उदय होता था। दूसरे हिन्दुओ मे पाकिस्तान के बन जाने पर मुसलमानो के प्रति पहले से ही अस्वाभाविक घृणा और कटुता बढ़ गयी थी। शरणार्थियो की सुनाई हुई कथाओ ने उसे और भी प्रज्ज्वलित कर दिया। उनका रक्त उबल पडा और उन्होंने आपे से बाहर होकर प्रतिशोध लेना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप भारत की राजधानी दिल्ली और सारा पंजाब जल उठा, लाहौर और अमृतसर की सौंदर्य श्री जलकर राख हो गयी; और लोग ऐसे-ऐसे अमानुषिक अत्याचारों के शिकार बनाये गये कि पं० नेहरू का सशक्त हृदय भी कॉप उठा। उन्हें ऐसा लगने लगा कि यदि ये लोमहर्षक काड समाप्त नहीं किये जा सकते तो हम लोगों का अपने पद पर बने रहने का कोई अर्थ नहीं है। इसमे शक नहीं कि पंजाब और दिल्ली के उस महाभयंकर नर-सहार और विध्वंस के बीच नेहरू और महात्मा गाधी आदि नेताओं ने साम्प्रदायिक भावना से अपने को पूर्ण अलग रखकर अपनी सारी शक्ति लगी हुई आग बुझाने और शान्ति की स्थापना के उद्योग मे लगा दी।

नेहरूजी ने साम्प्रदायिक उपद्रव तथा पागलपन की बराबर निंदा की। कई बार तो वे आक्रमणकारियो के बीच निहत्थे ही मोटर से कूद पडे तथा अपने थप्पडों से शस्त्र-सज्जित साम्प्रदायिक गुंडो की पूजा की। वे विपत्तिग्रस्त शरणार्थियो की मदद के लिए हमेशा तत्पर रहते थे।

इन्हीं दिनों कुछ ऐसे षडयन्त्रकारियों का भी पता चला जो इस नवजात स्वतन्त्र राष्ट्र की सत्ता को उलटने तथा नष्ट करने का जी-जान

से प्रयत्न कर रहे थे। मुस्लिम-एग्लोइंडियन षडयन्त्र उसमें प्रधान था। नेहरू-सरकार ने अपूर्व दृढ़ता तथा शान्तिपूर्वक इन परिस्थितियों का सामना किया तथा स्वतन्त्रता-पथ के रोड़ों को चुन-चुन कर दूर करती रही।

इस अमानुषिकता को बन्द करने के लिए तथा शान्ति-स्थापना के लिए भारत और पाकिस्तान की सरकार ने मिल कर कई अपीलें निकालीं। भारत और पाकिस्तान के अधिकारियों की तत्संबन्धी एक कान्फ्रेंस भी अम्बाला में हुई। १९ अगस्त को दिल्ली-रेडियो से ब्राडकास्ट करते हुए नेहरूजी ने इस रक्तपात को बंद करने की देश की जनता से अविलम्ब मांग की, तथा दोनों सरकारों से इसके लिए कठोर दमनात्मक कदम उठाने की अपील की। २८ अगस्त को प्रेस-कान्फ्रेंस में नेहरूजी ने कहा, "प्रतिहिंसा और प्रतिद्वन्दिता अवाञ्छनीय है। इस तरह की प्रतिहिंसा की भावना से ऐसे आदमियों की रक्षा नहीं की जा सकती जिनकी हम वास्तव में रक्षा करना चाहते हैं।......व्यक्तिगत हिन्सा और प्रतिशोध का अर्थ स्वयं अपनी सरकार को उचित कार्यवाही कर सकने के अयोग्य प्रमाणित करना है। यदि समस्याओं का उचित रूप में समाधान करना मुख्य लक्ष्य है तो दोनों सरकार के बीच पूर्ण सहयोग आवश्यक है।"

भारत तथा पाकिस्तान की सरकारों ने अल्पसंख्यक पीड़ितों के आवागमन के लिए सुविधाजनक तथा शान्तिमय व्यवस्थायें की। करीब ५० लाख हिन्दू सिक्ख पाकिस्तान से भारत लाये गये तथा भारत से सुरक्षापूर्वक उन मुसल्मानों को पाकिस्तान भेजा गया जो वहाँ जाना चाहते थे।

नोआखाली तथा कलकत्ते की दानवीय लीला से व्यथित महामानव गांधी ने तो अनशन ही आरम्भ कर दिया था। नेहरूजी भी स्वयं दौड़-दौड़ कर घटनास्थलों का निरीक्षण कर रहे थे तथा पीड़ितों को सान्त्वना दे रहे थे। पंजाब में एक दर्जन हिन्दू महिलाओं ने उन्हें राखी बाँध कर

अपनी रक्षा की करुण प्रार्थना की थी। नेहरू ने प्राणपण से उनकी रक्षा का आश्वासन दिया था। स्वयं गाँधीजी ने इस भीषण स्थिति से खिन्न होकर शान्ति अथवा उसकी प्राप्ति में आत्मोत्सर्ग का संकल्प किया था।

९ सितम्बर को पं० नेहरू तथा लियाकत अली ने फिर से मिलकर एक संयुक्त वक्तव्य निकाला जिसमें शान्ति की अपील करते हुए उन्होंने पंजाब के उपद्रवों को निर्दयतापूर्वक कुचल देने की घोषणा तथा निश्चय प्रकट किया था। नेहरू जी ने दंगे को दबाने के लिए उपद्रवी क्षेत्रों के लिए अनेक कानून पास कराये और हत्या के साथ ही कई अन्य निर्मम अपराधों के लिए प्राण-दंड की व्यवस्था की। साम्प्रदायिक अफसरों के ऊपर कड़ी दृष्टि रखी गई तथा उन्हें चेतावनी भी दी गई।

९ सितम्बर को जब महात्मा गाँधी दिल्ली की चिन्ताजनक स्थिति देखकर वहाँ पहुँचे, तब नेहरूजी ने बड़े करुणा भरे मार्मिक शब्दों में अपने हृदय की व्यथा प्रकट की थी, "आज हमारे नेता महात्मा जी, कलकत्ते से यहाँ आये हैं। जब मैं उनके पास थोड़ी देर के लिए बैठा तो आसानी से चार आँखें न हो पायीं। मुझे शर्म मालूम होती थी कि मैं प्रधान मंत्री की जिम्मेदारी पूरी तरह से नहीं अदा कर पाया। देश में जहाँ भी जो कुछ हो रहा है उसे मैं अपना कसूर मानता हूँ। हिन्दुस्तान का महान व्यक्ति आज यहाँ क्या देख रहा है? कलकत्ते में तो उनकी आश्चर्यजनक विजय हुई। वे यहाँ आये हैं और हम चाहते हैं कि उनके जादू का प्रभाव यहाँ भी हो।..... हमें देश की उन्नति के लिए सब कुछ सोचना होगा। हमने अपने हाथ यदि जल्द नहीं रोके तो देश तबाह हो जायेगा।......हम भारत को कदापि लुटेरों का देश नहीं बनने देंगे। यह तमाशा देखने का समय नहीं है।......हमें यदि स्वतन्त्रता बनाये रखनी है तो शान्ति स्थापित रखना जरूरी है।"

नेहरू जी ने अपने देशवासियों के कार्यों पर शोक प्रकट करते हुए कहा, "मेरे देशभाइयों ने जो कुछ किया है, उसके लिए मैं शरमिन्दा हूँ, और मुझे भय होता है कि इन पाप-कर्मों के परिणाम बहुत

समय तक बने रहेंगे, और वैसे ही उसके लिए हुई बदनामी भी। पाप द्वारा पाप का अन्त नहीं होता और आप हत्या द्वारा हत्या को नहीं रोक सकते।"

महात्मा गाँधी के प्रयत्न तथा नेहरू जी के आश्वासन का मुसलमानों तथा हिन्दुओं दोनों पर ही काफी प्रभाव पड़ा। मुसलमान नेहरू-शासन के अन्तर्गत रह कर अपने को पूर्ण सुरक्षित समझने लगे। स्वयं भारत-स्थित पाकिस्तान के हाईकमिश्नर ने प्रेस-कान्फ्रेन्स में कहा था कि मैं भारत में स्थित जितने मुसलमानों से मिला हूँ वे दिल्ली छोड़ना नही पसन्द करते। मुसलमान ऐसा विश्वास करते हैं कि महात्मा गाँधी, पं० नेहरू, श्री वियोगी तथा भारत-सरकार के सभी सदस्य वर्तमान आतङ्क को दूर करने की हार्दिक इच्छा रखते हैं, तथा अल्पसंख्यकों की रक्षा में प्रयत्नशील हैं।

२९ सितम्बर को दिल्ली मे हिन्दुओं और मुसलमानों की विराट सभा मे भाषण देते हुए नेहरू जी ने कहा था, "हर आदमी को जो भारत का भक्त है इस देश में रहने का अधिकार है, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। उसकी और उसके हितों की रक्षा करना सरकार का कर्त्तव्य है और वह उसके लिए कोई कसर बाकी न रखेगी। ऐसे मुसलमान भारत में प्रसन्नतापूर्वक रहें जो इसे सचमुच अपना देश समझते हैं। ....हाँ, जो आदमी देश के प्रति वफादार नहीं है उनके लिए भारत मे कोई स्थान नही है, और उन्हें उनकी पसन्द के देश तक पहुँचाने के लिए सरकार पूरी सुविधा प्रदान करेगी।........भारत को हिन्दू-राज्य बनाने का मतलब है, मुस्लिम लीग की वास्तविक विजय—ऐसी विजय जिसकी तुलना में पाकिस्तान की स्थापना भी कम महत्वपूर्ण है।"

भारत के भाग्याकाश पर जब स्वतंत्रता की प्रथम किरण ही फूटी थी, तभी से नव-विहान का संदेश देने वाली नेहरू-सरकार को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा तथा जिस धैर्य और शान्ति के साथ उसने उन पर विजय प्राप्त की, वह वास्तव मे सराहनीय है। नेहरूजी

के ही शब्दों में, "भावी इतिहासकार यह लिखेंगे कि इस विचार और भयंकर समस्या से किसी भी सरकार की नींव हिल जाती और सामाजिक व्यवस्था भंग हो जाती... किन्तु भारत की जनता ने इन समस्याओं का धीरता से सामना किया, इसे सुलझाने की चेष्टा की और राष्ट्र के कल्याण के लिए अन्ततः इस समस्या को सुलझा भी लिया।" पं० नेहरू के अदम्य उत्साह, योग्यता तथा कार्य-शक्ति को देखकर ही लौह-पुरुष सरदार पटेल ने विश्वास और स्नेह से मिश्रित शब्दों में कहा था, "पं० नेहरू ने संकट काल में देश का उचित नेतृत्व किया और अपने महान नेतृत्व द्वारा भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई।"

महामानव गाँधी का महाप्रयाण

स्वतंत्र भारत के गृह-शासन, विशेषतः साम्प्रदायिकता विरोधी नीति से कुछ भारतीय जनता असंतुष्ट थी। उसका विचार था कि नेहरू-सरकार, कांग्रेस और महात्मा गांधी की पूर्वकालीन नीति की भाँति मुसलमानों का तोषण और हिन्दू हितों का बलिदान कर रही है। पाकिस्तान की साम्प्रदायिक नीति और वहाँ होने वाले हिन्दुओं पर जघन्य अत्याचार उनकी क्रोधाग्नि में घी का कार्य कर उसे उत्तेजित कर रहे थे। पाकिस्तान में एक मुस्लिम राज्य की स्थापना की जा चुकी थी जो 'शरीयत' पर अवलम्बित था तथा जिसमें 'काफीर' हिन्दुओं को कोई स्थान न था। इसके विपरीत भारतीय नेताओं ने एक लौकिक राज्य (Secular State) की स्थापना की थी, जिसमें सभी धर्मावलम्बियों को समान अधिकार तथा स्वतंत्रता प्राप्त थी। फलस्वरूप, इस व्यवस्था के विरुद्ध उनका रोष साम्प्रदायिक दंगे के रूप में प्रकट हुआ। अपनी नीति के विरुद्ध, घृणा और प्रतिशोध के इस दूषित रूप को नेहरू सरकार कैसे सह सकती थी? अतः उसने इसे पूर्णतः कुचले में कोई कसर न की। परन्तु दंगे और साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को कुचलने का इससे भी महान उद्योग गांधी जी के त्यागबल का था। कलकत्ते में साम्प्रदायिक सद्भावना के लिए आमरण उपवास आरम्भ करके उन्होंने वहाँ की परिस्थिति को विद्युत गति से बदल दिया था। दिल्ली में भी उनके उपवास का यही परिणाम हुआ। भारत की पवित्र धरती निर्दोषों के रक्त मे रंजित होने मे बचा ली गयी और नर-पैशाचिकता का नग्न तांडव

वहो न होने पाया। कौन जानता था कि इस महान आत्मा के तपनक जीवन का यहीं अन्तिम व्रत होगा।

मिस्टर जिन्ना जिन्हें 'इसलामी मजहब का सबसे बड़ा दुश्मन' मानते थे, उन्हीं के साथी सुहरावर्दी के मुँह से गांधी जी के कलकत्ते में किये गये कार्यों के फलस्वरूप अचानक निकल पड़ा था, "महात्मा गांधी वास्तव में महात्मा हैं।" और उन्हीं के कार्यों से आश्वस्त मुसलमानों ने एक स्वर से दिल्ली में कहा था, "महात्मा गांधी और नेहरू के हाथ में हम अपने को पूर्ण सुरक्षित समझते हैं।"

हिन्दू साम्प्रदायवादियों की दृष्टि में महात्मा गांधी द्वारा मुसलमानों के रक्षार्थ किये गये ये कार्य हिन्दू हितों के विरुद्ध थे। ऐसी परिस्थिति में हिन्दू राष्ट्रवादी, नेहरू-सरकार तथा गांधी जी की ओर से खिचने लगे। वे बापू की इस नीति से अत्यधिक नाराज थे। उनकी यह क्षुब्धता तथा नाराजगी यदा-कदा प्रकट भी होती रहती थी। उनके पास कोई ऐसी शक्ति तो थी नहीं जिसके आधार पर वे प्रत्यक्ष रूप से उनका विरोध करते, अतः उन्होंने एक निर्मम और अमानुषिक मार्ग अपनाया। उनके द्वारा गाँधी जी की प्रार्थना सभा में बम फेंका गया, परन्तु वार खाली रहा। राष्ट्र के कर्णधारों ने राष्ट्रपिता की रक्षा के लिए पूर्ण व्यवस्था करने का निश्चय किया, किन्तु जनता के नेता बापू ने इसे पसन्द न किया।

इस घटना के दस दिन पश्चात् नाथूराम विनायक गोडसे नामक एक व्यक्ति ने ३० जनवरी १९४८ को लगभग दो गज के फासले से गाँधी जी पर तीन बार गोली चलायी। उस तपोधन की मुट्ठी भर ठठरियों को छोड़ कर प्राण-पखेरू उड़ गये। भारत का वह जगमगाता नक्षत्र हमेशा के लिए बुझ गया। सत्य और अहिंसा का पुजारी, २०वीं शती का बुद्ध, भारत का ईसा, भारत का पैगम्बर अपने ही धर्मावलम्बियों द्वारा हृदय विदारक हिंसा-पूर्ण ढंग से उठा लिया गया। ईसा पर, देश के विधान के अनुसार एक नये धर्म के प्रचार का दोषारोपण कर उन्हें सूली का दंड दिया गया था। गाँधी की हत्या भी एक मानवीय विचार के प्रतिपादन तथा प्रतिष्ठा-

पन—हिन्दू मुसलिम एकता तथा साम्प्रदायिकता के विरोध के फल-स्वरूप हुई। उस गाँधी की—बापू की—हत्या, जिसने सत्य और अहिंसा का सहारा लेकर एक शक्तिशाली विदेशी साम्राज्य के साथ जीवन भर संघर्ष कर परतंत्रता की वेडी से राष्ट्र को मुक्त किया था। जिन्हें देशवासियों ने 'महात्मा और बापू' कह कर अपने हृदय की गहरी श्रद्धा और भक्ति का पुष्प अर्पित किया था। जिन्हें समस्त विश्व ने (लाल रूस को छोडकर, जो मार्क्स, ऐन्जिल्स, लेनिन तथा स्टालिन के अतिरिक्त सभी देश के सभी महान व्यक्तियों को पाखंडी, नर-पिशाच और पूंजीपतियो का समर्थन करने वाला बूर्इआ मानता है।) आधुनिक युग का एक महान शिक्षक, मानवता का पुजारी तथा विश्व-बन्धु कह कर पूजित किया था, एक भारतीय, एक हिन्दू—अपने को हिन्दू धर्म और संस्कृति का अभिमानी कहने वाले नवयुवक—से हुई, जब कि वे देश के शोक-ग्रस्त विक्षुब्ध वातावरण में शान्ति और सहिष्णुता की स्थापना के लिए प्राणपण से संलग्न थे। आजादी मिली, लेकिन भारत के हिन्दुओं के सिर पर अपने सबसे बड़े उद्धारक की हत्या के कलंक का अमिट टीका उसी प्रकार लग गया जिस प्रकार ईसा के पवित्र लाल खून के छींटे यहूदियों के नत मस्तक पर स्थित उनका आज भी उपहास कर रहे हैं।

बापू संसार से उठ गये, और चन्द घंटों बाद उनकी नश्वर काया शीतल चंदन की लकड़ियों से जला कर हमेशा के लिए भस्म कर दी जाने वाली थी। अहिंसा का पुजारी हिंसा का शिकार हुआ और समस्त संसार उसके वियोग से शोकाकुल हो, प्रकाश के लिए हतप्रभ हो भटकने लगा। भारत माता का वह लाल उससे छिन गया जिसने अपने को अनेक बार शृंखलाबद्ध कर उसे शृंखलामुक्त होने का मार्ग दिखलाया था।

इस अप्रत्याशित घटना की सूचना पाते ही नेहरू आदि नेता घटना-स्थल पर तत्काल पहुँचे। उपस्थित शोकाकुल जनसमूह को समझाते समय, अपने को आज अनाथ समझने वाले नेहरू के हृदय का बाँध बरबस टूट पडा। रुँधे गले से समझाते समय उनके आँखों से स्वयं अश्रुधारा प्रवाहित

होने लगी और वे सिसकने लगे। पलभर में, जागते भारत को जागते बापू की अनंत निद्रा का आकस्मिक ज्ञान हुआ। सब स्तब्ध रह गये। राष्ट्रपिता के आकस्मिक निधन के कारण भारतवासियों पर हुए वज्रपात के उस शोकपूर्ण अवसर पर, भावनाओं की तीव्रता से काँपते हुए पं० नेहरू ने रेडियो में चिरस्मरणीय भाषण दिया था, "बंधुओ, हमारे जीवन का आलोक बुझ गया है और चारो ओर अंधेरा छा रहा है। मैं यह नहीं जानता कि इस समय आप से क्या कहूँ और कैसे कहूँ। हमारे प्रिय नेता, हमारे राष्ट्रपिता, हमारे बापू अब नही रहे· लेकिन यह कहना कदाचित अनुचित है।.... मैंने कहा कि आलोक बुझ गया है; लेकिन यह मेरी भूल है। इस देश में जो आलोक दीप्त हुआ था वह कोई साधारण आलोक नहीं था। पिछले कई वर्षों से जो आलोक इस देश को आलोकित कर रहा था वह अभी बहुत वर्षों तक प्रकाश देता रहेगा। आज से हजारों वर्ष बाद भी वह आलोक इस देश में वैसा ही दीखेगा; सारे विश्व में दीखेगा और असंख्य हृदयो को सान्त्वना देगा। क्योंकि वह आलोक केवल वर्तमान का नहीं था, वह चिरन्तन, जीवित शाश्वत सत्य का आलोक था, तथा वह आलोक इस प्राचीन देश को स्वतंत्रता के पथ पर ले जाते हुए ठीक रास्ता दिखलाता था और पथ-भ्रष्ट होने से हमारी रक्षा करता था।"

"....ऐसे विकट समय में जब कि हमारे समक्ष इतनी कठिन समस्यायें उपस्थित हैं, उनका हमारे बीच में न रहना अत्यधिक असहनीय है।......हमारे राष्ट्रपिता ने जो आदेश हमें दिया है, उन्हें अमल में लाने का हमें दृढ़ संकल्प करना चाहिए। हमें सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि उनकी आत्मा हमें अब भी देख रही है। अतः हमें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे उनकी आत्मा को कष्ट हो। यदि हमने कोई ओछा व्यवहार किया या साम्प्रदायिक हिंसात्मक कार्य किया, तो उनकी आत्मा को उससे अधिक अरुचिकर कोई दूसरी बात न होगी।"

"......हमें आपस में एकता रखनी चाहिये, और पूज्य बापू के

इस निधन से जो क्षति हुई है उसका ध्यान रखते हुए अपने सभी छोटे-मोटे झगड़े और बाधाओ तथा कठिनाइयो का अंत कर देना चाहिये।... उन्होने अपनी मृत्यु से हमे जीवन की बडी बातों के लिए, सत्य के लिए, प्रेरणा दी है और यदि हमने उस पर ध्यान दिया तो उससे भारत का हित होगा।"

पं० नेहरू ने भारतीय संसद मे महात्मा गॉधी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए अत्यन्त मार्मिक शब्दों मे कहा था, "एक विभूति हमारे बीच से उठ गयी है। जो सूर्य हमारे देश को आलोक तथा उष्णता प्रदान करता था वह अस्त हो गया है, और हम अन्धकार में ठिठुर रहे हैं। फिर भी हमे अपने हृदय के भीतर यह भाव नही लाना चाहिए। जब हम अपने हृदय को देखते हैं, तो अब भी उसमे वह अग्नि प्रज्वलित पाते है जिसे वे सुलगा गये हे, और यदि वह अग्नि बनी रही तो हमारे देश मे अन्धकार नही होगा। उनका स्मरण कर, उनके मार्ग का अनुसरण कर, हम अपने प्रयत्नो से इस देश को पुनः प्रकाश युक्त करेंगे।......"

"......इस सभा की यह प्रथा रही है कि यहाँ दिवंगत प्रमुख आत्माओ के प्रति सम्मान प्रकट किया जाता रहा है।......उन लोगों की प्रशंसा हम कुछ चुने हुए शब्दों मे करते हैं, और वही उनकी महत्ता की हमारे पास माप होती है, किन्तु गाँधी जी की प्रशसा हम कैसे करेंगे? और उनकी महत्ता की माप हम कैसे करेगे? क्योंकि वे उस साधारण मिट्टी के बने नहीं थे, जिसके हमलोग बने हैं। वे आये और काफी समय तक जीवित रहे तथा चले गये। उनके लिए हमारी किसी प्रशंसा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन काल मे ही उससे अधिक प्रशंसा प्राप्त कर ली थी जितनी इतिहास मे किसी जीवित मनुष्य को मिली है, या जितनी उसकी मृत्यु के समय से अब तक मिली होगी। समस्त संसार ने उनके प्रति सम्मान प्रकट किया हैं और अब हम सब उसमे और क्या जोड सकते है? हम लोग जो उनके बच्चे हैं, और शायद

उनके शरीर से उत्पन्न बच्चों से भी अधिक निकट रहे हैं, उनकी कैसे प्रशंसा कर सकते हैं !......"

.....इतने वर्षों तक हमने जिस विभूति को देखा, हमारे बीच जो दिव्य-ज्योति-सम्पन्न व्यक्ति रहा, उसने हमें भी बदल दिया। आज हम जैसे भी हों उन्हीं के वर्षों के परिश्रम से बनाये हुए हैं। उनकी उस दिव्य हुताग्नि में से हममें से कइयों ने एक-एक चिनगारी ग्रहण की, जिसने हमें शक्ति दी और उन्हीं के बनाए हुए मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इसलिए आज उनकी प्रशंसा में कहे गये शब्द क्षुद्र हो जाते हैं, और हमारी प्रशंसा आत्मप्रशंसा का रूप ले लेती है। महापुरुषों के स्मारक पत्थर और धातु से निर्मित किये जाते हैं, लेकिन इस हुतात्मा ने अपने जीवनकाल में ही कोटि-कोटि हृदयों में अपनी प्रतिमा बना ली है। यहाँ तक कि हममें से प्रत्येक उनका अंश धारण किये हुए है। इस प्रकार वे सारे भारत पर छा गये हैं। केवल प्रासादों में ही नहीं, केवल विशिष्ट स्थानों में ही नहीं, बल्कि प्रत्येक गाँव और झोपड़े में, और दीनों और दुखियों में उसका रूप विद्यमान है। आज वह कोटि-कोटि जनता के हृदय में जीवित है, और युगों तक जीवित रहेगा।"

"महात्मा गाँधी प्राचीन भारत के, और यदि मैं कहूँ तो भावी भारत के भी सबसे बड़े प्रतीक थे।..... वह ईश्वरीय दूत अपने जीवन-काल में जैसा महान रहा है, अपनी मृत्यु के पश्चात् उससे भी अधिक महान हो गया है। हम सदैव उसके लिए शोकाकुल रहेंगे, क्योंकि हम मनुष्य ही हैं और अपने प्रिय स्वामी को भूल नहीं सकते। मैं जानता हूँ कि वे यह नहीं चाहते थे कि हम उनके लिए शोक मनायें। उनके नेत्रों में आँसू कभी उनके अत्यन्त प्रिय और निकटवर्ती के चले जाने पर भी नहीं आया, केवल उसके महान कार्य को पूर्ण करने की दृढ़ता की चमक अवश्य आयी। अतः यदि हम उनके लिए शोक मनायेंगे तो वे अप्रसन्न होंगे। उनके प्रति हमारा ठीक सम्मान यही होगा कि जिस कार्य को इतनी दूर लाकर वे पूरा किये बिना छोड़ गये हैं, उसे पूरा करने की हम

प्रतिज्ञा करें और उसे पूरा करने में हम अपना जीवन समर्पित कर दें।........आगामी युगों में इतिहास हमारे युग पर अपना निर्णय देगा। हमारी सफलता और असफलता का फैसला करेगा।......।”

बापू के बलिदान के बाद भारत का वातावरण पूर्णतया बदल गया। जो काम वे अपने जीवन काल में करना चाहते थे परन्तु पूर्ण करने के पहले ही जीवन-यात्रा का अन्त कर चुके थे, उनके महाप्रयाण के पश्चात् वे सब स्वतः बड़ी शीघ्रता के साथ पूर्ण होने लगे। साम्प्रदायिकता का प्रायः अंत सा हो गया, जो बापू की हार्दिक इच्छा थी। इसी के लिए वे जीवन पर्यन्त भारत माता की सेवा में संलग्न रहे। जब भी हम और हमारा देश कोई गलत कदम उठाने के लिए तत्पर होगा, राष्ट्र की उन्नति तथा मानवता के एक विशेष कार्य की पूर्ति के लिए शहीद हुई बापू की आत्मा, हमें अपने कदम रोक कर उसे सही करने के लिए मजबूर करेगी। बलिदान और इतिहास का सबक बेकार और झूठा नहीं होता। वह ऐसे ही समय किसी देश को अपनी भूल सुधारने में सहायता देता है। हम भी उससे शिक्षा ग्रहण करेंगे।

देशी रियासतों की समस्या

अंग्रेजी शासनकाल मे हिन्दुस्तान दो अप्राकृतिक, पर शासन की दृष्टि से एक दूसरे से सम्बद्ध भागो मे बँटा हुआ था। इसमे से एक अंग्रेजी हिन्दुस्तान कहलाता था जो ११ प्रान्तो मे बँटा हुआ था। इनमे शासन की समानता एक बडी सीमा तक प्राप्त की जा चुकी थी, तथा सभी प्रान्तों में तथाकथित जनतंत्र की भावना एवं जनतंत्रीय शासन प्रणाली का निश्चित रूप से विकास हो रहा था। दूसरा भाग देशी राज्यो के रूप में था, जिसमे से अधिकाश मे शासन के कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं थे और सामन्तशाही तथा स्वेच्छाचारी सत्ता दृढ़ता से जड़ पकड़े हुए थी। ये देशी रियासतें लगभग ६०० छोटे बड़े टुकड़े मे बँटी हुई थीं, जिनमे किसी भी प्रकार का साम्य पाना असम्भव था। इसमे से कुछ तो हैदराबाद, काश्मीर जैसी, क्षेत्रफल और महत्व दोनों की दृष्टि से अंग्रेजी प्रान्तों की समकक्ष थीं और कुछ काठियावाड़ की जागीर के समान इतनी छोटी कि उनका विस्तार कुछ एकड तक ही सीमित था।

हिन्दुस्तान के नकशे पर यदि हम दृष्टि डाले तो हमे मालूम होगा कि किसी प्रकार का भौगोलिक अन्तर अंग्रेजी हिन्दुस्तान और इन देशी रियासतो को बाँटता हुआ नहीं दिखलाई देता, केवल शासन का भेद उन्हें एक दूसरे से अलग किये हुए था। बाहर के आक्रमण और बाद मे अंग्रेजी शासन के स्थापन के पश्चात्, वे उनके आर्थिक शोषण और सास्कृतिक आधिपत्य के शिकार भी समान रूप से हुए थे। अंग्रेजी हिन्दुस्तान से देशी रियासतो को काटने वाले तत्व न तो भौगोलिक थे, न

आर्थिक और सांस्कृतिक ही; केवल ऐतिहासिक और राजनैतिक शक्तियों ने उन्हें दो भागों मे बाँट रखा था।

इन देशी रियासतों का विकास विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियो में हुआ था। इनमें से अधिकांश की स्थापना, मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् साहसी विद्रोहियों द्वारा की गयी थी, और कुछ राज्य ऐसे भी थे, जिनकी स्थापना अथवा जीर्णोद्धार अंग्रेजों द्वारा अपनी आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ-पूर्त्ति के लिए बाद मे हुआ। मि० वार्नर के शब्दों मे इन्हें संगठित कर अंग्रेजी शासक "अपने चारो ओर एक फौलादी घेरा बनाकर रहने" की व्यवस्था कर रहे थे। सर जान माल्कम ने बहुत दिन पहले ही अपनी राय जाहिर की थी, "यदि हम कुछ देशी राज्यों को, उनके हाथ से राजनीतिक सत्ता छीनकर, साम्राज्य के औजारों के रूप मे बना रहने दे तो हम हिन्दुस्तान मे, जब तक हमारी समुद्री-शक्ति बढ़ी-चढ़ी है अपना अस्तित्व बनाये रख सकते हैं।" इसमे कोई सन्देह नहीं कि इस मंतव्य के पीछे ठोस सचाई थी और इसको कार्यान्वित करने के पश्चात् सचमुच अंग्रेजी सत्ता अपने पाँव बहुत दिनों तक भारत मे जमाये रख सकी। स्वयं रशब्रुक विलियम्स ने भी इसे मानते हुए कहा है, "देशी राज्यों के शासक अंग्रेजी सम्बन्ध के प्रति बहुत अधिक राजभक्त सिद्ध हुए हैं।" इनमे से बहुतो का अस्तित्व अंग्रेजी न्याय और सेनाओं पर निर्भर था। लार्ड कर्जन के शब्दों में, "हमारी नीति के परिणाम स्वरूप देशी नरेश हिन्दुस्तान के साम्राज्यवादी संगठन के एक आवश्यक अंग बन गये हैं।"

देशी रियासतो का वर्णन करते हुए पं० जवाहरलाल जी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है, उनकी स्थिति देखकर "दम घुटने लगता है और साँस लेने में कठिनाई प्रतीत होती है। ऊपर से शान्त अथवा बहुत धीमें बहनेवाली धार के नीचे सर्वत्र रुकावट और सड़ांस है। हमें चारों ओर से अवरुद्ध, सीमित, मस्तिष्क और शरीर को जकड़े हुए होने की भावना का अनुभव होता है। उसके साथ ही यहाँ एक ओर तो हम जनता

को पिछड़ा हुआ और कष्टमय जीवन बिताते हुए पाते हैं और दूसरी ओर राजा के भव्य प्रासाद का चमकीला वैभव देखते हैं।" भारत के इन देशी राज्यों में वेगार और गुलामी की प्रथाएँ भी जारी थीं। नागरिक अधिकारों का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। राजा को बिना जनता के प्रतिनिधियों से पूछे सभी प्रकार के कर लगाने का अधिकार था। इन देशी राज्यों के सब अन्तर्राष्ट्रीय तथा सुरक्षा सम्बन्धी कार्य अंग्रेजी सरकार के माध्यम से होते थे। जैसा कि प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय विधान वेत्ता प्रो० वेस्टलेक ने लिखा है, देशी राज्यों और भारत सकार के बीच जितने वैधानिक सम्बन्ध थे उनका आधार अन्तर्राष्ट्रीय तथा सुरक्षा सम्बन्धी न रहते हुए सम्राज्यवादी था।

भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम, एशिया की नवीन जागृति तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति से बाध्य हो अंग्रेजों ने भारत को स्वराज्य देने का निश्चय किया। ३ जून १९४७ को घोषित की जाने वाली लार्ड माउण्टबेटन की योजना के प्रकाशन, और देश के प्रमुख राजनीतिक दलों द्वारा उसे स्वीकृत कर लिये जाने के पश्चात् बनने वाले 'भारतीय स्वाधीनता एक्ट' ने सारी परिस्थिति को एक बार फिर तेजी से बदल दिया। इस एक्ट के द्वारा अंग्रेजी सरकार ने देशी राज्यों पर से अपनी सार्वभौम सत्ता हटा ली थी, तथा स्वतन्त्र कर केन्द्रीय सरकार से उन्हें संयुक्त करने वाली सारी कड़ियों और सम्बन्ध को एक साथ तोड़ डाला था। इस घोषणा का अर्थ विभिन्न रियासतों ने भिन्न-भिन्न लगाया तथा यह बिलकुल सम्भव था कि इसके परिणाम स्वरूप देश में अराजकता फैल जाती। एव लोकतन्त्रात्मक भावना का उद्वेग दूषित हो जाता। फिर तो भारत की दशा योरोप के बलकान प्रदेशों से भी अधिक गई गुजरी हो जाती। अतः प्रधानमन्त्री नेहरू का यह कथन बिल्कुल यथार्थ था कि अगणित खण्डों में विभक्त स्वतन्त्र भारत तो पराधीन भारत से भी बुरी अवस्था को प्राप्त हो जायगा।

पं० नेहरू ने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण तत्परता से इस विषम स्थिति को

सम्हाला। यहाँ तक कि उनके विपक्षियो को भी उनकी दूरदर्शिता देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पडी। लार्ड माउण्टबेटन ने तो ६ अक्तूबर को रायल एम्पायर सोसायटी के समक्ष यहां तक स्वीकार किया कि "पण्डित नेहरू से बडे किसी राजनीतिज्ञ से मेरी भेंट आजतक नहीं हुई।"

बृटिश सरकार की देशी रियासत की स्वतंत्रता सम्बन्धी घोषणा के पश्चात्, स्थिति सुधारने के उद्देश्य से सरदार पटेल की अध्यक्षता मे एक देशी रियासती विभाग खोला गया, जिसका उद्देश्य दुर्दिन सी इस नयी घिरती हुई विकट समस्या को हल करना था। ५ जुलाई सन् १९४७ को अध्यक्ष-पद से सरदार पटेल ने एक राजनीतिज्ञता पूर्ण वक्तव्य प्रकाशित कराया, जिसमे उन्होंने देशी राज्यो को नये सघशासन मे सम्मिलित हो, उस एकता को बनाये रखने की ओर आकृष्ट किया, जिसके अभाव मे देश ने अनेकों कष्ट उठाये थे, और जिसके बिना भविष्य मे भी वह किसी महान कार्य की आशा नहीं कर सकता था। २५ जुलाई १९४७ को लार्ड माउन्टबेटन ने भी सरदार पटेल के कथन पर जोर देते हुए नरेशो को सचेत किया और कहा कि "उपनिवेश सरकार से आप उसी प्रकार नाता नही तोड़ सकते जिस प्रकार की आप जनता से नाता नहीं तोड सकते, जिसके कल्याण के प्रति आप उत्तरदायी हैं।" फलस्वरूप १५ अगस्त १९४७ को जब कि देश को केवल दो भागों मे ही विभाजित करने का सवाल नहीं था, बल्कि उसके शत-शत खंड हो जाने का भय था, नेहरू-सरकार की राजनीतिक दूरदर्शिता के फलस्वरूप, हैदराबाद, जूनागढ़ और काश्मीर की रियासतों को छोडकर शेष सभी रियासते भारतीय सघ मे सम्मिलित होने का वचन दे चुकी थी। हिन्द की एकता बनाये रखने की दिशा मे यह एक बहुत ही सुदृढ़ तथा महान पहला कदम था जिसने भारतीय प्रगति, संगठन और जनतन्त्रीकरण की दिशा में एक रक्तहीन क्रान्ति का सूत्रपात किया।

१५ अगस्त की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सभी देशी राज्यो मे राज-

नीतिक आन्दोलन तीव्रता के साथ फैलने लगा तथा जनता द्वारा जनतंत्रीय संस्थाओ की मॉग होने लगी। फलस्वरूप सरदार पटेल ने १६ दिसम्बर को अपने एक वक्तव्य मे कहा कि जब तक छोटी रियासतो के स्वतंत्र अस्तित्व को मिटा नहीं दिया जाता तब तक उनमे जनतंत्रीय शासन की स्थापना असम्भव होगी। यह एक प्रकार से भारत के गणतंत्रीय शासन का छोटे नरेशो के प्रति आदेश था, जिसके सामने अपने अस्तित्व को विवश हो खो देने और जनतंत्रीय संस्थाओ का निर्माण करने के अलावा उनके समक्ष कोई रास्ता ही न रह गया था। छोटे राज्यो के सम्बन्ध मे भारत सरकार की नीति की इतनी स्पष्ट व्याख्या इसके पहले कभी न हुई थी। १९४८ के ग्रीष्मारम्भ तक देश की लगभग सभी छोटी रियासते या तो अपने समीपवर्ती प्रान्तो मे विलय हो चुकी थीं या उनका शासन केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत आ गया था, और एक ऐसी समस्या जो पिछले कई वर्षों से समस्त प्रयत्नो को उपहासास्पद बना रही थी चुटकियों मे सुलझ गई।

ऊपर ही कहा जा चुका है कि इन रियासतों के अतिरिक्त तीन अन्य बड़ी देशी रियासतें—जूनागढ़, हैदराबाद और काश्मीर—ऐसी भी थी जो भारतीय संघ मे सम्मिलित न होना चाहती थी तथा अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं शासन बनाये रखना चाहती थीं। जूनागढ़ के नवाब विचित्र पुरुष थे। वे कुत्तों के शौकीन थे तथा उनके खास राजमहल मे ही ६०० विभिन्न जाति के कुत्ते थे। ये अपने स्वतन्त्र शासन का अलग ही डफली पर राग बजा रहे थे। विलय के लिए भारतीय गणतन्त्र के दबाव पर जूनागढ़ के नवाब ने भौगोलिक अनिवार्यताओं की अवहेलना करके, पाकिस्तान से गठबंधन करना चाहा। किन्तु भारतीय गणतन्त्र ने उनकी इस इच्छा को स्वीकार न किया। इस सम्बन्ध मे उसका सिद्धान्त जनानुमति के अनुसार अन्तिम निर्णय के पक्ष मे था। कालांतर मे जनमत ग्रहण किया गया और निर्णय भारतीय

यूनियन से मिलने के पक्ष में हुआ। अतः अन्त मे बाध्य हो उसे भारतीय संघ में मिलना पडा।

समग्रीकरण और लोकतन्त्रीकरण की इन बढती हुई प्रवृत्तियों के बावजूद भी एक बड़े राज्य ने न केवल भारतीय संघ में सम्मिलित होने से ही इन्कार किया, अपितु स्वतन्त्रता के अपने छूछे अधिकार को भी अनवरत घोपित करने मे न चूका, और भारतीय संघ से एक बडे संघर्ष की भी तैयारी में व्यस्त रहा। वह हैदराबाद का राज्य था। क्षेत्रफल की दृष्टि से वह केवल काश्मीर का समकक्ष और आबादी तथा आमदनी की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य था। हैदराबाद भारतीय संघ की सीमाओं से घिरा हुआ एक प्रदेश है। यातायात और आर्थिक सम्बन्धों की दृष्टि से वह भारतीय संघ का एक अविच्छिन्न अंग सा है। भाषा, संस्कृति और भौगोलिक दृष्टि से भी उसका कोई अपना अस्तित्व नहीं जान पडता। आबादी का ८६½ प्रतिशत हिन्दू धर्म को मानता है। पं० नेहरू के लिए "यह एक अकल्पनीय बात थी कि आधुनिक युग मे और हिन्दुस्तान के बिल्कुल मध्य में, जहाँ उसका हृदय एक नई स्वतन्त्रता की धडकन का अनुभव कर रहा हो, एक ऐसा प्रदेश भी हो सकता था जहाँ इस स्वतन्त्रता की पहुँच न हो और जो एक अनिश्चित काल के लिए स्वेच्छाचारी शासन के अन्तर्गत रहना पसन्द करता हो।" अतः हैदराबाद की स्वतन्त्रता का समर्थन पं० नेहरू आत्मनिर्णय के किसी भी अधिकार के आधार पर करने के लिए तत्पर नहीं थे। उन्होंने रेडियो से ब्राडकास्ट करते हुए कहा था, "हैदराबाद राज्य की भौगोलिक स्थिति और देश की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हैदराबाद स्वाधीन राज्य नहीं रह सकता। जब तक भारत स्वतन्त्र है हैदराबाद स्वतन्त्र नहीं रह सकता। आज प्रश्न यह है कि या तो भारत स्वाधीन रहेगा या हैदराबाद।.... अत. मेरे मत से हैदराबाद के लिए भारत में शामिल होने के सिवा और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। भारत में शामिल होने का यह अर्थ नहीं है कि हैदराबाद गुलाम हो जायेगा। देश के प्रत्येक भाग

में प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता देना हमारा उद्देश्य है। भारत में शामिल होने का अर्थ है संघ में समान रूप से साझीदार होना।......या तो हैदराबाद को भारत में सम्मिलित होकर रहना होगा या उसे भारत के नकशे से सदा के लिए मिट जाना होगा।"

भारतीय गणतन्त्र और हैदराबाद के आपसी तनाव को देखकर तत्कालीन गवर्नर जेनरल लार्ड माउंटबेटन ने स्थिति सुधारने के लिए निजाम के पास एक संदेश तार द्वारा भेजा था, "यदि निजाम सरकार अपने लिए अब भी वह रास्ता निश्चय करने में असमर्थ है. जो एक मात्र है, तो निजाम को यह प्रश्न जनता की इच्छा पर छोड़ देने के लिए तैयार रहना चाहिए और उसका जो भी निर्णय हो उसके अनुसार कार्य करे।" परन्तु निजाम ने यह प्रस्ताव न माना।

नवम्बर १९४७ में भारत सरकार और निज़ाम के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार निजाम ने हैदराबाद के वैदेशिक मामले, रक्षा और यातायात की व्यवस्था का भार, एक वर्ष के लिए भारत सरकार को सौंप दिया। परन्तु सच पूछा जाये तो इस समझौते में निजाम का उद्देश्य भारत-सरकार की आँख में धूल झोंक कर अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ा लेना था। समझौता करने के पश्चात् निजाम ने अपने एक पत्र में स्पष्ट किया था कि "स्थिति बनाये रखने के लिए, मैंने यह समझौता करके अच्छी तरह समझ लिया है कि जब तक यह बना रहेगा तब तक के लिए मैं इन अधिकारों को, (एक स्वतन्त्र और सार्वभौम सत्ता सम्पन्न नृपति के) कुछ महत्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में स्थगित कर रहा हूँ।" अतः इस समझौते के पश्चात् भी भारत से स्वतन्त्र रहने के दावे पर निजाम और उसकी सरकार बराबर जोर देती रही। दूसरी ओर भारत सरकार इस समझौते के लिए इसलिए तैयार हुई थी कि कालांतर पश्चात् शान्ति पूर्ण ढंग से निजाम को समझाकर भारत में सम्मिलित होने के लिए तैयार कर लिया जा सकता है। परन्तु हैदराबाद के अर्ध-सैनिक ढंग पर संगठित रजाकारों के प्रभाव के कारण वह पूर्ण न हो सकता था।

हैदराबाद में रजाकारों की संस्था 'इत्तिहादुल-मुसलमीन' का संगठन साप्रदायिक धर्मान्धता के आधार पर हुआ था। इस संस्था को आर्थिक सहायता के अतिरिक्त निजाम का समर्थन भी प्राप्त था। दुबले-पतले, धर्मान्ध, पर कुटिल आकृति के आवरण को चीर कर बीच-बीच में चमक उठने और आग उगलने वाली पैनी आखों वाले कासिम रिजवी के नेतृत्व में रजाकारां का यह संगठन अपना प्रभाव हैदराबाद पर तेजी से बढ़ाता जा रहा था। इसी संगठन का एक व्यक्ति लायकअली, छतरी के नवाब को अपदस्त कर प्रधान मंत्री के उत्तरदायित्व पूर्ण आसन पर आसीन हुआ था। वह रिजवी के इस सगठन को सब तरह की सहायता देता था। वह भारतीय गणतन्त्र को 'हिन्दुओं का राष्ट्र' समझ कर उससे घृणा करता था तथा किसी भी शर्त पर उसमें विलीन होने को तैयार नही था और अपनी स्वतन्त्रता का राग अलापता था।

नेहरू-सरकार के इस पूर्ण प्रकटीकरण पर कि वे हैदराबाद की स्वतंत्र सत्ता कभी भी बरदास्त नहीं कर सकते तथा उसे भारतीय सघ के अन्तर्गत अनिच्छा या इच्छा पूर्वक आना ही होगा, निजाम की सरकार अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने के लिए आधुनिकतम युद्ध के हथियार और लडाई के अन्य साधन प्राप्त करने और उस फौजी सामान को, जो हैदराबाद की सरकार ने देश के विभिन्न स्थानों पर बहुत बड़े परिमाण मे खरीद कर जुटा रखा था, तेजी से हैदराबाद पहुँचाने मे व्यस्त थी। सैनिक शक्ति एवं रजाकारो की शक्ति मे बेहद वृद्धि की जा रही थी। निजाम तो अपने प्रधान मंत्री लायक अली तथा रजाकारों के बौद्धिक रूप से कैदी थे।

रिजवी ने रजाकारो की एक सैनिक टुकड़ी के समक्ष ३१ मार्च १९४८ को कहा था, "हैदराबाद किसी भी अवस्था का सामना करने के लिए पूर्ण रूप से हथियारों से लैस है। यह एक इस्लामी राज्य है। भारत संघ दक्षिण से इस मुसलमानी शासन को उठा देने के लिए प्रयत्नशील है। हैदराबाद के मुसलमान याद रखो! कि भारत उपनिवेश मे अब भी साढ़े चार करोड़ मुसलमान हैं, जो हमारी ओर देख रहे हैं कि हम इस इस्लामी

राज्य का झण्डा ऊँचा करें। भारत संघ जब हमारे ऊपर आक्रमण करेगा, तो भारत के साढ़े चार करोड़ मुसलमान बगावत का झंडा खड़ा कर देंगे। मेरे मुसलिम भाइयों! दक्षिण में इस्लाम का भविष्य आपके ही हाथों में है, आपकी ही ओर संघ के भीतर रहने वाले हमारे भाई देख रहे हैं। जो अत्याचारों से पीड़ित हैं, क्या आप उनको धोखा देंगे? इसलिए मेरे मुसलमान भाइयो!.... आइये हम अपने एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार लेकर कूँच करें और दुश्मन के टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा इस्लाम का प्रभुत्व स्थापित करें।

२१ जुलाई को हैदराबाद की लायकअली सरकार के स्थाई 'लायक मन्त्री' यामिन जुबेरी ने भी इसी आशय का वक्तव्य दिया, तथा वहाँ के हिन्दुओं को यह चेतावनी दी कि यदि उन्होंने किसी प्रकार भी भारतीय संघ का साथ दिया तो उसे राजभक्ति के खिलाफ समझ कर उन्हें गोली मार दी जायेगी।

हैदराबाद के सम्बन्ध में भारत-सरकार बड़े धैर्य से कार्य कर रही थी। वह उसे भारत का एक अविभाज्य अंग मानती थी तथा उसकी स्वतंत्रता को कभी भी मान्यता देना पसन्द नहीं करती थी। हैदराबाद में होने वाली अव्यवस्था को देखकर नेहरू जी ने मद्रास में दिये गये एक व्याख्यान में यह साफ प्रकट कर दिया था कि हैदराबाद किसी प्रकार भी रास्ते पर आने को तैयार नहीं है, अतः उसके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करनी ही होगी। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी व्यक्त कर दिया था कि भारतीय संघ हैदराबाद की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं समझती, अतः इस सैनिक कार्यवाही को किसी प्रकार भी उसके विरुद्ध 'युद्ध' नहीं कहा जा सकता। तत्कालीन परिस्थिति की जटिलता समझ कर लायक अली की सरकार ने हैदराबाद के इस प्रश्न को संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा-परिषद के सामने रखा।

समस्या को सुलझते न देखकर जून १९४८ में नई दिल्ली में हैदराबाद के प्रतिनिधियों और भारत सरकार के बीच, दोनों के भावी सम्बन्धों का

निश्चय करने के लिए जो बातचीत चार दिनों तक चलती रही थी, उसके भङ्ग हो जाने के बाद नेहरू जी ने १७ जून को प्रेस-कान्फ्रेन्स मे साफ शब्दों में कहा था कि अब झगडे के शान्तिपूर्वक निपटाये जाने की कुछ भी आशा नहीं है। "भारत उन प्रस्तावों से और आगे जाने को कतई तैयार नहीं है तथा वह समझौते के उन प्रस्तावो में कतई परिवर्तन करने को तैयार न होगा। .. अगर समझौता नहीं होता और हैदराबाद भारत संघ मे सम्मिलित नहीं होता, तथा अवस्था ऐसी हो जाती है कि लडाई हो तो ऐसी लडाई का जो परिणाम होगा वह स्पष्ट है। एक ही परिणाम हो सकता है, और मुझे निश्चय है कि वह हैदराबाद के अधिकारियों को पसन्द न होगा। अगर शान्तिपूर्ण सुलझाव होना अब भी सम्भव है, तो हम उसे मंजूर करते हैं।"

१० अगस्त १९४८ को नेहरू-सरकार की ओर से भारतीय विधान परिषद के सामने श्वेत पत्र रखा गया, जिसमें हैदराबाद की सारी बातो पर पूर्ण प्रकाश डाला गया था। उसमें साफ शब्दों में यह कह दिया गया था कि भारत-सरकार हैदराबाद के कुशासन के प्रवाह को चुपचाप असहाय होकर देखती नहीं रह सकती। यदि वहाँ की न्याय और व्यवस्था की स्थिति, जिसके अस्तव्यस्त होने के लक्षण प्रकट होने लगे हैं, और भी बिगड़ती है और उससे भारत की शान्ति और सुव्यवस्था को खतरा उत्पन्न होता है तो भारत सरकार को बाध्य होकर हस्तक्षेप करना पड़ेगा। भारत सरकार निजाम के स्वतन्त्रता के दावे को किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकती, विशेषकर जब इस दावे को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं है।

७ सितम्बर १९४८ को प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय पार्लियामेण्ट मे इस आशय का वक्तव्य दिया, "एक वर्ष से अधिक समय से हम हैदराबाद की सरकार के साथ संतोषजनक और शान्तिपूर्ण समझौता करने के लिए हृदय से प्रयत्न करते रहे।........दुर्भाग्यवश समझौते के लिए हमारे बार-बार किये गये प्रयत्न जो एक-दो बार

सफल हो गये थे, अन्त में विफल ही रहे। कारण हैदराबाद में कुछ ऐसी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं, जिन्होने भारत के साथ कोई समझौता न होने देने का निश्चय कर लिया है। उन शक्तियो का नेतृत्व गैर जिम्मेदार व्यक्तियो के हाथ में है। ये बराबर अधिक शक्ति-सम्पन्न होती गयी और अब वहाँ की सरकार पर पूर्ण नियंत्रण रखती हैं।" इसके पश्चात् नेहरू जी ने वहाँ की जनता पर किये जाने वाले रजाकारो के नृशंस अत्याचारो का विशद् वर्णन किया जिसमें उन्होंने बतलाया कि उनके द्वारा विभिन्न स्थानो पर आयोजित सैनिक-प्रदर्शनो का स्पष्ट उद्देश्य अल्प संख्याओ पर आतंक फैलाना है। भारतीय सीमान्त प्रदेशों मे लूट-मार करने, भारतीय सैनिकों पर हमला कर उनके अस्त्र-शस्त्र नष्ट करने, स्त्रियों को वेइज्जत करने तथा आग लगाने की घटनाये प्रायः नित्य ही होती हैं। मुसलमान और गैर मुसलमान, सरकारी कर्मचारी और साधारण नागरिक, जिन किसी ने भी रजाकारो के विरोध का साहस किया वह उनके पाशविक क्रोध का भाजक बना। ७ सितम्बर १९४८ तक, नेहरू जी के कथनानुसार, रजाकारो ने ७० गावों पर आक्रमण किया, लगभग १५० बार भारतीय संघ की सीमा के भीतर प्रवेश किया, सैकड़ो व्यक्तियो को मार डाला, तथा अनेक स्त्रियो के साथ बलात्कार किया अथवा उन्हें अपहरण कर के ले गये, १८ ट्रेनों पर आक्रमण किया और एक करोड़ से अधिक की जायदाद लूटी। नेहरू जी ने आगे कहा था कि "कोई सभ्य सरकार अपनी सीमा के भीतर ऐसे अत्याचार होते नहीं देख सकती।...अतः इस समय सबसे प्रमुख समस्या हैदराबाद-रियासत के जीवन एवं सम्मान की रक्षा तथा पाशविक आतंक की समाप्ति करना है।"

हैदराबाद की सरकार ने उस आतंकवाद को दबाने मे अपनी अनिच्छा एवं असमर्थता प्रकट की। वहाँ के शान्तिप्रिय नागरिकों का जीवन इतना अरक्षित देखकर भारत-सरकार ने फिर से अपनी सेना, व्यवस्था-स्थापन के लिए सिकंदराबाद मे भेजना चाहा परन्तु निजाम ने तत्कालीन अवस्था को सामान्य बतलाकर उस प्रस्ताव को अनावश्यक बतलाया।

इसके पश्चात् गवर्नर जेनरल ने रजाकारों को विगठित कर देने की माँग की परन्तु निजाम ने इस माँग पर भी विशेष ध्यान न दिया। तत्कालीन परिस्थिति को लेकर भारत-सरकार तथा निजाम-सरकार मे काफी पत्र-व्यवहार हुए परन्तु उसका कोई विशेष फल न निकला। उधर पूर्ण अराजकता तथा नृशंस अत्याचारो के कारण साधारण नागरिको की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक हो गयी थी। फलस्वरूप शान्ति और सुव्यवस्था के नाम पर भारतीय सेना ने हैदराबाद की सीमा मे प्रवेश किया। निजाम-सरकार को भी भविष्य की काली घटाओं का हलका-सा आभास लग गया था। अतः अपने अस्तित्व को संकट में देखकर हैदराबाद की सरकार ने मुईननवाज जग के नेतृत्व मे एक प्रतिनिधि दल हैदराबाद के मामले की पैरवी करने के लिए राष्ट्र संघ में भेजा। उन्होंने सयुक्त राष्ट्र संघ से वर्तमान परिस्थिति पर तत्काल विचार कर कार्य करने की अपील की, पर हैदराबाद मे भारतीय सेना के प्रवेश के पश्चात् तक उस पर विचार न हो सका। यह पहला और अंतिम अवसर था जब भारतीय संघ द्वारा निर्धारित समग्रीकरण और जनतंत्रीकरण की प्रवृत्ति को किसी देशी राज्य ने शस्त्र-प्रतिरोध के द्वारा रोकने का प्रयत्न किया था। परन्तु भारतीय सेना के चतुर सेना-नायकों ने एक सौ नौ घटे के अन्दर निजाम की सेना को शस्त्र-समर्पण के लिए बाध्य किया। १८ सितम्बर को सबेरे विजयी भारयीय सेना पुनः, सात मास पश्चात् सिकन्दराबाद में प्रविष्ट हुई।

१८ सितम्बर की रात को साढ़े आठ बजे नेहरूजी ने भाषण दिया, "मैं हैदराबाद के मुस्लिम और गैरमुस्लिम दोनों को बधाई देता हूँ। इस देश के लोग आपस में हथियारों से लड़े यह हमारे लिए दुःख की बात है। लेकिन यह प्रसन्नता की बात है कि झगड़ा अब समाप्त हो गया है। हैदराबाद के शासकवर्ग ने एक गलत रास्ता पकड़ा था और उसी से यह झगडा पैदा हुआ था।" इसके पश्चात् उन्होंने, हैदराबाद के हिन्दू और मुसलमानो ने युद्ध और अशान्ति के समय जो धीरता, संयम, अनुशासन और एकता का परिचय दिया था, उसके प्रति प्रसन्नता जाहिर

की तथा कहा कि "हमे संयुक्त भारत का दृढ़ता से निर्माण करना चाहिए, जिसमें किसी भेद-भाव के बिना सबको समान अधिकार और अवसर प्राप्त हो।"

सुरक्षा-परिषद् में भारत की ओर से हैदराबाद के सम्बन्ध में पैरवी करने के लिए नेहरूजी ने सर रामास्वामी मुदालियर को नियुक्त किया था। पहले-पहल इस प्रश्न पर परिषद् में विचार १६ सितम्बर, १९४८ को आरम्भ हुआ। सर रामास्वामी ने हैदराबाद के आरोपो का उत्तर देते हुए कहा था, कि मेरी सरकार के विचार से हैदराबाद को इस काउन्सिल के सामने इस प्रश्न को लाने का कोई भी अधिकार नहीं है। वह एक स्वतंत्र राज्य नहीं है। न तो अति प्राचीन काल मे न १९४७ के अगस्त के पहले अंग्रेजो के शासन काल में ही वह पूर्ण स्वतंत्र था। पीछे निज़ाम ने अपनी ओर से इस मामले को सुरक्षा परिषद् से उठा लिया, यद्यपि उसके पूर्व प्रतिनिधि बाद में भी काफी दिनों तक वह प्रश्न पुनः परिषद् के समक्ष लाने का असफल प्रयत्न करते रहे।

स्वाधीनता के प्रथम वर्ष का अन्त होते-होते इस प्रकार समस्त देश मे राजनीतिक एकता की स्थापना की गई। देशी राज्यो और अन्य प्रान्तों के बीच जो अप्राकृतिक व्यवधान, अपनी साम्राज्यवादी भित्ति को स्थिर रखने के लिए अग्रेजो द्वारा बनाया गया था वह टूट गया। विचारो और प्रवृत्तियों की धाराये अब आसानी से इस विशाल देश के तिरंगे झंडे के नीचे से एक भाग के जीवन के स्पन्दन का अनुभव दूसरे भाग में पूर्णतः करा सकती थीं।

इस प्रकार, यद्यपि विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने के पश्चात्, अनिवार्य कठिनाइयों के रोड़ो को चुन-चुन कर अपने स्वातन्त्र पथ से हटाकर, हम अपने लक्ष्य की एक मंज़िल को तय कर चुके थे; परन्तु स्वतन्त्रता की कल्पना के साथ हमारी आँखो मे भावी समाज के जो उज्ज्वल स्वप्न झूल रहे थे उन्हे प्राप्त करना अभी ज्यों का त्यों बाकी था। हम अपने ध्येय की ओर आगे बढ़े अवश्य किन्तु उनकी शीतल छाया अभी दूर थी।

जिस सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की बात हम सोचते हैं, उसकी कीमत हमें अपने राजनीतिक संघर्ष से कई गुना अधिक चुकानी होगी। आज कोई भी देश सिर्फ अपनी ही समस्याओं की दीवारो मे बँधा नहीं रह सकता। बाहर की विशाल दुनिया की हलचल, उसकी सीमा को लाँघ कर भी उस पर सदा प्रभाव डालती है। इस स्थिति में हमें निष्पक्ष रूप से अपने देश की समस्याओं को अंतर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर तौलना होगा। उस अहिंसा, सत्य, जनतन्त्र और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की तुला पर जिस पर हमारा महान राष्ट्र चलना चाहता है।

काश्मीर-समस्या

यों तो काश्मीर की शोषित-शापित जनता और स्वेच्छाचारी डोगरा शासकों में बहुत दिनों से संघर्ष चल रहा था, किन्तु पाकिस्तान के निर्माण और भारत में प्रस्फुटित स्वतन्त्रता के स्वर्णिम नव-विहान के फलस्वरूप वहाँ की शस्य-श्यामला भूमि में भी जनतन्त्र का बीजारोपण हुआ। जनता का शासन, काश्मीर की हिन्दू-मुसलमान जनता के हाथों में पहली बार आया, और सही माने में पहली बार स्वतन्त्र राष्ट्र के स्वतंत्र वायु से पुलकित प्राङ्गण में उन्होंने खुल कर साँस ली। परन्तु काश्मीरी जनता के भाग्य में इतने लम्बे अर्से के कठिन संघर्ष के पश्चात् पायी हुई स्वतन्त्रता का सुख और चैन से उपभोग करना शायद न लिखा था। भारत के विभाजन और अंग्रेजों की सत्ता हटने के साथ ही कूटनीतिक शतरंजी दाव पर उसका भाग्य जबरदस्ती लगाया गया। असहाय काश्मीरी जनता के पास किस्मत की इस बाजी के हार-जीत को दूर खड़े होकर देखने के अलावा और कोई चारा न था।

१५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान का शासन क्रमशः कांग्रेस और मुस्लिम लीग को सौंप दिया गया था, तथा सत्ता-हस्तांतरण की शर्तों के अनुसार देशी राज्यों पर से भी वृटिश प्रभुशक्ति का नियंत्रण उठ गया था। फलस्वरूप नव-निर्मित राष्ट्रों—भारत एवं पाकिस्तान—में से किसी एक से अपनी इच्छानुसार स्थायी संबंध स्थापित करने के लिए वे स्वतन्त्र हो गये थे। काश्मीर-सरकार ने दोनों ही राष्ट्रों से व्यावहारिक 'संधि स्थापित की। परन्तु पाकिस्तान काश्मीर की इस तुच्छ संधि से ही

संतुष्ट न था; वह तो भारत-स्थित अन्य प्रदेशों की भाँति स्वतन्त्र काश्मीर को भी पूर्णतः आत्मसात् कर जाने का कुचक्र रच रहा था।

यद्यपि महात्मा गाँधी ने कहा था कि "काश्मीर में हिन्दू-मुसलमान का कोई सवाल नहीं है। भाषा और संस्कृति से वे सब एक से लगते हैं और हैं भी। काश्मीर का शासन उनके ही हाथों में और उन्हीं की इच्छानुसार होना चाहिए।" किन्तु फिर भी महत्वाकांक्षी 'कायदे आजम' जिन्ना की 'न्यायप्रियता' वहाँ की जनता को आत्मनिर्णय के इस हक से वंचित कर, काश्मीर को जबर्दस्ती 'पाकिस्तान' में मिलाना चाहती थी। और अपने इस 'शुभ जनतांत्रिक' उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'कायदे आजम' ने सीमाप्रान्त के कबाइली लुटेरों को तैयार किया था। उन्होंने उनमें भयंकर साम्प्रदायिक जोश भरने के लिए प्रसिद्ध किया कि मुस्लिम राज्य पाकिस्तान ने काश्मीर में 'जेहाद' (धर्म-युद्ध) छेड़ दिया है। अर्द्ध-सभ्य कबाइलियों द्वारा काश्मीर में किये गये निर्मम अत्याचारों के विरोधों और आलोचनों का जवाब देते हुए सीमाप्रान्त के मुस्लिम लीगी मंत्री मियाँ अब्दुल कयूम खाँ ने बड़े शर्मनाक शब्दों में उन कुत्सित कार्यों का समर्थन किया था, और उन आक्रमणों को उचित बतलाया था।

यद्यपि काश्मीर की सरकार पाकिस्तान अथवा भारत संघ से अपना स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने के प्रश्न को कुछ दिनों तक स्थगित रखना चाहती थी, तथा उस पर शान्ति के समय, जनता के मतानुसार निर्णय करना चाहती थी; किन्तु पाकिस्तान से सहायता प्राप्त इस आकस्मिक आक्रमण ने उसे तुरन्त निर्णय करने के लिए बाध्य किया। २६ अक्टूबर को रक्षा के आश्वासन पर काश्मीर सरकार ने अपने को भारतीय संघ में सम्मिलित कर लिया। अपने एक नवीन अंग, काश्मीर और उसकी जनता की बर्बर आक्रमणकारियों से रक्षा के लिए भारतीय संघ ने अविलम्ब सेना भेजने की व्यवस्था की। भारतीय सेना ने ठीक समय पर पहुँच कर श्रीनगर की रक्षा की तथा कबाइली और पाकिस्तानी सेना को पीछे हटना पड़ा। काश्मीर जानेवाले सारे स्थलमार्ग पाकिस्तान-स्थित

प्रदेशों से होकर जाते थे, अतः भारत-सरकार को सेना तथा सैन्य-सामग्री भेजने की व्यवस्था वायुयानो द्वारा करनी पडी। भारतीय हवाई-सेना के विमानो ने लड़ाई मे अपनी सेना को सहायता पहुँचाने के साथ ही दुर्घटनाग्रस्त स्थानो से वहाँ के निवासियो को हटाकर सुरक्षित स्थानो मे पहुँचाने का भी कार्य किया।

इन्ही दिनो पं० नेहरू ने भारतीय पार्लियामेन्ट के समक्ष काश्मीर सम्बन्धी एक श्वेत पत्र उपस्थित किया, जिसमें उन्होंने काश्मीर सम्बन्धी अपनी नीति तथा उद्देश्य का पूर्ण स्पष्टीकरण किया था। उसमे यह पूर्ण स्पष्ट कर दिया गया था कि अन्य स्थानो की भाँति काश्मीर के विषय मे भी भारत-सरकार की यह इच्छा है कि उसके भारत अथवा पाकिस्तान मे सम्मिलित होने का अन्तिम निर्णय वहाँ की जनता करे। अतः भारत अस्थायी रूप से काश्मीर को उसके संकटकाल मे अपने संघ में सम्मिलित करता है। शान्ति-स्थापन के पश्चात् इस विषय पर जनमत-ग्रहण करने का आश्वासन दिया गया। शान्ति-स्थापन के लिए प्रयत्नशील नेहरु-सरकार ने कई बार पाकिस्तानी प्रतिनिधियो को इस विषय पर वार्तालाप करने के लिए निमंत्रित भी किया, परन्तु इन सब का कोई भी फल न हुआ; तथा पाकिस्तानियो की प्राप्य सहायता से काश्मीर और जम्मू मे आक्रमणकारियो की गतिविधि बढ़ती ही रही। अत मे भारत-सरकार को अतिम उपाय के रूप मे संयुक्तराष्ट्रसंघ की सुरक्षा-परिषद् से प्रार्थना करनी पडी कि "वह पाकिस्तान-सरकार से आग्रह करे कि वह दोनो देशो मे अशान्ति पैदा करने की इस नीति को त्याग दे।" भारत-सरकार ने सुरक्षा-परिषद् को १ जनवरी १९४८ को एक पत्र लिखकर चार्टर की धारा ३५ के अतर्गत उससे यह अनुरोध किया था। सुरक्षा-परिषद् ने जाँच के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की, इसने १३ अगस्त १९४८ को अपना निम्नलिखित निर्णय दिया। (१) काश्मीर की लडाई बंद कर दी जावे। (२) दोनो देशो में एक विराम-सन्धि की जाय जिसके अनुसार पाकिस्तानी सेनाये काश्मीर से हटा ली जाये, और तत्पश्चात् भारतीय सेनाये

भी रियासत की रक्षा के अतिरिक्त वहाँ से हटा ली जाये। (३) ऐसी परिस्थिति उत्पन्न की जाये कि स्वतन्त्रतापूर्वक जनमत-संग्रह द्वारा रियासत के भविष्य का निपटारा किया जा सके। एडमिरल चेस्टर निमिट्ज जना-नुमति के अधिकारी नियुक्त हुए। किन्तु कमीशन के इस निर्णय का पूर्ण सदुपयोग न हो पाया। अंत में कमीशन ने अपने निर्णय को वापस ले लिया तथा असफल हो वापस लौट गयी। काश्मीर का प्रश्न पुनः संयुक्त राष्ट्र संघ के विचाराधीन पड़ा रहा। सचमुच, यह कैसी घृणित और स्वार्थपूर्ण कूटनीतिक चाल है कि संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा-परिषद् में अधिनायकों की तरह स्थित जिन शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रों ने, कोरिया में चीन के एक सूक्ष्म हस्तक्षेप के फलस्वरूप उसे आक्रमणकारी राष्ट्र करार कर दिया, उन्होंने इतनी भी तटस्थता और न्यायप्रियता दिखलाने का कष्ट न किया कि काश्मीर मे पाकिस्तानियों की वास्तविक और प्रत्यक्ष चढ़ाई को एक स्वार्थपूर्ण आक्रमण घोषित कर उसके विरुद्ध भी यदि वैसी ही सैनिक कारंवाई न भी करते तो कम से कम भारत के रक्षात्मक कार्यों का सम-वेदनात्मक समर्थन करते तथा उसे सहयोग देते।

भारत और पाकिस्तान दोनों ही संघों की सेनायें काश्मीर की रण-स्थली पर जमी रहीं। एक का उद्देश्य था काश्मीर की रक्षा और दूसरे की इच्छा थी काश्मीर के स्वतन्त्र अस्तित्व का अन्त कर देना। पाकिस्तान की ओर से भारत के विरुद्ध सर्वथा निर्मूल और अनर्गल प्रचार होते रहे। पं० नेहरू ने इन असत्य आरोपों का उत्तर देते हुए श्रीनगर में कहा था, "पाकिस्तानी पत्रों का यह प्रचार निराधार है कि भारत पाकिस्तान पर हमला करना चाहता है। संघर्ष से हमे कोई लाभ नहीं। जब पाकिस्तान ने काश्मीर पर हमला किया, तो अपने पड़ोसी राष्ट्र की रक्षा करना हमारा नैतिक कर्तव्य हो गया। पाकिस्तानी पत्रों के विचार मे काश्मीर में भारतीय सेना के इकट्ठा होने का मतलब पाकिस्तान पर हमला करने की तैयारी करना है। पांडुरोगी की आँखो को हर एक

चीज पीली ही दिखाई देती है। हम तो पाकिस्तान द्वारा प्रेरित आक्रमण-कारियों से काश्मीर की रक्षा कर रहे हैं।"

एक अन्य अवसर पर पं० नेहरू ने रेडियो पर भाषण देते हुए कहा था, "हमारे पडोसी देश की सरकार ने ऐसी भाषा का प्रयोग करते हुए, जो सरकारों और यहाँ तक कि जिम्मेदार लोगों की भाषा नही है, भारतीय संघ मे काश्मीर के प्रवेश के सम्बन्ध मे भारत-सरकार पर धोखाधडी और हिंसा का अभियोग लगाया है। मैं वैसी भाषा नहीं बोलूँगा क्योंकि मै एक जिम्मेदार सरकार और जिम्मेदार लोगों की ओर से बोल रहा हूँ। बाहरी आक्रमणकारियो के आक्रमण के कारण जम्मू और काश्मीर रियासत के बहुत से भाग पहले ही रौंदे जा चुके हैं। आक्रमणकारी पूर्णतः शस्त्रास्त्रो से लैस थे और उन्होंने गांवों और शहरो को खूब लूटा एवं नष्ट-भ्रष्ट किया। उन्होंने बहुत से लोगो को मृत्यु के घाट उतार दिया। जब श्रीनगर के ऊपर भी विनाश की विभीषिका मँडराने लगी तब हमने सहाय-तार्थ सेना भेजी। हम लोगों ने काश्मीर के सम्बन्ध मे जो पग उठाया है, उसके परिणामों को खूब सोच-समझ कर ही। मुझे पूरा विश्वास है कि हमने जो कुछ किया है ठीक किया है। हम ऐसा न करते तो विश्वास-घात और कायरता के दोषी ठहराये जाते, और यह समझा जाता कि हमने तलवार के आगे, और उसके फलस्वरूप होने वाले अग्निकाण्डो, बलात्कारो और जनसंहार के समक्ष घुटने टेक दिए।".. .

"हमे यह नही भूलना चाहिए कि काश्मीर का यह संघर्ष आक्रमण-कारियों के विरुद्ध वहाँ की जनता का है। हमारी सेना इस संघर्ष मे वहाँ की जनता की सहायता के लिए गयी हैं, और जैसे ही आक्रमणकारी काश्मीर से निकाल दिये जायेंगे, वह वहाँ न रहेगी, तथा काश्मीर का भाग्य स्वयं वहाँ के लोगो पर छोड़ दिया जायेगा। हमे कितने ही सकटो से गुजरना पडा है, और अब भी उनका अंत नही हो पाया है। काश्मीर पर आक्रमण करने वाले शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित हैं और उनका नेतृत्व योग्य व्यक्तियो के हाथों मे है। हमे पाकिस्तान की सरकार से यह पूछने

का हक है कि ये लोग किस तरह और कैसे उत्तर-पश्चिम के सीमाप्रान्त, अथवा पश्चिमी पंजाब से होकर आये हैं, और कैसे इतनी अच्छी तरह शस्त्र-सज्जित हैं ? क्या यह अन्तर्राष्ट्रीय विधान की अवहेलना और एक पड़ोसी राष्ट्र के प्रति शत्रुता की कार्यवाही नहीं है ? क्या पाकिस्तान की सरकार इतनी कमजोर है कि वह एक अन्य देश पर आक्रमण करने के लिए, अपने प्रदेश से होकर गुजरनेवाली सेना को नहीं रोक सकती, अथवा वह यह चाहती है कि ऐसा ही हो ? हमने पाकिस्तान की सरकार से बारम्बार आक्रमणकारियों को आने से रोकने, और जो आ गये हैं उन्हें लौटा ले जाने को कहा है। हमने काश्मीर की जनता को आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा करने का वचन दिया है और हम अपने इस वचन पर दृढ़ रहेंगे।"

यद्यपि १ जनवरी १९४९ को दोनों देशों के बीच होने वाला यह युद्ध बंद हो गया था, किन्तु फिर भी काश्मीर में पूर्ण शांति और व्यवस्था-स्थापन का सभी प्रयत्न असफल रहा। फलतः कुछ दिनों पश्चात् सुरक्षा-परिषद् ने काश्मीर के प्रश्न को पुनः उठाया। १७ दिसम्बर, सन् १९४९ को उसने अपने सेनापति, जेनरल मेकनाटक को दोनों देशों के प्रतिनिधियों के परामर्श से इस प्रश्न के हल का अधिकार दिया। मेकनाटक महोदय ने दोनों देशों के प्रतिनिधियों से वार्तालाप किया, और तत्पश्चात् समस्या हल के लिए एक योजना बनायी, जिसकी मुख्य बातें निम्नलिखित थीं। (१) काश्मीर का प्रश्न निष्पक्ष जनानुमति के लोकतंत्रात्मक ढंग से, शीघ्र से शीघ्र हल किया जाये। (२) दोनों राज्य एक मत हो 'लड़ाई बंद करो' रेखा के दोनों ओर से अपनी सेना इस प्रकार हटा लें कि किसी भी पक्ष को किसी भी प्रकार की आशंका न रह जाये। (३) 'लड़ाई बंद करो' रेखा के दोनों ओर की काश्मीरी सेनायें इतनी कम कर दी जायें जितनी शांति और व्यवस्था के लिए आवश्यक हो। (४) दोनों राज्य एकमत होकर यह स्वीकार करें कि उनकी अनुमति से संयुक्त राष्ट्र संघ का मंत्री

जिस व्यक्ति को सयुक्तराष्ट्र संघ का प्रतिनिधि नियुक्त करे वह लोकतंत्रात्मक ढंग से इस समस्या के हल का निरीक्षण करे।

यह योजना भारत को स्वीकार न थी। जिस बात की जॉच के लिए भारत ने काश्मीर के प्रश्न को संयुक्त राष्ट्र सघ के विचाराधीन किया था उसकी ओर लेशमात्र भी ध्यान न देकर वह काश्मीर की समस्या को जटिलतर बना रहा था। प्रश्न तो यह था कि कौन राज्य आक्रमण का दोषी था, किन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ इस बात पर विचार कर रहा था कि अन्त मे काश्मीर की समस्या किस प्रकार हल की जाये।

१४ मार्च सन् १९५० को सुरक्षा परिषद् ने काश्मीर की समस्या के हल के लिए एक निर्णायक की नियुक्ति का प्रस्ताव पास किया। पॉच महीने के भीतर भारत और पाकिस्तान अपनी सेनाओ को हटाने को थे, और तत्पश्चात् निर्णायक महोदय जनानुमति के लोकतंत्रात्मक ढग से काश्मीर के प्रश्न को हल करने को थे। सर ओवेन डिक्सन, जो आस्ट्रेलिया के न्यायाधीश थे इस प्रश्न के लिए निर्णायक नियुक्त हुए। उन्होंने काश्मीर के प्रश्न की जॉच करके अपनी रिपोर्ट तैयार की और यह स्वीकार किया कि पाकिस्तान ने काश्मीर पर आक्रमण किया है। किन्तु उन्हें इस बात की जॉच करने का न तो अधिकार था और न घोषणा करने का ही। सुरक्षा-परिषद् का प्रस्ताव इस सम्बन्ध में मौन था। इसीसे सुरक्षा-परिषद् तथा उसके कर्णधार कितने निष्पक्ष थे इसका अन्दाज लगाया जा सकता है। डिक्सन महोदय ने अन्त में सुरक्षा-परिषद् से यह सिफारिश की कि काश्मीर की समस्या का हल परस्पर वार्तालाप द्वारा भारत और पाकिस्तान पर छोड दिया जाये। और जब तक समझोता न हो जाये, 'लड़ाई बन्द करो' (Cease fire Line) की रेखा के अनुसार काश्मीर का प्रदेश पाकिस्तान और भारत के आधीन रहे। भारत को यह निर्णय भी अमान्य था। इसके सम्बन्ध मे सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि पाकिस्तान को आक्रमणकारी मानते हुए भी संयुक्त राष्ट्रसंघ उसके विरुद्ध कार्रवाई करने मे हिचकिचाता

था, जो साधारणतः इस प्रकार के राज्यो के साथ की जाती, तथा उसके चार्टर के अनुसार की जानी चाहिए थी। अपने स्वार्थों से संचालित शक्तिशाली राष्ट्रों ने सुरक्षा-परिषद् में काश्मीर की समस्या को कभी भी तटस्थ तथा न्यायपूर्ण दृष्टि से देखने का प्रयत्न नहीं किया। इसके पश्चात् सुरक्षा-परिषद् ने इस समस्या के हल के लिए कई प्रयत्न किये, जिनमें निर्णायकों का कार्य घटनास्थल का निरीक्षण कर समस्या-हल के लिए अपनी रिपोर्ट देना था। पर भारत को यह पक्षपातपूर्ण निर्णय भी मान्य न था। ऐसा विदित होता है कि सुरक्षा-परिषद् काश्मीर को विभाजित देखने को विशेष उत्सुक है। किन्तु भारत समस्त काश्मीर को अपना अंग समझता है। वह जनानुमति द्वारा इस प्रश्न को हल करने के लिए तैयार है, किसी विदेशी निर्णायक के सर्वोच्च निर्णय द्वारा नहीं; और यह भी उसी अवस्था मे जब आक्रमणकारी सेनाये काश्मीरी प्रदेश से हट जायें; कारण आक्रमणकारियों की उपस्थिति में, जनानुमति का पता लगाना एक भयंकर पाखंड के समान होता।

नवीन प्रतिनिधि मण्डल के प्रधान डा० ग्राहम की, काश्मीर सम्बन्धी रिपोर्ट, २३ दिसम्बर १९५१ को सुरक्षा-परिषद् के समक्ष विचारार्थ उपस्थित हुई। भारत के प्रधान प्रतिनिधि श्री बेंगल नरसिंह राव, तथा पाकिस्तान के श्री जफरुल्ला खॉ अपनी सरकार के विचार व्यक्त करने को वहॉ उपस्थित थे। डा० ग्राहम की रिपोर्ट में यह व्यक्त किया गया था कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही, इसके पहले कि संयुक्तराष्ट्र द्वारा निश्चित जनानुमति ली जा सकती, सुरक्षा-परिषद् की आज्ञा का उल्लंघन करते हुए घटनास्थल से अपनी सेना हटाने में असफल रहे।

मि० ग्राहम ने दोनों राष्ट्रों को एक निश्चित सैन्य-संख्या ही उनके द्वारा अधिकृत 'लड़ाई बन्द करो' रेखा की सीमा मे रखने का प्रस्ताव किया। इसके अतिरिक्त तत्सम्बन्धी निम्नलिखित पुराने सुझावों को उन्होंने अपने प्रस्ताव मे फिर से दुहराया था।

(१) १५ जुलाई १९५२ तक काश्मीर के निश्चित स्थल से, स्वसम्मति से दोनो राष्ट्रों को अपनी सेना हटा लेनी चाहिए।

(२) दोनो देशों को, कम से कम संख्या मे 'युद्ध बन्द करो' रेखा तक अपने सैनिक रखने चाहिएँ।

(३) जनानुमति-निरीक्षक अधिक से अधिक १५ जुलाई १९५२ तक इस कार्य के लिए नियुक्त हो जाना चाहिए।

प्रतिनिधि मण्डल के उपर्युक्त प्रथम दो प्रस्तावों को पहले की ही भाँति भारत-सरकार की ओर से फिर यह कह कर अमान्य कर दिया गया कि भारत काश्मीर की रक्षा के लिए उत्तरदायी है, अतः वह छूंछे आश्वासन पर ही उस स्थल से अपनी सेना हटा लेने अथवा संख्या मे कम करने मे असमर्थ है। अत में सुरक्षा-परिषद् ने यह प्रश्न जेनेवा-सम्मेलन तक के लिए स्थगित कर देने का निश्चय किया। न्याय और निष्पक्षता का ढोंग करती हुई, शक्तिशाली राष्ट्रों की कठपुतली सुरक्षा-परिषद् ने अनेक प्रस्तावो द्वारा भारत-सरकार को बहलाने का प्रयत्न किया, परन्तु संघर्ष और दुर्दिन मे पले भारतीय नेताओं ने कच्ची गोली नहीं खेली थी।

इसी समय जब कि काश्मीर की समस्या, सयुक्तराष्ट्र संघ मे जटिल होती जा रही थी, काश्मीर के प्रधान मन्त्री शेख अब्दुल्ला गिरगिट की तरह रंग बदल रहे थे। उनके कार्य, उनके वक्तव्य अब भारत के मस्तिष्क मे उनके प्रति सन्देह उत्पन्न करने लगे थे। आचार्य कृपलानी के शब्दों मे, "वे अपने विचार व्यक्त करने मे ऐसी भाषा का उपयोग करने लगे थे जो काश्मीर के मित्र भारत की स्थिति बड़ी हास्यास्पद बनाती हुई उनके शत्रुओं को विनोदपूर्ण कटाक्ष करने का अवसर दे रही थी।" वे अब काश्मीर के लिए एक अलग राष्ट्र-पताका बनाने का निश्चय कर रहे थे। इसके अतिरिक्त अब वे डोगरा शासक को, उसे नाम मात्रके शासनाधिकार से भी वंचित करना चाहते थे। यह विधान के लिए संकट की एक पूर्व सूचना थी, तथा जो जनता के बीच साम्प्रदायिकता की भावना

उत्पन्न कर रही थी। शेख अब्दुल्ला ने काश्मीर का सदरे-रियासत अब जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति को ही बनाने का निश्चय किया था।

इन आशंकाओं तथा अनिश्चितता के वातावरण में २६ अगस्त को जेनेवा-कान्फ्रेंस आरम्भ हुई, जिसमें दोनों देशों—भारत और पाकिस्तान—ने डा० ग्राहम के निःसैनीकरण तथा जनानुमति लेने के कार्य में योग देने का वचन दिया। दोनों देशों ने जेनरल निमिट्ज को जनानुमति-निरीक्षक मानना स्वीकार किया।

संयुक्तराष्ट्र के स्वार्थी अधिनायकवादी देश, प्रजातन्त्र की रक्षा, न्याय और शान्ति के नाम पर अपना कूटनीतिपूर्ण पासा फेंक ही रहे थे कि अगस्त १९५३ में काश्मीर की आन्तरिक राजनीतिक स्थिति भयंकर हो गयी। गत मास से ही, प्रधान मन्त्री शेख अब्दुल्ला और उनके सहयोगी मन्त्रियों में, काश्मीर और भारत के सम्बन्ध पर गहरा मतभेद चल रहा था। यह संकट उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जब वहाँ के प्रधान मन्त्री ने अपने एक सहयोगी मन्त्री, श्री शामलाल सर्राफ को अपने पद से स्तीफा देने के लिए कहा, और उन्होंने ऐसा करने से साफ इकार कर दिया। फलस्वरूप शेख साहब ने उन्हें अपदस्थ कर बंदी करने की आज्ञा प्रचारित कर दी। शेख अब्दुल्ला के तानाशाही कार्यों से क्षुब्ध मन्त्री-परिषद् के तीन मन्त्रियों, बक्शी गुलाममुहम्मद, श्री गिरधारीलाल डोगरा तथा श्यामलाल सर्राफ ने एक सामूहिक प्रस्ताव द्वारा उनके कार्यों की निन्दा की तथा उन्हें अवैधानिक एवं जनतन्त्र के सामान्य अधिकारों का विरोधी बतलाया।

८ अगस्त को काश्मीर, और काश्मीर की जनता के स्वार्थ को खतरे मे देख कर वहाँ के सदरे रियासत ने तत्कालीन मन्त्री-परिषद् को भंग कर दिया; तथा शेख अब्दुल्ला, मिर्जा अफजलबेग तथा उनके अन्य ३० सहयोगियों को 'जन-रक्षा-कानून' के अन्तर्गत बन्दी बना लिया। इसके पश्चात् उन्होंने, भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, बक्शी गुलाममुहम्मद से अपनी

मंत्री-परिषद् निर्मित करने के लिए कहा। नवीन प्रधान मंत्री काश्मीर का भारत से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना चाहते थे। वे पाकिस्तान तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के शक्तिशाली संचालक राष्ट्रो के स्वार्थ तथा उनकी काश्मीर के प्रति कूटनीति के पूर्णतः विरोधी थे। उनके इस विचार के फलस्वरूप काश्मीर के संकट से लाभान्वित हो, अपनी महत्वाकाक्षा का अस्थिर प्रासाद खडा करने वाले राष्ट्रो के सभी पूर्व निश्चित कुचक्रो पर पानी फिर गया।

काश्मीर के झगडे और विभाजन मे पूँजीवादी राष्ट्रो का क्या लाभ था, इसका भंडाफोड करते हुए, राजनीति के एक अमेरिकी विशारद, मि० लारेन्स० के० रोजिनगर, ने लिखा था, "काश्मीर मे अमेरिका का स्वार्थ विशेषतः उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण है, सोवियत रूस के नजदीक होने से, तथा चीन, तुर्किस्तान, अफग़ानिस्तान, तिब्बत, भारत और पाकिस्तान की सीमा से सटा होने के फलस्वरूप उसका सैनिक महत्व अत्यधिक है।" यह सर्व-विदित है कि पाकिस्तान ने काश्मीर पर अधिकार होने के पश्चात्, वहाँ अमेरिका को अपना वायुयान-स्थल बनाने की आज्ञा देने का आश्वासन दिया था। यही कारण है कि अमेरिका और बृटेन, जो तृतीय महायुद्ध के लिए अपना सैनिक-आधार शक्तिशाली करना चाहते हैं, उस प्रदेश को महत्वपूर्ण दृष्टि से देखते हैं। वे जानते हैं कि भारत तटस्थता की नीति तथा सभी देशो से मित्रता के व्यवहार का पक्षपाती होने के फलस्वरूप काश्मीर प्राप्त कर लेने के पश्चात् उन्हे कभी भी वहां सैनिक-स्थल बनाने की आज्ञा नहीं देगा। अतः इसीलिए वे अपनी, तथा अपने द्वारा पाली जाने वाली पूँजीवादी व्यवस्था की इसी मे भलाई समझते हैं कि किसी प्रकार भी उस महत्वपूर्ण प्रदेश को भारत के हाथ से अलग रख कर उसे अपने सैनिक-साधन के लिए कार्य मे ला सके, और यही कारण है कि उन्होंने काश्मीर के प्रश्न पर सुरक्षा-परिषद में बराबर पाकिस्तान का पक्ष ग्रहण किया।

इतने वादविवाद तथा मनोमालिन्य के पश्चात् भी काश्मीर का प्रश्न अभी तक नही सुलझ पाया है। दोनों राष्ट्र एक दूसरे को सदेह की दृष्टि से देखते रहते हैं। पाकिस्तान-सरकार उक्त प्रश्न को लेकर बराबर भारत-सरकार पर असभ्यतापूर्ण कटु वाक्प्रहार किया करती है, तथा भारत-सरकार को विश्व के राजनीतिक क्षेत्र में बदनाम करने का कोई अवसर नहीं चूकती। देखें, भाग्यनियंता परमात्मा इस प्रश्न को कब सुलझाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्येता और आलोचक नेहरू

भारत के समस्त राजनीतिज्ञो मे पं० नेहरू अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हैं। संसार के विभिन्न देशो के प्रति आपकी अनुभूति और सहानुभूति गहरी और व्यापक रही है। आप हमेशा ही अतर्राष्ट्रीय राजनीति के विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा उसकी निष्पक्ष आलो-चना मे अग्रगण्य रहे है। भारतीय राजनीति की अनेक कठिन समस्याओ मे व्यस्त रहने पर भी वे अपने मन और मस्तिष्क को दूर-दूर का पर्यटन कराने और उसे स्वस्थ ज्ञानोपार्जन कराने मे व्यस्त रखते हैं।

वे अनेक वर्षों से भारतीय जनता को यह स्मरण कराते रहे ह कि वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप विश्व की घटनाओ का सम्पर्क बहुत घनिष्ठ हो गया है। कोई भी राष्ट्र विश्व के किसी भी कोने मे होने वाली क्रियाओ एवं प्रतिक्रियाओ के प्रभाव से अछूता नही बच सकता। भारत का स्वतंत्रता-संग्राम भी विश्वव्यापी संघर्ष का एक अग था, जिसमे समस्त शोषित-शापित, परतंत्र मानवता की बुलंद आवाज छिपी हुई थी। जिस प्रकार भारत की प्रगति के प्रभाव से अन्य राष्ट्र प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते उसी प्रकार भारत संसार के घटना-चक्रो तथा राजनीतिक प्रभावो से अछूता बचकर अलग नहीं रह सकता।

पं० नेहरू-समाजवादी विचार के पोषक तो पहले से ही थे पर बाद मे सोवियत् रूस मे जाकर उन्होने समाजवाद का जो रूप देखा उससे उनके सिद्धान्त को और दृढ़ता मिली और वे पक्के समाजवादी हो गये। वे स्पेन मे उस समय गये थे जब वहाँ घोर गृह-युद्ध हो रहा था उन्होंने

चेकोस्लोवाकिया को उस समय देखा था जब उस देश के भाग्य का निर्णय कुछ नाज़ियों द्वारा हो रहा था। उन्होंने जर्मनी, फ्रांस आदि अन्य देशों को अपने स्वार्थ में अंधे हो महासमर की तैयारी करते देखा था। उन्होंने आज से पूर्व चीन का उस समय भी निरीक्षण किया था जब कि वह एक ओर अपने गृह-युद्ध और दूसरी ओर जापानी आक्रमण से त्रस्त था; जब कि अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रान्स आदि सभी बड़े राष्ट्र, अपनी व्यापारिक नीति तथा साम्राज्य-विस्तार के प्रयत्नों को लेकर उसके क्षत-विक्षत शरीर की खींचा-तानी में लगे हुए थे। उन्होंने शक्तिशाली लोलुप यूरोपियन राष्ट्रों को, अपनी स्वार्थ-साधना के लिए विश्व के शक्तिहीन देशों पर अपना दृढ़ उपनिवेश बनाते देखा था, और विरोध करने पर उनकी भावनाओं का निर्मम दमन होते भी। पिछड़े देशों की विवशता, पर असहाय आत्मा को परतंत्रता की बेड़ी में उन्होंने छट-पटाते हुए भी देखा था। अफ्रिका और अमेरिका के हब्शी भी नेहरू की मूक सहानुभूति प्राप्त करने से वंचित न थे। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा और समझा कि किस प्रकार साम्राज्यवादी राष्ट्र, अपनी विभिन्न तरह की स्वार्थ-पूर्ति के लिए एक ही देश के भाई-बंधुओं को आपस में लड़ाने और अपना उल्लू सीधा करने से भी बाज नहीं आते। इसका ज्वलंत उदाहरण उन्होंने स्पेन और भारत आदि स्थानों में देखा था। उन्होंने सोचा और समझा था कि चीन, अबीसीनिया, स्पेन, मध्य यूरोप, भारत आदि स्थानों की सारी राजनीति और आर्थिक समस्यायें एक ही विश्व-समस्या के विविध रूप हैं। उन्होंने इससे निष्कर्ष निकाला कि विश्व में स्वार्थों की जलती हुई यह चिनगारी एक दिन दावाग्नि का रूप धर कर सम्पूर्ण पृथ्वी को एक बार फिर से महासमर के गर्त में झोंक देगी। दुनिया की इतनी बड़ी समस्या का हल, मानवता की रक्षा, उनके विचार से सिर्फ एक ही तरह से हो सकती है, और वह है स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का अंत कर राष्ट्रों में सम्पर्क, सहयोग और सद्भावना की भावना का विकास करना। दुनिया में तभी वास्तविक

रूप मे शान्ति हो पायेगी। नेहरू जी को यह पूर्ण विश्वास था कि विश्व की इस विषम परिस्थिति मे, प्राचीनकाल की भाँति भविष्य मे भी, अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति के पश्चात्, भारत ही विश्व-शान्ति और आत्म-विकास का प्रकाश दिखलायेगा तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ायेगा।

नेहरू जी ने राष्ट्रपति-पद से १९२९ मे विश्व की समस्याओ का दिग्दर्शन कराते हुए कहा भी था, "यूरोप का एशिया पर आधिपत्य करीब करीब समाप्त हो चला है।......भविष्य एशिया के हाथ मे है।"

पं० नेहरू पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के घोर विरोधी हैं और इसी को विश्व मे उपस्थित सकटों का मूल कारण समझते हैं। उनका यह दृढ विश्वास है कि संसार मे जब तक यह दोनों रहेगे तब तक शान्ति कदापि स्थापित नही हो सकती। सन् १९३९ की जुलाई मे लन्दन मे 'इंडिया लीग' तथा 'लन्दन फेडरेशन आफ पीस काउन्सिल' के अध्यक्ष-पद से नेहरू ने साम्राज्यवाद के दुष्परिणामो का दिग्दर्शन कराते हुए कहा था, "शान्ति और साम्राज्य! मूल मे ही एक दूसरे के विरोधी शब्दो का अनोखा मेल है।......मै समझता हूँ कि जब तक साम्राज्य-वादी विचार दूर न होगा, तब तक हम संसार मे शान्ति न पा सकेंगे। जब तक साम्राज्य फूलते-फलते और शक्तिशाली रहते हैं, तब तक सम्भव है उनमे खुली लड़ाई न हो, पर तब भी शान्ति नहीं रहती, क्योंकि तब सघर्ष और युद्ध की तैयारी भीतर ही भीतर चलती रहती है। साम्राज्य-विरोधी राष्ट्रों मे, शासको और शासितों के बीच संघर्ष तो रहता ही है—क्योंकि साम्राज्यवादी राष्ट्र का आधार निर्बल जनता का दमन और शोषण करना है—अतः उसका विरोध भी होगा, और उस शासन का अन्त करने के लिए प्रबल प्रयत्न भी होंगे। अतः इस संघर्ष के आधार पर शांति कभी भी कायम नहीं की जा सकती।" उन्होंने जर्मनी के नाजीवाद और इटली के फासिस्टवाद की तीव्र आलोचना करते हुए कहा था, "फासिज्म, नाजीवाद अथवा साम्राज्यवाद की भावनाओ में भेद नहीं है, फासिज्म वास्तव मे साम्राज्यवाद का ही एक उग्र रूप है।"

पं० नेहरू ने साम्राज्यवादी राष्ट्रो द्वारा निर्मित 'कामनवेल्थ आफ नेशन्स' की भी टीका-टिप्पणी करते हुए एक बार कहा था, प्रस्तुत कामन-वेल्थ का आधार दोषपूर्ण है और किसी दिन भी इसके शक्तिशाली राष्ट्र इसमें शामिल निर्बल राष्ट्रों पर हावी हो सकते हैं। यह एक धोखे की टट्टी, है क्योंकि ये साम्राज्यवादी राष्ट्र कभी की अपने से कम शक्ति-शाली राष्ट्र को अपने बीच समानता का अधिकार नहीं दे सकते।

नेहरू जी 'राष्ट्र संघ की संरक्षण-प्रथा (Mandate System) के भी सख्त विरोधी थे, जिसकी स्थापना प्रथम महायुद्ध के पश्चात् राष्ट्र-संघ की स्थापना के साथ ही हुई थी, तथा जिसके अनुसार एक शक्ति-शाली राष्ट्र को पराजित राष्ट्र के कुछ भागों पर शासन करने का अधिकार मिल जाता था, अथवा अविकसित क्षेत्रों (Under developed Areas) के निवासियो पर, "उनमें सभ्यता तथा सस्कृति के विकास के लिए संरक्षण" के नाम पर, दूसरे राष्ट्रो का शासन तथा हस्तक्षेप आरम्भ हो जाता था।

नेहरू जी का विचार था कि पेलेस्टाइन में अरब-यहूदी समस्या बृटिश साम्राज्यवादियों द्वारा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उपस्थित की गई है। उन्होंने यहूदियों के प्रति सहानुभूति भी व्यक्त की थी, क्योंकि वे वेचारे विश्व के हर एक भाग से निकाले जा रहे थे। उन्होंने कहा था कि पेलेस्टाइन की समस्या को स्वयं अरबों और यहूदियों कोआपसी समझौते से सुलझाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ अथवा बृटिश साम्राज्यवाद उसे कदापि हल नही कर सकता।

नेहरू जी समस्त देशों की घरेलू तथा आतरिक समस्याओं को विश्व-व्यापी आर्थिक संघर्ष का ही अंग समझते हैं तथा समाजवादी विचार-धारा के होने के कारण उन समस्याओं के हल के सम्बन्ध मे उनका दृष्टि-कोण बड़ा व्यापक रहता है। संकुचित राष्ट्रीयता के आधार पर वे कभी एक देश को हानि पहुँचा कर दूसरे देश को लाभ पहुँचाने का समर्थन न करेंगे। उन्होंने रूस, अमेरिका, चीन आदि देशों मे जाकर वहाँ की

जनता की आवश्यकताओं तथा सामाजिक स्थितियों का अध्ययन किया और उनकी महत्वाकाक्षाये समझी, तथा उनका सम्बन्ध भारत के लिए कहाँ तक लाभजनक, हानिकर, मूल्यवान अथवा उपयोगी हो सकता है इसे भी उन्होंने सदा ध्यान मे रखा। वे कभी-कभी संसार को कठिनाइयों पर विचार करते-करते अपने व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय झगड़ों को भी भूल जाते हैं, और उनमें न जाने कैसी विचित्र व्यापक सहानुभूति है कि वे मानवता को समस्त कठिनाइयों से मुक्त करने का स्वप्न देखने लगते हैं।

१९३९ मे जब स्पेन मे गृहयुद्ध हो रहा था और जर्मनी तथा इटली की फासिस्ट सेनाओ ने वहाँ जेनरल फ्रेन्को के पक्ष से प्रजातंत्रवादियों को दबाया तो नेहरू जी उस समय. फासिस्ट शक्तियों की उग्रता, तथा बृटेन की शिथिल नीति पर बहुत नाराज हुए थे। वे स्वयं स्पेन गये थे और उन्होंने वहाँ कहा भी था, "हम, जो अपनी स्वतंत्रता के लिए युद्ध कर रहे हैं, स्पेन के इस ऐतिहासिक युद्ध पर बहुत चिन्तित हैं, क्योंकि ससार की स्वतंत्रता यहाँ पर कुण्ठित हो रही है। हमारे संघर्ष की सीमायें हमारे देश तक ही नहीं· वरन् वे स्पेन और चीन तक फैली हुई हैं।" विश्व के प्रत्येक दलित-देश, इन्डोचाइना, इन्डोनेशिया, ईरान, मिश्र, वीटनाम, ट्यूनीशिया आदि के प्रश्नो पर भी, जिन पर पश्चिम के साम्राज्य-वादी राष्ट्र अपनी स्वार्थपूर्ण लोलुप दृष्टि लगाये हैं, उनका यही विचार है।

नेहरू जी ने काफी निकट से अतर्राष्ट्रीय घटनाओं एवं कूटनीतिपूर्ण स्वार्थों का अध्ययन किया है। १९३८ मे जब योरोप कमजोर राष्ट्रों के स्वार्थों का बलिदान कर, चेम्बरलेन की 'सबको खुश करने की नीति' के साथ पैर मिलाता हुआ म्यूनिक-संधि के नाटक का अन्तिम दृश्य देख रहा था. और जब कि लंदन मे इस बात पर खुशियाँ मनायी जा रही थीं कि संकट टल गया—इस बात को प्रायः भूल कर कि उसके लिए कितनी बड़ी कीमत असहाय राष्ट्रों को, जबरदस्ती अपनी चीख दबा कर चुकानी पड़ी है —तब नेहरू ने चेम्बरलेन की इस नीति पर कहा था, "मै बृटिश-सरकार की नीति से घृणा करता हूँ, और घोषणा करता

हूँ कि मै उसे सहन नहीं कर सकता तथा भारत उस नीति का साथ भविष्य मे कभी न देगा ।......राष्ट्रों का संघ शान्ति की कब्र है और इतिहास उस विश्वासघात को कभी न भूलेगा जो बृटिश और फ्रेन्च सरकारों ने एक छोटे से लोकतन्त्रवादी देश जेकोस्लोवाकिया के साथ किया है ।" म्यूनिक संकट के दिनों नेहरू जी ने जेनेवा का भी निरीक्षण किया था। तटस्थता का ढोंग करने वाली उस जेनेवा का, जहाँ शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के शव आज भी बिखरे पड़े मिलेंगे, और जिस पर साम्राज्यवादी गिद्ध आज भी चोंचे लड़ा कर अपने हिस्से के लिए झगड़ रहे हैं ।

आज भी उन्हीं सब साम्राज्यवादी चालों की पुनरावृत्ति हो रही है । प्रबल राष्ट्रों के स्वार्थ का इतिहास अपने को दोहरा रहा है । परिस्थितियों से उत्पन्न आशा-निराशा में आज भी झूलते हुए पं० नेहरू अपने उसी पुराने निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब तक साम्राज्यवादी राष्ट्रों के स्वार्थ संबंधी परस्पर द्वन्द्व और सघर्ष जारी रहेंगे, तब तक कभी भी विश्व में चिर शान्ति नहीं हो सकती । बन्धुत्व और मित्रता का ढोंग करते हुए आज भी सबल राष्ट्र आपस मे शक्ति, विजय और सम्मान (Power, glory & fame) के लिए कटु प्रतियोगिता और गहरा षड्यन्त्र कर रहे हैं, जिससे संसार की निर्बल जनता भयत्रस्त तथा कुण्ठित है । भावी विश्व-युद्ध की घटा पश्चिमी क्षितिज पर घिरती चली आ रही है । विश्व की परिस्थिति, विशेषतः अशक्त एशिया की शान्ति और रक्षा से चिन्तित पं० नेहरू, अडिग भ्रातृत्व-वर्धन तथा मित्रता के एक नवीन चित्र की रेखाओं मे रंग भरने का प्रयत्न कर रहे हैं । पंचशील की नीति इसी महान उद्देश्य का एक अङ्ग है, जिसमे विश्व के शान्तिप्रिय राष्ट्रों के, विशेषतः एशिया के, संयुक्त आर्थिक एवं सास्कृतिक सहयोग, मानवीय अधिकारों तथा आतरिक प्रश्नों के स्वनिश्चय तथा स्वसञ्चालन का सहअस्तित्व के आधार पर प्रत्येक राष्ट्र को अधिकार, उपनिवेशवादिता का विरोध तथा विश्व शाति रक्षा के प्रश्न पर जोर दिया गया है, तथा सभी शातिप्रेमी

राष्ट्रों से, अपने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक कार्यकलापों में इसे स्थान देने की अपील की गयी है।

नेहरू जी सभी औपनिवेशिक देशों की राष्ट्रीय जागृति और स्वतंत्रता को शान्ति और लोकतंत्रवादी विश्व-व्यवस्था के लिए अधिक उपयोगी और आवश्यक समझते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि यह राष्ट्रीय जागृति जितनी ही बढ़ेगी उतनी ही साम्राज्यवादी भावना क्षीण और अशक्त होती जायेगी। लोकतंत्रवादी सिद्धान्तों के लिए उन्हें पूरी श्रद्धा तथा आस्था है, पर संसार के बड़े-बड़े लोभी तथाकथित 'लोकतंत्रवादियों' को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यही कारण है कि आज भी उन्होंने अपनी स्वतन्त्र तथा तटस्थ वैदेशिक नीति रखकर, दो में से किसी भी शक्ति-गुट्ट—रूस अथवा अमेरिका—से अपना गंदा कूटनीति पूर्ण सम्बन्ध नहीं रखना चाहते जिससे विश्वशान्ति खतरे में पड़े। आज नेहरू जी एक स्वतंत्र देश के राष्ट्रवादी, पर संसार के नागरिक की हैसियत से अंतर्राष्ट्रीय तथा समाजवादी विचारक होकर संसार की राजनीति को देखते और समझते हैं तथा निष्पक्ष हो उसकी आलोचना करते हैं। इस अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मानव कल्याण के निमित्त उनकी सूझ-समझ और सहानुभूति विश्व के किसी भी महान मानवता-प्रेमी से कम व्यापक नहीं है। जवाहरलाल केवल भारत के ही नहीं, वरन् सुपुप्त ज्वालामुखी पर बैठे हुए समस्त एशिया के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ में सम्हाले हुए हैं। इस अजेय पुरुष की ओर, जो आज पीड़ित जन-समूह का पक्ष लेकर विश्व की खूनी प्रवंचनाओं से संघर्ष करता हुआ समता और भ्रातृत्व का शाश्वत संगीत विश्व-वाणी के टूटे तारों से स्पंदित कर रहा है, विश्व के समस्त शोषित और पददलित राष्ट्र आशा भरी निगाह से निहार रहे हैं। आज उन्हें किसी देश, जाति अथवा समय के बन्धन से बाँधना कोरी विडम्बना होगी।

नेहरू और बृटिश कामनवेल्थ

बृटिश कामनवेल्थ के अधिवेशन का निमंत्रण मिलने पर स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने, देश मे संकटपूर्ण स्थिति होते हुए भी, इस महत्वपूर्ण अवसर पर वहाँ जाना निश्चित किया; कारण इसमें उन्हें विभिन्न देशों के प्रधान मन्त्रियो से सम्पर्क बढाने का तथा भारत के सम्बन्ध मे विदेश में, पाकिस्तान द्वारा प्रचारित भ्रमपूर्ण, मिथ्या और घृणित प्रचारो का तर्कपूर्ण खंडन कर निवारण करने का अवसर मिलता, तथा भारत का संदेश सुनाने मे समर्थ हो वे दूसरे राष्ट्रों के हृदय में उसके प्रति सम्मान तथा आस्था का बीज वो सकते। इसके अतिरिक्त संयोगवश उन्हीं दिनों पेरिस में संयुक्तराष्ट्र-सघ की जेनरल असेम्बली तथा सुरक्षा-परिषद् का भी अधिवेशन होने वाला था, जिसमें उपस्थित हो पं० नेहरू काश्मीर तथा हैदराबाद की समस्याओं पर प्रकाश डालना चाहते थे, जिससे पाकिस्तान द्वारा उड़ाये असत्य तथा अविश्वास के बादल को छिन्न-भिन्न करने में वे सफल हो सकें। अतः उस समय नेहरू का विदेश जाना, सर्वथा अनुकूल तथा आवश्यक था उन्होंने ६ अक्टूबर १९४८ को भारत से प्रस्थान करने का निश्चय किया।

भारत से यारोप-यात्रा के पूर्व १ अक्टूबर १९४८ को नेहरू जी ने श्रीनगर में पाकिस्तान के निर्मूल प्रचारों का उत्तर देते हुए कहा कि भारत का न तो कभी पाकिस्तान पर आक्रमण करने का ही विचार रहा है और न भारत से पाकिस्तान की ओर बहने वाली नदियों का प्रवाह ही रोकने का, परन्तु इसमे शक नहीं कि भारत पाकिस्तान की

घृणित कूटनीति की शतरंजी चाल मे उसे मात देने के लिए पूर्ण सचेत है। काश्मीर सम्बन्धी आक्रमणकारी पाकिस्तानी नीति को भारत सहन नहीं कर सकता और आवश्यकता पड़ेगी तो उसके लिए तलवार का जवाब तलवार से देने मे भारत हिचकेगा भी नहीं।

बृटिश राष्ट्र मंडल के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए पं० नेहरू ५ अक्टूबर १९४८ को वायुयान से बम्बई पहुँचने के लिए रवाना हुए। हवाई अड्डेपर उनके सहयोगी तथा मित्र, भारत के तत्कालीन गवर्नर जेनरल श्री राजगोपालाचार्य, उप-प्रधान मन्त्री सरदार पटेल, अन्य मन्त्री गण तथा कुछ प्रमुख व्यक्ति उन्हें विदा करने के लिए एकत्र हुए थे। पं० नेहरू के साथ परराष्ट्र विभाग के सचिव सर गिरजा शंकर वाजपेयी, तथा उनके निजी सेक्रेटरी श्री मथाई भी थे।

वायुयान के बम्बई पहुँचने पर वहाँ के मुख्यमन्त्री, सरकारी अफसरों तथा प्रमुख नागरिकों ने नेहरू जी का स्वागत किया। उसी दिन साढ़े बारह बजे फिर वे विमान पर सवार हुए। सयोगवश लंका के प्रधान मंत्री श्री सेनानायक भी उसी विमान से लन्दन की कान्फ्रेन्स मे सम्मिलित होने के लिए जा रहे थे। उन्होंने नेहरू जी के साथ यात्रा करने के इस सयोग को अपने लिए सौभाग्य की बात कही थी तथा उन्हें विश्वास दिलाया था कि वे कान्फ्रेन्स मे उनसे मिलकर कार्य करेंगे।

लन्दन पहुँचने के पूर्व नेहरू जी का वायुयान कई स्थान पर कुछ देर के लिए रुका। नेहरू जी ने उन चन्द घण्टों को व्यर्थ न जाने दिया तथा उसे उस स्थान के प्रमुख व्यक्तियों से बात करने तथा उनके साथ भारत की ओर से सम्पर्क बढ़ाने मे लगाया। ६ अक्टूबर को उनका वायुयान काहिरा के फारुक हवाई अड्डे पर उतरा। वहाँ पं० नेहरू ने आधे घण्टे तक अरब संघ के सेक्रेटरी—जेनरल आजम पाशा से वार्ता-लाप किया। वहाँ पत्र-प्रतिनिधियों के समक्ष उन्होंने कहा, "पैलेस्टाइन के सम्बन्ध मे भारत का सदा यह मत रहा है कि स्वायत्त शासन प्राप्त

क्षेत्रों का एक संघ बने· तभी आपसी वैमनस्य का यह प्रश्न हल हो सकता है।"

७ अक्टूबर की रात को 'राजपूत प्रिन्सेज' विमान से पं० नेहरू लन्दन पहुँचे। उस समय वह अपने प्रिय भारतीय वस्त्र पहने हुए थे। हवाई अड्डे पर उनका स्वागत राष्ट्रमण्डल सम्पर्क विभाग के बृटिश मंत्री मि० नोएल बेकर, लन्दन स्थित भारतीय हाई कमिश्नर श्री मेनन तथा अन्य प्रमुख भारतीय तथा विदेशी व्यक्तियों ने किया। श्रीमती विजया-लक्ष्मी पण्डित भी अपने सुयोग्य भ्राता से आवश्यक विषयों पर परामर्श करने के लिए उसी दिन लन्दन पहुँची। वहाँ के पत्रकारों से बात करते हुए पं० नेहरू ने कहा कि "भारत इंगलैण्ड के साथ रहते हुए भी सार्वभौम सत्ता (Sovereignty) सम्पन्न और स्वतंत्र रहना चाहता है।"

दूसरे दिन सुबह पं० नेहरू तत्कालीन बृटिश प्रधान मंत्री मि० एटली से उनके लन्दन वाले सरकारी घर, १० डाउनिंग स्ट्रीट में, मिलने गये और वहीं जलपान किया। वहाँ पर बृटिश परराष्ट्र मंत्री मि० बेविन, मि० नोएल बेकर लार्ड लिस्टोवेल प्रभृति कई अन्य बृटिश मंत्री भी उपस्थित थे। दोनों प्रधान मंत्रियों में ३ घण्टे तक वार्तालाप होता रहा। वहाँ से पं० नेहरू इंडिया हाउस पहुँचे, वहाँ महात्मा गांधी के चित्रों, लेखों, फोटो आदि की एक प्रदर्शनी का निरीक्षण किया तत्पश्चात् हाईकमिश्नर मि० मेनन के साथ चाय पी।

११ अक्तूबर को १०॥ बजे दिन से, लन्दन में राष्ट्रमण्डल के प्रधान मन्त्रियों का सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमें बृटिश प्रधानमन्त्री मि० क्लीमेंट एटली, भारत के प्रधान मन्त्री पं० नेहरू, पाकिस्तान के मि० लियाकतअली खाँ, न्यूजीलैण्ड के मि० पीटर फ्रेजर, लंका के मि० सेना-नायक, आस्ट्रेलिया के परराष्ट्र मन्त्री मि० एवाट और दक्षिण अफ्रिका के मि० लो उपस्थित थे। कनाडा के प्रधान मन्त्री मि० मेकेंजी किंग बीमार होने के कारण उपस्थित न हो सके थे। मि० एटली ने आगत

मन्त्रियों का स्वागत करते हुए कहा कि यह एक पारिवारिक सम्मेलन है, जिसके भीतर तीन नये उपनिवेशों—भारत, पाकिस्तान और सिलोन—के प्रधान मन्त्रियों का हम हृदय से स्वागत करते हैं। इस कान्फ्रेंस का मुख्य उद्देश्य उन विषयों पर बात करना है जो राष्ट्रमण्डल के सभी देशों से सम्बन्धित हैं। हम यहाँ एक दूसरे की समस्या समझने तथा उन्हें उचित प्रकार से सहायता देने के लिए उपस्थित हुए हैं। हम लोगों का एक ही उद्देश्य है और वह है शान्ति-स्थापना तथा अपने देश को समृद्धिशाली बनाना। पं० नेहरू ने वहाँ अपने संक्षिप्त वक्तव्य मे कहा कि "यह प्रथम अवसर है कि स्वतन्त्र भारत के प्रतिनिधि को सम्मेलन मे भाग लेने का अधिकार दिया गया है। एक राष्ट्र की समस्या दूसरे से अलग नहीं की जा सकती। भारत राष्ट्रमण्डल के अन्य राष्ट्रों से सहयोग करने के लिए उत्सुक है। मै यहाँ की मित्रता और सहयोग के वातावरण से बहुत प्रभावित हुआ हूँ और इसे मै तार्किक वाद-विवाद से अधिक महत्व का समझता हूँ।" इस प्रकार प्रधान मन्त्रियों के सम्मेलन मे पं० नेहरू के भाषणों का प्रभाव पडा तथा उन्ही के प्रस्ताव पर बृटिश राष्ट्रमण्डल से, बहुमत द्वारा, 'बृटिश' शब्द हटा देना स्वीकृत हुआ।

आस्ट्रेलिया के लन्दन स्थित सम्वाददाता ने लिखा था, "सम्मेलन मे उपनिवेशो के तमाम प्रतिनिधि पं० नेहरू द्वारा प्रत्येक प्रश्न के समाधान की पहुँच से अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। पं० नेहरू को भारत की युद्ध सम्बन्धी शीघ्र आ पडने वाली महत्ता के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का भ्रम नही है।"

न्यूयार्क टाइम्स के लन्दन स्थित सम्वाददाता ने लिखा था, "सम्मेलन मे प्रधान मन्त्री पं० नेहरू महत्वशाली और सर्वप्रिय व्यक्ति सिद्ध हुए हैं। अपनी ओर से उन्होंने मित्रता और सहयोगपूर्ण ही व्यवहार किया।"

न्यूयार्क हेरल्ड ट्रिब्यून के सम्वाददाता ने लिखा था, "यदि भारत ने 'राष्ट्र-परिवार' से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया तो बृटिश राष्ट्र का पूरा खाका ही बदल जायेगा।"

१२ अक्तूबर को भूतपूर्व भारत मन्त्री, और भारत में १९४६ में आये हुए बृटिश मन्त्री-मण्डल के प्रधान, लार्ड पैथिक लारेन्स की अध्यक्षता मे, इंडिया लीग के तत्वावधान में लन्दन के किंग्स वे हाल मे पं० नेहरू का अपूर्व स्वागत हुआ, तथा उन्हे मानपत्र प्रदान किया गया। इसमें राजनीतिशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान दार्शनिक प्रो० हेरल्ड जे० लास्की, लेडी माउण्टबैटन, सर स्टेनली रीड आदि प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। लार्ड पैथिक लारेस ने नेहरू जी की प्रशसा करते हुए कहा, "इनके पास ऐसा विशाल हृदय है, जो मनुष्य द्वारा पृथक् किए हुए सम्बन्धो के बीच की खाई के लिए पुल का कार्य करता है। मै यह जानता हूँ कि नेहरू जी अन्य किसी भी आदमी से अधिक पूर्व और पश्चिम को मिलाते हैं, यह इस आदमी की प्रधान विशेषता है, जो सर्वप्रथम अपने देश के भाग्य-निर्माण का पथ-प्रदर्शक हुआ है।" इसके अतिरिक्त उन्होने यह भी कहा था कि "ईर्षा तो वे जानते ही नही, कटुता से तो उनका सम्बन्ध ही नहीं रहा है, असफलता और पराजय ने उन्हें कभी निराश नहीं किया और सफलता तथा विजय से वे कभी अनावश्यक रूप से उत्फुल्ल नही हुए।"

पं० नेहरू ने अपने वक्तव्य में सर्वप्रथम भारत के राष्ट्रपिता महात्मा-गाँधी की महानता और राष्ट्र के प्रति अमूल्य निस्वार्थ सेवाओं के प्रति, महान भारत राष्ट्र की ओर से, आभार प्रकट करते हुए श्रद्धाजलि अर्पित की; पश्चात् कहा कि बृटिश सरकार ने लार्ड माउन्टबैटन को भारत का अतिम वायसराय चुनकर बुद्धिमानी की, क्योंकि वे भारत सम्बन्धी तत्कालीन बृटिश नीति को कार्यान्वित करने के लिए सर्वोचित व्यक्ति थे। इसके पश्चात् लार्ड माउन्टबैटन तथा लेडी माउन्टबैटन की संक्रमण कालीन संकटों मे की गई सेवाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि मै भारतवासियों और बृटेन के निवासियो के बीच घनिष्ठतम सम्पर्क और सहयोग चाहता हूँ।

पं० नेहरू के व्यक्तित्व से प्रभावित प्रो० लास्की ने उस समय कहा था, "दीन-हीन जनता की दशा में सुधार करने के लिए जो

जागरूकता मैंने पं० नेहरू में देखी वह अपने जीवनभर में मै केवल दो तीन व्यक्तियों मे ही पा सका हूँ।"

इंगलैंड के सम्राट ने, १३ अक्टूबर की रात में अपने बकिंघम राजप्रासाद में प्रधान मंत्रियों की कान्फ्रेन्स में समवेत प्रधान मंत्रियो और उनके प्रतिनिधियो के सम्मान में एक भोज दिया। नेहरू जी भी उसमे सम्मिलित हुए थे। सम्राट ने आगत अतिथियों का स्वागत करते हुए राष्ट्रमडल को 'राष्ट्रों का कुटुम्ब' कहा। उन्होंने यह भी कहा कि "मैं भारत, पाकिस्तान और सिलोन के प्रधान मंत्रियों का स्वागत विशेष रूप से करता हूँ जो हमारे 'राष्ट्रों के कौटुम्बिक वार्तालाप' में पहली बार सम्मिलित हो रहे हैं।"

१३ अक्टूबर की रात को पं० नेहरू ने डोरचेष्टर होटल में कनाडा के प्रधान मंत्री मि० मेकेंजी किंग से १ घंटे तक राष्ट्रमण्डल विषयक मामलों में बातचीत की, पश्चात् दक्षिणी अफ्रिका के भारतीय नेता मि० पाटू से बातचीत की। दूसरे दिन सुबह नेहरू जी ने दो आट्रेलियन अतिथियों को भोजन कराया। प्रसिद्ध बृटिश समाजवादी नेता मि० बेल्सफोर्ड ने अपने एक लेख मे लिखा है कि नेहरू जी को पूर्व और पश्चिम में मध्यस्थ का आसन ग्रहण कर मानवजाति के लिए शान्ति की स्थापना का प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने लिखा है, "पं० नेहरू दो संसार के बीच स्थित हैं। पूर्व तथा पश्चिम के बीच चलने वाले इस संघर्ष में पं० नेहरू एशिया की एक ऐसी महान शक्ति की वैदेशिक नीति के कर्णधार हैं जिसका भौतिक तथा नैतिक प्रभाव शान्ति तथा युद्ध दोनो में से, जिसके चाहे उसके पक्ष में फैसला करा सकता है......उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत रूस अथवा अमेरिका किसी भी युद्ध मे शामिल नहीं होगा। शान्तिपूर्ण तटस्थता न तो सम्भव ही है और न नैतिक दृष्टि से वाञ्छनीय ही। क्या पं० नेहरू जीवित भारतीयों में सबसे महान होने तथा गाँधी जी के उत्तराधिकारी होने के नाते अपने प्रभाव एवं प्रतिष्ठा द्वारा मध्यस्थ का कार्य नहीं कर सकते, और क्या

इस प्रकार वे करोड़ो मूक मानवो की शान्ति की आवाज को बुलंद नहीं कर सकते ! आज ससार के प्रथम श्रेणी के नेताओं में नेहरू जी के अतिरिक्त कोई ऐसा व्यक्ति नही है जिसके व्यक्तित्व का इतना मैत्री पूर्ण प्रभाव दुनिया पर पड सके। किंकर्तव्यविमूढ़ राष्ट्रों में सम्पर्क स्थापित कराने के मार्ग को ढूँढ़ निकालने और उसका नेतृत्व करने का साहस पं० नेहरू में ही है।"

१५ अक्टूबर को तीसरे पहर श्री मथाई और श्री वाजपेयी के साथ पं० नेहरू पेरिस पहुँचे तथा वहाँ विश्व के प्रमुख व्यक्तियों से वार्तालाप किया। उसी दिन रात को अमेरिका के स्टेट सेक्रेटरी जार्ज मार्शल से उन्होंने करीब २॥ घंटे तक बात की। दोनों राजनीतिज्ञों की यह पहली ही भेंट थी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दोनों राजनीतिज्ञों के बीच हुई वार्ता तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से ही सम्बंधित रही होगी।

दूसरे दिन पं० नेहरू सोवियत रूस के उप-परराष्ट्र मंत्री श्री विशिन्सकी, फ्रास के राष्ट्रपति विनसेंट अरियल, फ्रास के परराष्ट्र मंत्री राबर्ट शूमेन और चीन के परराष्ट्र मंत्री डा० वाग शीह-चीह से उनके निवास स्थानों पर मिले तथा विभिन्न विषयो पर वार्तालाप किया। पं० नेहरू के पेरिस के इस छोटे से प्रथम सरकारी आगमन ने यहाँ राज-नीतिक क्षेत्र में बहुत बड़ी आशायें उत्पन्न कर दी थीं। ससार के राजनीतिज्ञों पर पं० नेहरू के व्यक्तित्व और त्याग की छाया पड चुकी थी। पं० नेहरू भारत के प्रधान तथा वैदेशिक मंत्री के रूप में वहाँ ऐसे समय पहुँचे थे जब कि भारत ने अशान्ति पूर्ण विश्व में अपूर्व शान्ति के साथ रक्तहीन क्रान्ति द्वारा अपनी ऐतिहासिक स्वतंत्रता प्राप्त की थी और जब कि विश्व की कुटिल कूटनीति के कालकूट को पानकर मानव मात्र की शान्तिपूर्ण रक्षा के लिए ऐसे ही किसी 'शिव' की आवश्यकता थी।

१८ ता० को पं० नेहरू, श्री वाजपेयी, श्री मथाई, बहन श्रीमती

विजयालक्ष्मी पण्डित तथा उनकी दो पुत्रियों चन्द्रलेखा और नयनतारा के साथ लंदन वापस लौट आये। उन्होंने उस दिन बृटिश परराष्ट्र मन्त्री मि० बेविन के यहाँ जलपान किया, तथा १॥ घंटे तक अन्य राष्ट्रों के साथ भविष्य में भारत के सम्बन्ध के विषय में बात करते रहे। इसके पश्चात् वे एम्पायर पार्लियामेन्टरी ऐसोसियेशन द्वारा आयोजित समारोह में सम्मिलित हुए जो आगत प्रधान मन्त्रियों के सम्मानार्थ किया गया था।

१९ अक्टूबर को भारतीय विद्यार्थियों की ओर से इंडिया हाउस में नेहरू जी का शानदार स्वागत हुआ। प० नेहरू ने वहाँ भाषण देते हुए कहा कि "हम प्रगति पर हैं, और हमारी प्रगति, हमें विश्वास है कि, हमें इससे भी अच्छी अवस्था तक ले जायेगी। भारत में अभी हमारे समक्ष अनेक कार्य करने को अवशेष हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हमने गलतियाँ की हैं और भयंकर भूलें भी, लेकिन हमने बहुत-सी सफलतायें भी प्राप्त की हैं।......वह समय निकट आ रहा है जब शासन का भार आप लोगों के कंधों पर डाला जायेगा। भारत के विशाल ढाँचे में भाग लेना और नवीन भारत का निर्माण करना अत्यन्त कठिन कार्य है, जिसमें लगना आप सभी का कर्तव्य है।......वास्तव में व्यक्ति छोटे-छोटे कार्यों को भी अधिक से अधिक उत्तम ढंग से करने पर ही बड़ा होता है। कार्य की अच्छाई-बुराई, छोटाई-बड़ाई का कुछ मूल्य नहीं है। अतः हमें कभी यह न सोचना चाहिए कि जो कार्य हमें सौंपा गया है वह अधिक महत्त्व नहीं रखता, अतः उसे हमें न करना चाहिए। चाहे लिफाफे पर टिकट लगाने का ही कार्य क्यों न हो, उसे महत्वहीन न समझना चाहिए। वह व्यक्ति जो छोटी-छोटी चीजों को महत्व-शून्य समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखता है वह स्वयं अपने जीवन को मूल्यहीन बना लेता है। भारत में हमें अनेक कार्य करने हैं जो तभी हो सकते हैं जब हम एक साथ मिलकर अपनी शक्ति का उपयोग करें। मैं यह नहीं कहता कि सभी व्यक्तियों के विचार एक से होने चाहिएँ, किन्तु राष्ट्र के हित सभी व्यक्तियों का लक्ष्य और उद्देश्य एक-सा होना चाहिए।

यदि एक लक्ष्य रख कर हम सब मिल कर कार्य करेंगे तो उसे पूर्ण करके ही छोड़ेंगे।"

२० अक्टूबर को ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मंत्री एटली के सरकारी निवास स्थान, १० डाउनिंग स्ट्रीट में पं० नेहरू और पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री लियाकतअली खाँ में काश्मीर की समस्या के सम्बन्ध में बात-चीत हुई। वार्तालाप में ब्रिटिश परराष्ट्र मंत्री श्री बेविन भी उपस्थित थे। मि० एटली मध्यस्थ थे, परन्तु बहुत प्रयत्न के पश्चात् भी समझौते का कोई मार्ग निकलता नजर न आया।

२१ अक्टूबर को भारतीय हाई कमिश्नर श्री मेनन द्वारा आयोजित एक स्वागत सभा में हजारों श्रोताओं के बीच बोलते हुए पं० नेहरू ने कहा, "मैं नहीं समझता कि भविष्य में किसी युद्ध की आशंका है। मुझे विश्वास है कि अन्त में विश्व को महात्मा गाँधी के सिद्धान्त को स्वीकार करना होगा। राजनीति के क्षेत्र में हमें कभी-कभी बड़ी बुराइयों को रोकने के लिए छोटी बुराइयों को स्थान देना पड़ता है तथा समझौता करना पड़ता है। भारतीय स्वतंत्रता एक सराहनीय परिवर्तन है। इसने ब्रिटिश और भारतीय जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया है। भारत में अब भी बहुत से रूढ़िवादी विचारधारा के लोग हैं, इसी प्रकार ब्रिटेन में भी कुछ लोग भारत की स्वतंत्रता के प्रति अपनी घृणा तथा अप्रसन्नता प्रकट करने से बाज नहीं आते; परन्तु यह क्षणिक है। गाँधी जी कहते थे, "भारत किसी देश की जनता के विरुद्ध नहीं लड़ रहा है, वरन् एक पद्धति के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है।"

२२ अक्टूबर की रात को पं० नेहरू अपने मित्र लार्ड माउन्ट बैटन के निवास स्थान, आइलैंड के देहात वाले घर में उनके आग्रह पर विश्राम करने के लिए पहुँचे। पन्द्रह दिनों तक लन्दन में प्रधान मंत्रियों की कान्फ्रेन्स तथा विभिन्न समारोहों के अवसरों पर उन्हें अठारह-अठारह घण्टे तक व्यस्त रहना पड़ा था।

२६ अक्टूबर को पं० नेहरू लन्दन से पेरिस के लिए रवाना हुए। हवाई अड्डे पर उन्हें विदा करने के लिए श्री नोएल बेकर, लार्ड माउन्ट-बैटन, श्रीयुत मेनन आदि व्यक्ति उपस्थित थे। नेहरू जी मंगलवार को पेरिस पहुँच गये। शुक्रवार को राष्ट्र-सघ के एक विशेष अधिवेशन मे उनका भाषण होने वाला था। परन्तु जेनरल असेम्बली के अध्यक्ष डा० एवाट के अचानक अस्वस्थ हो जाने के फलस्वरूप वह कार्यक्रम उस दिन स्थगित कर दिया गया।

पेरिस मे पं० नेहरू ने ससार के प्रधान राजनीतिज्ञों से बातचीत की तथा पेरिस के रहने वाले भारतीयों से मिले। वे अमेरिकन रिपब्लिकन दल के नेता मि० डूलेज तथा उस दल के वैदेशिक सलाहकार श्री जान फास्टर से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर देर तक बात करते रहे।

फ्रान्स के नेता मो० शुमेन पं० नेहरू से अत्यन्त प्रभावित हुए, और डा० जुलियन हुबले ने उनके विषय मे यह राय दी कि वे एक चमत्कारी पुरुष हैं, जो राजनीतिक गुत्थिया सुलझाते हुए गम्भीर वैज्ञानिक विषयो पर महत्त्वपूर्ण विचार कर सकते हैं।

३१ अक्टूबर को फ्रान्स की इण्डियन-असोसियेशन का आतिथ्य ग्रहण करते हुए पं० नेहरू ने कहा, "योरोप विश्व का अत्यन्त महत्वपूर्ण और आवश्यक भाग है अवश्य; परन्तु वही सम्पूर्ण ससार नहीं है, इस तथ्य को आज के पाश्चात्य राजनीतिज्ञ भुला देते हैं। पाश्चात्य देशों के प्राधान्य का अब वह युग समाप्त हो गया है और जहाँ कहीं यह प्रभुता अब भी अवशिष्ट है, वह भी बहुत शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी: लेकिन यह तथ्य अमेरिका और योरोप के लोगों के दिमाग मे नहीं बैठता। यही कारण है कि विश्व या विश्व की समस्याओ पर विचार करने मे उनका दृष्टि-बिन्दु गलत होता है। यूरोप मे जो कुछ होता है उसका प्रभाव एशिया पर पडेगा, और जो कुछ एशिया में होता है उसका योरोप पर। हिन्दुस्तान कठिनाइयो से भरा रहने पर भी जीवनी-शक्ति से परिपूर्ण है। वह प्राचीन है पर अब भी उसमे यौवन का वही आवेग है। उसने

अनेक भूलें कीं, और ठोकर खाकर गिरा भी; लेकिन फिर गिरकर उठने की उसमें ताकत थी। हाल में ही विश्व महायुद्ध की ज्वाला में तप चुका है; परन्तु फिर भी उसने कुछ शिक्षा ग्रहण न की। आजकल की राजनीति मे गलत और बुरे कर्मों के करने की प्रतिद्वन्द्विता की होड में हर राष्ट्र आगे बढ़ जाना चाहता है। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया निश्चित है, और यदि वह प्रतिक्रिया बुरी है तो उसका परिणाम भी बुरा ही होगा। मानव जाति के इस संकटकाल मे यह स्मरण रखना होगा कि घृणा, हिंसा तथा गलत काम करने से लाभ नहीं होता। संसार आज जिन संकटों से गुजर रहा है, वे अतीत में संग्रह की हुई घृणा और हिंसा की प्रतिक्रिया का परिणाम है।"

संयुक्त राष्ट्र संघ को जेनरल असेम्बली के अध्यक्ष आस्ट्रेलियन पर-राष्ट्र मन्त्री डा० एवाट का निमन्त्रण स्वीकार कर भारत के प्रधान मन्त्री पं० नेहरू का भाषण ३ नवम्बर को संघ की असेम्बली मे उस समय हुआ, जब मैक्सिको के उस प्रस्ताव पर वाद-विवाद हो चुका था, जिसमें बडे राष्ट्रों से अपील की गयी थी कि वे अपने मत-भेद मिटाने के लिए फिर से प्रयत्न करे। पं० नेहरू ने अपने भाषण में कहा, "आप का उद्देश्य स्पष्ट है, किन्तु उस उद्देश्य पर दृष्टि रखते समय बहुधा हम लोग छोटी-छोटी बातों मे फँसकर इधर-उधर हो जाते हैं और वास्तविक लक्ष्य को भूल जाते हैं। मैं जिस देश का निवासी हूँ उसने लम्बे पर शान्ति पूर्ण संघर्ष के पश्चात् अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की है। उस लम्बे संघर्ष में हमारे महान नेता ने हमे सिखलाया था कि हमें अपने उद्देश्य को ही नही, परन्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति के साधनों को भी कभी नही भूलना चाहिए। उद्देश्य तथा उस तक पहुँचने के साधन भी अच्छे होने चाहिए।"

"यह संघ दो महायुद्धों के पश्चात् और उसके परिणाम स्वरूप बना है। इन से क्या शिक्षा मिली? निश्चित् ही इस घृणा और हिन्सा से शान्ति स्थापित नही हो सकती तथा अत्यन्त चमकीले-भड़कीले वादविवाद से हम

उस घेरे से नहीं निकल सकते। उससे निकलने के लिए हमें दूसरे मार्ग और साधन अपनाने होंगे।

हम योरोपीय संस्कृति को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और योरोप कि समस्याओं को हम महत्त्व भी देते हैं, लेकिन विश्व योरोप से बड़ी चीज है। सिर्फ योरोप की समस्यायें ही सम्पूर्ण विश्व की समस्यायें नहीं कही जा सकती, एशिया में ऐसे बड़े खंड भी हैं, जिन्होंने अतीत में विश्व के मामलों में भले ही अधिक भाग न लिया हो, लेकिन आज वे जाग उठे हैं। उनकी जनता प्रगतिशील हो गयी है और उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

एशिया को आज भी अंतर्राष्ट्रीय मामलों में महत्त्व प्राप्त है, और कल तो वह और भी बढ़ जायेगा। एशिया का कुछ भाग अभी भी स्वतंत्र नहीं है। आश्चर्य है कि जो कुछ हो चुका है उसके पश्चात् भी साम्राज्य-वाद का अंत नहीं हुआ। हम पड़ोसी देशों के संघर्ष के साथ सहानुभूति रखते हैं। कोई भी शक्ति चाहे वह बड़ी हो या छोटी, यदि स्वतंत्रता के मार्ग में बाधा उपस्थित करती है तो वह विश्व-शान्ति को क्षति पहुँचाती है।........"

३ नवम्बर की रात को पं० नेहरू पेरिस से मिश्र की राजधानी काहिरा के लिए रवाना हुए। वे वहाँ अरब संघ के मेहमान हुए। एक प्रेस-कान्फ्रेन्स के समक्ष अपना विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "विश्व की समस्या एशिया को बाहर रख कर नहीं सुलझायी जा सकती। यदि हिन्दएशिया में, दूसरे देशों को दासत्व में रखने वाली शक्ति द्वारा और भी अधिक आक्रमणकारी कोई कार्रवायी की गई, तो भारत और विश्व में उसकी भयंकर प्रतिक्रिया होगी। वहाँ से साम्राज्यवाद और विदेशी आधिपत्य का मिटना आवश्यक है। पूर्व के देशों के निवासियों और नेताओं को एक दूसरे से मिलना तथा प्रेम पूर्ण सम्बन्ध बढ़ाना चाहिए।"

२ नवम्बर को वे दिल्ली के लिए रवाना हुए, तथा ३ नवम्बर को बम्बई होते हुए दोपहर में वे दिल्ली के पालम हवाई अड्डे पर पहुँचे, जहाँ [illegible] के लिए निर्वाचित अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद, उपप्रधान मंत्री सरदार पटेल, तत्कालीन गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचारी आदि प्रमुख व्यक्ति स्वागतार्थ उपस्थित थे।

७ नवम्बर को कांग्रेस पार्टी की विशेष बैठक में पं० नेहरू ने विदेश में किये गये अपने कार्यों का वर्णन किया। उन्होंने बतलाया कि न तो प्रधान मंत्रियों की कान्फ्रेन्स में ही और न ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली के बातचीत के द्वारा ही यह ज्ञात हो सका कि ब्रिटेन और भारत का भविष्य में किस प्रकार का सम्बन्ध रहेगा।

८ नवम्बर को विधान-परिषद् की बैठक में अपनी वैदेशिक यात्रा के सम्बन्ध में भाषण देते हुए नेहरू जी ने कहा कि मैंने ब्रिटिश-राष्ट्र सम्बन्ध के विषय में लन्दन में अभी कोई वादा नहीं किया है; क्योंकि यह एक ऐसा प्रश्न था कि जिस पर विधान-परिषद् ही अपना निर्णय दे सकती थी। उन्होंने कहा कि मैंने वहाँ कह दिया है कि भारतीय विधान-परिषद् अपनी इच्छानुसार सब कुछ करने के लिए स्वतन्त्र है, और स्वेच्छा से कोई भी निर्णय कर सकती है। मैंने यह भी कहा कि हम सभी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना चाहते हैं। हम इंग्लैण्ड और राष्ट्र-मण्डल से भी अपना सद्भावनापूर्ण संबंध बनाये रखेंगे।

प्रधान मंत्री नेहरू का अमेरिका में पदार्पण

पं० जवाहरलाल नेहरू की अमेरिका-यात्रा एक ऐसी घटना थी जिसने साधारणतः सारे विश्व की और विशेषतः भारत की राजनीति को प्रभावित किया था। आज अमेरिका संसार का वह राष्ट्र है जो विश्व के रंगमच पर अत्यन्त महत्वपूर्ण अभिनय कर रहा है। उसकी शक्ति, उसकी सम्पन्नता और उसकी राजनीति, उसे जगत् के बहुत बडे भाग का नेतृत्व प्रदान किये हुए है। पं० नेहरू का अमेरिकन राष्ट्र द्वारा आमंत्रण, और उनका वहाँ जाना, एशिया, अफ्रिका और योरोप के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के लिए, उनकी विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार हर्ष, आशा, आशंका और थोडा सदेह का कारण बन गया था, तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे इस यात्रा से विभिन्न क्रिया तथा प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हुई थीं।

भारत की स्वतंत्रता और उसके उत्थान ने संसार के आधुनिक स्वरूप को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इस देश की ओर आज महती शक्तियो की दृष्टि लगी हुई है, तथा एशिया और अफ्रिका की पिछड़ी तथा अशक्त जातियाँ इसकी ओर आशा से देख रही हैं। अतः भारतीय नीति तथा उसके प्रयोजन पर सभी राष्ट्रों की सतर्क दृष्टि होना स्वाभाविक ही है।

१९४९ के अक्टूबर मास मे भारत के प्रधान मंत्री का अमेरिका में जैसा भव्य स्वागत हुआ उसमे न केवल दो महान राष्ट्रों—अमेरिका और भारत—के पारस्परिक सौहार्द्र के निरूपण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग ही समाविष्ट है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय कशमकश को बनाये रखने वाले कुछ जटिल प्रश्नों के समाधान की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने

वाले मौलिक तत्वों का भी निरूपण है। भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक ऐसी राजनीतिक समस्यायें उठ चुकी थीं जिनमें भारत और अमेरिका समान रूप से दिलचस्पी ले रहे थे। अनेक विषयों में—उदाहरणतः काश्मीर तथा हैदराबाद की समस्या में—दोनों के दृष्टिकोण में स्पष्ट भिन्नता तथा विरोध प्रकट हो रहा था। अमेरिका संयुक्त राष्ट्रसंघ में पाकिस्तान के अनुचित भारत-विरुद्ध कार्यकलापों का परोक्ष रूपमें पक्षपात पूर्ण समर्थन कर रहा था।

अमेरिका की प्रशान्त-क्षेत्र एवं सुदूर-पूर्व सम्बन्धी नीति के सम्बन्ध में भी भारत और अमेरिका के दृष्टिकोण में अंतर था। फिलिपाइन्स के तत्कालीन राष्ट्रपति ने प्रशान्त-संघ-योजना प्रस्तुत की थी। प्रशान्त तथा सुदूर-पूर्व मे कम्यूनिस्टों का मुकाबिला करने के उद्देश्य से अमेरिका इस योजना मे विशेष दिलचस्पी ले रहा था। एशियाई देशों के मामले में सैनिक स्तर पर हस्तक्षेप की यह योजना भारत को पसन्द न थी। लाल चीन के सम्बन्ध में भारत और अमेरिका के दृष्टिकोणों से यह स्पष्ट था। किन्तु भारत की इच्छा के प्रतिकूल उसका नाम जबर्दस्ती अन्य राष्ट्रों के साथ इन सब योजनाओं के समर्थन में प्रचारित किया जा रहा था. यद्यपि भारत-सरकार ने इसका समय-समय पर पूर्ण खंडन भी किया था।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक दूसरे के विरोध में कदम उठाने के पश्चात् भी भारत की आर्थिक प्रगति के सम्बन्ध में अमेरिका और भारत के दृष्टिकोण में विशेष अन्तर न था। सम्मान-जनक शर्तों पर ऋण अथवा अन्य प्रकार से दी गयी अमेरिकन आर्थिक सहायता स्वीकार करने के लिए भारत तैयार था। अमेरिका भी अपनी पूँजी भारत के व्यावसायिक क्षेत्र में लगाने का संकेत कर चुका था। विदेशी पूँजी की सुरक्षा का आश्वासन देते हुए पं० नेहरू ने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि विदेशी पूँजी राष्ट्रीय विकास-विषयक हमारी योजनाओं तथा कार्यों में बाधक न होगी तो हम उसका स्वागत करेंगे। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा अनुन्नत राष्ट्रों के विकासार्थ आयोजित चतुःसूची-योजना से भी भारत

विशेष रूप से लाभान्वित होना चाहता था। इन सभी घटनाओं से आबद्ध पं० नेहरू का अमेरिका-प्रस्थान विशेष राजनीतिक तथा आर्थिक महत्व रखता था।

पं० नेहरू के वाशिंगटन-आगमन के पूर्व से ही प्रमुख अमेरिकन समाचार-पत्र उनके विषय में विशेष लेख, संपादकीय आदि प्रकाशित करने लगे थे। 'वाशिंगटन पोस्ट' ने उनका विश्व नागरिक के रूप में परिचय देते हुए लिखा था कि पं० नेहरू के आगमन से "पूर्व और पश्चिम का अद्भुत मिलन (Dramatic meeting) होगा।...प्राचीन भारत और अर्वाचीन अमेरिका, दोनों यह महसूस कर रहे हैं कि एक के लिए दूसरा बहुत महत्वपूर्ण है।" 'न्यूयार्क टाइम्स' ने पं० नेहरू की लोक-प्रियता का उल्लेख करते हुए लिखा था, "यदि किसी की लोक-प्रियता उसके अपने देश के निवासियों के स्वेच्छाप्रेरित सहयोग से आँकी जा सकती है तो अमेरिकन जनता प्रथम बार विश्व के सर्वाधिक लोक-प्रिय व्यक्ति का दर्शन करेगी।" इसके अतिरिक्त उसने लिखा था, "नेहरू जी को जानने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह विश्वास करता है कि भारत की आवाज को सशक्त बनाने के प्रयास में भ्रातृ-भाव के उस दर्शन से विश्व को प्रभावित करने की इच्छा निहित है, जो भारत की प्राचीन संस्कृति की देन है और जिसे गांधी जी ने पुनरुज्जीवित किया।" सम्प्रति, अमेरिका की भूमि पर पं० नेहरू का पैर पड़ने से पूर्व उनके प्रति साधारण जनता में जो उत्सुकता, कौतूहल और श्रद्धा समाचार-पत्रों ने उत्पन्न की, वह बाद में उनके विराट् स्वागत के रूप में पूर्णतः स्पष्ट हो गयी।

अमेरिका के राष्ट्रपति श्री ट्रूमन के निजी वायुयान 'इण्डिपेण्डेंस' पर आरूढ़ हो, ११ अक्टूबर सन् १९४९ में पहली बार पं० नेहरू ने अमेरिका की स्वतन्त्र और स्वस्थ भूमि पर पैर रखा। हवाई अड्डे पर अमेरिका के राष्ट्रपति ने अपने अन्य सहयोगियों के साथ स्वतन्त्र नागरिकों के महादेश के राष्ट्र-नायक के रूप में आपका स्वागत किया। सैनिक बैन्ड द्वारा आयोजित 'जन मन गण......' के राष्ट्रीय वादन के बीच अमेरिका की

'थर्ड इनफैन्टरी रेजिमेन्ट' ने १९ तोपों से आपका अभिवादन किया। पं० नेहरू ने उसी समय संक्षेप में अमेरिकावासियों के प्रति अपने हार्दिक उद्गार प्रकट करते हुए कहा, "पारस्परिक लाभ तथा मानव जीवन के कल्याण के लिए पश्चिम और पूर्व के देश मैत्रीपूर्ण एवं लाभजनक सहयोग के आधार पर कई प्रकार से मिल-जुल कर कार्य कर सकते हैं।" इसके पश्चात् उन्होंने अमेरिकन सैनिकों द्वारा प्रस्तुत 'गार्ड आफ आनर' का निरीक्षण किया।

इन सब शिष्टाचारों के सम्पन्न होने के पश्चात् पं० नेहरू अमेरिकी राष्ट्रपति के साथ उनके निवास-स्थल ब्लेयर हाउस पहुँचे। सर्व प्रथम आधुनिक अमेरिका के उन्नायक राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन तथा जेफरसन की समाधि पर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के पश्चात् उन्होंने ट्रूमन द्वारा आयोजित प्रीतिभोज में भाग लिया जिसमें अमेरिका के सभी उच्चतम अधिकारी तथा नागरिक उपस्थित थे। इसके पश्चात् उन्होंने अपना निवास स्थानान्तरित कर भारतीय दूतावास में आश्रय लिया।

ता० १२ को भारतीय प्रधान मन्त्री ने अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन की समाधि पर पुष्पाञ्जलि अर्पित की। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य अमेरिकन शहीदों की महत्वपूर्ण समाधियों पर भी जाकर अपनी ओर से तथा भारत की ओर से श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। इसी दिन तत्कालीन अमेरिकन परराष्ट्र मंत्री श्री अचेसन दम्पति की ओर से आयोजित प्रीतिभोज में भी उन्होंने भाग लिया, तत्पश्चात् अमेरिका-स्थित भारतीयों तथा भारतीय छात्रों से मिले। इसके अतिरिक्त उन्होंने अमेरिकन राष्ट्रपति श्री ट्रूमन से काश्मीर के सम्बंध में वार्तालाप भी किया।

भारत-अमेरिका के पारस्परिक सम्बंध के इतिहास में १३ अक्टूबर सन् १९४९ का दिवस अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी दिन अमेरिकन 'प्रतिनिधि सभा' में वक्तव्य देते हुए पं० नेहरू ने भारतीय नीति तथा उद्देश्यों को उनके समक्ष स्पष्ट रूप से प्रकट किया था। "आज विश्व दो शक्ति गुट्टों में विभाजित है। एक आंग्ल-अमेरिकन गुट्ट तथा दूसरा सोवियत रूस

का युद्ध। पर भारत इनमें से किसी दल से अपना सम्बंध स्थापित नहीं करना चाहता। वह भ्रातृत्व चाहता है, मैत्री चाहता है और चाहता है मानव समाज की स्वतन्त्रता।......स्वतंत्रता के खतरे में पड़ने पर, न्याय के संकटापन्न होने पर और आक्रमण की दशा में न तो हम तटस्थ रह सकते हैं, न रहेंगे।"

इसके पश्चात् पं० नेहरू तथा श्री ट्रूमन एवं परराष्ट्र मंत्री श्री अचेसन ने महत्वपूर्ण, गम्भीर राजनीतिक वार्ता की। इस वार्ता के पूर्व पं० नेहरू 'नेशनल गैलरी आफ आर्ट' का निरीक्षण कर चुके थे।

नेहरू जी ने नेशनल क्लब में अपने सम्मान में आयोजित भोज के अवसर पर लगभग ७०० पत्रकारों के समक्ष भाषण देते हुए कहा, "भारत के शक्तिशाली व्यक्तित्व को मान्यता दी जानी चाहिए, तथा एशिया में उसका जो स्थान बन रहा है उसे उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता।" भारतीय संस्कृति की सारगर्भित विवेचना करते हुए उन्होंने कहा, 'अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति की विशेषता है।' वहीं उन्होंने एशियाई उपनिवेशों की स्वतंत्रता के लिए जोरदार अपील भी की। उन्होंने कहा "भारत एशियाई उपनिवेशों को परतंत्रता के बंधन से उन्मुक्त राष्ट्रीयता के विशुद्ध वातावरण में विकसित होते देखना चाहता है। वह इन देशों की जनता का शोषण और उत्पीड़न बर्दाश्त नहीं कर सकता। हिन्दएशिया, हिन्द-चीन और अन्य एशियाई उपनिवेशों की जनता में भारत की विशेष दिलचस्पी है।" इसके अतिरिक्त प० नेहरू ने भारत-अमेरिकी-आर्थिक-सम्बंध का भी विवेचन करते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि भारत किसी भी भौतिक सुविधा के लिए अपनी किस्मत का सौदा नहीं करेगा।

१५ अक्टूबर को पं० नेहरू अमेरिकन रक्षामंत्री श्री लुई जानसन के साथ न्यूयार्क पहुँचे। वहाँ उन्होंने फ्रेन्कलिन रुजवेल्ट की समाधि पर पुष्पाञ्जलि अर्पित की तथा श्रीमती रुजवेल्ट से वार्तालाप किया। वहाँ से लौटने के पश्चात् पं० नेहरू ने अमेरिका के प्रसिद्ध पत्रकारों से विभिन्न

विषयों पर वार्तालाप किया। शाम को श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित ने अपने प्रिय भ्राता को आमंत्रित किया। स्वागत-समारोह में अमेरिका के प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार एवं राजनीतिज्ञ उपस्थित थे।

१७ अक्टूबर को पं० नेहरू जनता के अपूर्व स्वागत के बीच से होते हुए न्यूयार्क टाउनहाल पहुँचे, जहाँ नगर के मेयर तथा अन्य उच्च अधिकारियों ने उनका भव्य स्वागत किया। मेयर के स्वागत भाषण का उत्तर देते हुए नेहरू जी ने आशा व्यक्त की थी, "विश्व में शान्ति और स्वतंत्रता के लिये, अमेरिका और भारत, दोनों देश पारस्परिक सहयोग की भावना से कार्य करेंगे।" आज ही उन्होंने 'सिटी और कंट्री' स्कूल के छोटी कक्षाओं के बालकों से मिलकर उनसे वार्तालाप किया तथा उनके बातों का जवाब देते हुए उनका अभिनन्दन-पत्र स्वीकार किया।

'डाक्टर आफ ला' की उपाधि से पं० नेहरू को विभूषित करने के उद्देश्य से १८ अक्टूबर को कोलम्बिया-विश्वविद्यालय में विशेष समावर्त्तन समारोह का आयोजन हुआ। उस दिन असंख्य बुद्धिजीवियों के बीच उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, "भारत की परराष्ट्र नीति 'शान्ति की खोज' के प्रयास पर आधारित है। यह 'निषेधात्मक तथा तटस्थ नीति' नहीं है; 'यह निश्चयात्मक और ओजस्विनी' है। इसका उद्भव भारत के अपने स्वातंत्र्य-संग्राम और महात्मा गांधी की शिक्षा से हुआ है।" इसी भाषण में उन्होंने कहा था, "जब मानव की स्वतंत्रता तथा उसकी शान्ति संकटापन्न होगी, हम तटस्थ नहीं रह सकते। उस समय तटस्थ रहने का अर्थ होगा उन आदर्शों के प्रति विश्वासघात जिनका हम समर्थन करते हैं तथा जिन्हें हम मूर्त रूप में देखना चाहते हैं।" विश्वविद्यालय के कुलपति ने अपना स्वागत-भाषण पढ़ने के पश्चात्, प्रथानुकूल उन्हें वह सम्मानित डिप्लोमा प्रदान किया।

१९ अक्टूबर को भारत-अमेरिकी-आर्थिक-सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए, ओवरसीज प्रेस क्लब में पं० नेहरू ने अपना वक्तव्य दिया, "भारत के विकास-कार्यों में काफी निजी अमेरिकन पूँजी लगायी जाने के कार्य में

मै 'आर्थिक साम्राज्यवाद' का संकट निहित नही मानता।" उसी दिन अमेरिकन-प्रेस-सवाददाता-संघ के समक्ष अपना विचार व्यक्त करते हुए उन्होने महत्वपूर्ण भविष्यवाणी की थी, "मार्क्सवादी और पूँजीवादी समाज अधिक दिनो तक साथ नही रह सकता। अंततोगत्वा एक के द्वारा दूसरे का अंत होगा ही।" उनके कथनानुसार, "जो समाज मानव-जाति के भौतिक और आध्यात्मिक विकास मे सहायक होता है, अंततः उसकी ही विजय होती है।" एक अन्य प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था, "मै विश्व को एक सूत्र मे आबद्ध देखना चाहता हूँ, लेकिन यह नही चाहता की सब एक से हो जाये। विभिन्नताओं से भरा-पूरा यह विश्व मुझे अच्छा लगता है। मुझे आशा है कि एकता के बावजूद मानव-स्वभाव में वर्तमान मूल्यवान् अनेकता भी कायम रहेगी।" हिन्दएशिया, और हिन्दचीन के प्रश्नो के उत्तर मे आपने कहा, "एशिया मे विदेशी राष्ट्रों की औपनिवेशिक सत्ता समाप्त होनी चाहिए और वह समाप्त होकर ही रहेगी।" इसी दिन पं० नेहरू ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सरक्षण-समिति में भी भाषण दिया, तथा इस विश्व-सस्था मे अपना विश्वास व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "राष्ट्र संघ भूत तथा वर्तमान के सघर्षों के बीच की कड़ी है। संसार को सदैव ऐसी संस्था की आवश्यकता रही है।"

२० अक्टूबर को पं० नेहरू ने अमेरिकन-परराष्ट्र-व्यापार-मंडलों द्वारा आयोजित स्वागत-भोज में भाग लिया। इसमें उन्होंने भारत मे अमेरिकन पूँजी का स्वागत करते हुए उसकी सुरक्षा तथा उसके लाभ की मान्यता के विषय मे आश्वासन दिया। यहाँ उन्होने भारत की भूत तथा भावी आर्थिक स्थिति का स्पष्ट चित्रण भी किया।

२१ अक्टूबर को पं० नेहरू सदल-बल बोस्टन पहुँचे। बोस्टन! अमेरिका के स्वतंत्रता-संग्राम का पहला क्षेत्र जिसने इंगलैंड के सत्तापूर्ण शिकंजों से नवनिर्मित अमेरिकन राष्ट्र का परित्राण किया था। स्वागत-समाराह के पश्चात् वे हारवर्ड-विश्वविद्यालय मे पहुँचे, उसी दिन अनेक संस्थाओ का

निरीक्षण करने के पश्चात् सायंकाल में एक भोज में उन्होंने वहाँ के प्रधान मंत्री से गम्भीर वार्तालाप किया।

अभ्यर्थना एवं वंदना के बीच पं० नेहरू तीन दिनों तक कनाडा में भी रहे। यहीं उन्होंने विश्व-विख्यात नियाग्रा-जल-प्रपात की अपूर्व शोभा का भी निरीक्षण किया था। २४ अक्टूबर को, अपने आगमन के द्वितीय दिन, पं० नेहरू ने कनाडा की संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के समक्ष अपना सारगर्भित वक्तव्य दिया। 'एशिया में पुनर्जागरण' का ऐतिहासिक क्रम ही उनके भाषण का प्रधान विषय था, "एशिया, जो महाद्वीपों का जनक है, और जिसकी गोद में ऐतिहासिक सभ्यताओं का विशाल भाग फला-फूला और समृद्ध हुआ है, आज फिर जाग उठा है। नव प्राप्त स्वतंत्रता का अभ्युदय प्रमत्त सा है; क्योंकि पिछली दो शताब्दियों से उसकी प्रगति रोकी गयी।" "एशिया का तथाकथित विद्रोह पश्चिम के कुछ राष्ट्रों के दम्भ और अत्याचार के विरुद्ध प्राचीन और स्वाभिमानी लोगों की जायज चेष्टा है।.........हमारा यह विश्वास है कि जब तक एशिया की आधारभूत समस्यायें हल न होंगी तब तक विश्व-शान्ति सम्भव नहीं है।" इस भाषण में नेहरू जी ने उपनिवेशवाद की धज्जियाँ उड़ायीं, उनकी उस चेतावनी की सार्थकता आज स्पष्टतः नजर आ रही है। कोरियाई शान्ति-वार्ता और हिन्दचीन सम्बन्धी विराम-संधिवार्ता में भारत का योगदान एशिया में उपनिवेशवाद को कायम रखनेवाली शक्तियों को चुनौती देता हुआ उसके बीते हुए युग की असांस्कृतिक कामना को विफल सिद्ध करने में समर्थ हुआ है।

कनाडा को अपना संदेश सुनाने के पश्चात् पं० नेहरू २६ अक्टूबर को पुनः अमेरिका के शिकागो नगर में लौट आये। यहीं उन्होंने अनेक संस्थाओं में वक्तव्य देने के पश्चात् विकसित अमेरिकन वैज्ञानिक कृषि का भी सर्व प्रथम निरीक्षण किया। अपराह्न में उन्होंने शिकागो-विश्वविद्यालय में भी उपस्थित हो भाषण दिया। यहाँ विश्व-शान्ति पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि विश्व-शान्ति केवल महात्मा गांधी के सिद्धान्तों

पर चलकर ही स्थापित हो सकती है। युद्ध से शान्ति का स्वप्न देखना भूल है। अहिंसा ही शान्ति का मार्ग है। शिकागो में पं० नेहरू ने भारतीय छात्रों द्वारा आयोजित अनेक समारोहों में भी भाग लिया।

२८ अक्टूबर को पं० नेहरू वायुयान द्वारा टेनेसी वैली क्षेत्र का निरीक्षण करने नाक्सविले पहुँचे। टेनेसी नदी के पार्श्व में स्थित यह घाटी वह स्थान है जिसने आधुनिक वैज्ञानिक युग के साधनों से सम्पन्न होकर अमेरिका के बहुत बड़े भू भाग का स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया है। टेनेसी-घाटी-प्रशासन-योजना विश्व की सबसे महत्वपूर्ण तथा बड़ी नदी-घाटी योजना है।

पश्चिमी वर्जीनिया के पहाड़ी इलाके ह्वाइट सलफर स्प्रिंग्स में एक दिन आराम करने के पश्चात् नेहरू जी रक्षामंत्री लुई जानसन के वायुयान पर सवार होकर ३० अक्टूबर को सैनफ्रान्सिस्को पहुँचे। सैनफ्रान्सिस्को में ही संयुक्त-राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र पर विश्व के राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किया था। हवाई अड्डे पर नागरिकों तथा अधिकारियों की जयध्वनि के बीच छः फौजी बैण्डों ने पहले 'जन मन गण···' की धुनि प्रसारित की, तत्पश्चात् अमेरिकन राष्ट्रीय गीत 'स्टार स्पागल्ड बैनर······' की।

३१ अक्टूबर को नेहरूजी ने कैलिफोर्निया-विश्वविद्यालय के 'ग्रीक थियेटर' में लगभग दस हजार श्रोताओं के समक्ष अपना सारगभित भाषण दिया। भारत की वैदेशिक नीति पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त उन्होंने यहाँ यह भी कहा, "यदि मानव-समाज का हित करना है तो विश्व के आर्थिक संकटों को दूर करना आवश्यक होगा। वर्तमान आर्थिक विषमता ही समाज की सब बुराइयों की जड़ है। यदि हम शान्ति-स्थापन करना चाहते हैं तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम शान्त बने रहें, न कि युद्ध की तैयारी करें। शान्ति अहिंसा से ही स्थापित की जा सकती है, हथियारों से नहीं।"

१ नवम्बर को पं० नेहरू अमेरिकन-व्यापार-मंडल के आमंत्रण पर वहाँ उपस्थित हुए। आज के युग में राजनीति और अर्थ का गहरा संबंध

है। राजनीति ने व्यापार पर और व्यापार ने राजनीति पर गहरा प्रभाव डाला है। अमेरिका अपने व्यापार के कारण ही आज सर्वसम्पन्न तथा सर्वशक्तिशाली राष्ट्र हो पाया है। इस भोज के अवसर पर अमेरिका के सर्वोच्च धनाढ्य व्यक्ति उपस्थित थे। यहाँ पं० नेहरू ने कहा, "अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने तथा विश्व में स्वतंत्रता एवं समता को सतुलित करने के लिए मानवीय दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है। स्वतंत्रता और समता की आधारभूत समस्याओं के हल होने पर विश्व की समस्याएँ स्वतः हल हो जायेंगी। मानवीय गुणों तथा मानवीय स्तर की रक्षा होना आवश्यक है।" उन्होंने आगे कहा, "विश्व की वर्तमान कठिनाइयों का प्रधान कारण मानवीय दृष्टिकोण का अभाव ही है। राजनीतिज्ञों का सीधा सम्बन्ध जनता से नहीं होता, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय निर्णयों में एक प्रकार की अमूर्त रिक्तता सी रहती है। मानवीय समस्याओं को मानवीय दृष्टिकोण से सुलझाने की जितनी आवश्यकता आज है, उतनी पहले कभी नहीं थी।······मानवीय बंधनों का परिज्ञान, और भय का मूलोच्छेदन ही कठिनाइयों से त्राण पाने का उपाय है। यह सोचना गलत है कि सस्कृति तथा विचार विभिन्नता के कारण ही लोग एक दूसरे के दुश्मन हैं। वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति ने विश्व को विकासोन्मुख एकता का केन्द्र बना दिया है। इस क्रम पर अंकुश लगाने के बजाय उसे बढ़ावा देना चाहिए।"

इसी दिन पं० नेहरू को सैनफ्रान्सिस्को के मेयर की ओर से सम्मान-पत्र अर्पित किया गया। उन्होंने आगत नागरिकों के समक्ष पं० नेहरू का परिचय "मानव समाज की उन्नति के लिए संघर्षशील, महान और उत्साही नेता" के रूप में कराया। पं० नेहरू ने आभार प्रकट करते हुए कहा था, "अमेरिका द्वारा किया हुआ यह सम्मान मेरा नहीं अपितु भारत का है।"

सायंकाल सैनफ्रान्सिस्को-प्रेस-क्लब द्वारा आयोजित गोष्ठी में भाग लेकर पं० नेहरू ने वहाँ के पत्रकारों के विभिन्न प्रश्नों का उत्तर दिया;

जिसमे उन्होने पाकिस्तान द्वारा प्रचारित भ्रमपूर्ण आरोपो का खंडन करते हुए भारत की नीति पर प्रकाश डाला था। उन्होंने भारत की देशी रियासतो सम्बंधी नीति—विशेषतः काश्मीर तथा हैदराबाद से सम्बंधित उठाये गये कदमो—का समर्थन किया। उन्होंने पाकिस्तान द्वारा प्रचारित 'हिन्दू-मुस्लिम-भेद' तथा 'दो राष्ट्रो के सिद्धान्त' का भी खंडन किया।

२ नवम्बर को पं० नेहरू वैनकू नगर पहुँचे। यहाँ के मेयर द्वारा आयोजित प्रीति-भोज मे अपना आभार प्रकट करते हुए उन्होंने भारत-कनाडा-सम्बन्ध, भारत की परराष्ट्र नीति और राष्ट्र मंडल मे रहने के भारत के निर्णय पर प्रकाश डाला। इसके अतिरिक्त उन्होंने बृटिश कोलम्बिया युनिवर्सिटी मे भी अपना वक्तव्य दिया तथा एक प्रेस-कान्फ्रेन्स मे भी भाग लिया। पं० नेहरू के दिये हुए इन वक्तव्यों से अमेरिका निवासियों तथा समाचार-पत्रों ने यह भविष्य वाणी की कि निकट भविष्य में भारत, अमेरिका तथा रूस के पश्चात् तीसरा महान राष्ट्र होगा।

४ नवम्बर को पं० नेहरू ने मैसिडन पहुँच कर विसकासिन-विश्वविद्यालय मे सहस्रों छात्रों के समक्ष अपना भाषण दिया। विश्वविद्यालय के अध्यक्ष ने स्वागत करते हुए उन्हे उस देश का (भारत का) प्रतिनिधि बतलाया "जहाँ संस्कृति और विद्वत्ता का मूल्य सभी सासारिक वस्तुओं के मूल्य से ऊँचा समझा जाता है, और जहाँ विद्वान व्यक्ति ही महान माना जाता है।"

पं० नेहरू इन पर्यटनो के पश्चात् पुनः न्यूयार्क लौटे। यहाँ उन्होने प्रमुख निग्रो-नेताओ से भेंट की। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ऐसे उन्नतिशील देश मे भी मानवीय अधिकारों की हत्या होती है। निग्रो जाति के साथ आज भी वहाँ अपमान पूर्ण व्यवहार होता है; यद्यपि उनकी जागृति के फलस्वरूप यह आज काफी कम हो गया है। 'नेशनल असोसियेशन फार दि एडवान्समेन्ट आफ कलर्ड पीपुल्स' की ओर से पं० नेहरू को नीग्रो लोगों के अधिकारो के पक्ष मे बुलन्द आवाज उठाने तथा उनकी सेवाओं के लिए 'स्पीग्रान पदक' प्रदान किया गया।

निग्रो-नेताओं द्वारा सत्कार किये जाने के पूर्व पं० नेहरू प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में उपस्थित हो अपना भाषण दे चुके थे, जिसका साराश था, "यदि संस्कृति, साहित्य, सभ्यता तथा शान्ति की रक्षा करनी है, तो पूर्व और पश्चिम का भेद मिटा देना होगा। आखिर पूर्व के लोग भी मनुष्य हैं। अतः पूर्व-पश्चिम का नारा तुच्छता का द्योतक है। मनुष्य को उदार होना चाहिए। उसका हृदय इतना विशाल हो कि काले और गोरे के भेद का पता ही न चले।" इसी समय आपने जगत्-प्रसिद्ध विद्वान स्व० श्री अलबर्ट आइनस्टीन से भी विचार-विमर्श किया। पं० नेहरू को मैक्सिको आने का भी निमंत्रण मिला था, परन्तु समयाभाव के कारण उन्होंने उसे अस्वीकृत कर दिया।

विशाल तथा ऐश्वर्यशाली अमेरिका का राजनीतिक प्रयोजनपूर्ण निरीक्षण करने के पश्चात् नेहरू जी स्वदेश वापस लौटे। उन्होंने अमेरिकन-पत्रकारों के समक्ष अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा, "मेरी समझ मे इस यात्रा का और चाहे जो परिणाम हो, यह निश्चय है कि इससे भारत और अमेरिका के सम्बंध में व्यापक सुधार होगा। सुधार से मेरा अभिप्राय यह है कि दोनों देशों की मैत्री प्रगाढ़ होगी। एक दूसरे को समझने तथा इस दृष्टि से समस्याओं पर विचार करने की भावना बलवती होगी।"

अमेरिका के बडे-बडे पत्रों ने अपने-अपने अग्रलेख छाप कर पं० नेहरू के प्रति अपने विचार व्यक्त किये। किसी ने कहा, रूस-अमेरिका का झगड़ा उनके अतिरिक्त कोई नही सुलझा सकता। एक पत्र ने लिखा, एशिया का नेतृत्व निकट भविष्य मे पं० नेहरू के हाथ मे होगा तथा भारत ससार का एक महान राष्ट्र होगा। एक पत्र ने तो यहाँ तक लिखा कि पं० नेहरू के प्रतिनिधित्व में भारत ही साम्यवाद की बीमारी को दूर करने मे सफल होगा। साम्यवादियों की आखिरी दिशा भारत होगी, जहाँ वे ठोकर खा कर असफल होंगे।

चीन और पं० नेहरू

पं० नेहरू आज विश्व-मानव के रूप में शान्ति स्थापन के लिए जो कार्य कर रहे हैं, वह विश्व तथा मानव के जीवित इतिहास में ज्वलंत दीप्त इतिहास है। जवाहरलाल आज न केवल भारत के बल्कि पृथ्वी के दोनों गोलार्धों के युग-पुरुष हैं। यदि भारत ने अचानक ही अमेरिका, रूस और ब्रिटेन के बाद विश्व में अपना नैतिक स्थान बना लिया है, तो इसका श्रेय उनके दृष्टिकोण, निष्पक्षता और चातुर्य को है। आज हम यह कह सकते हैं कि भारत का अस्तित्व और भारत की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्ता पं० नेहरू के सत् प्रयत्न का ही फल है। वास्तव में पं० जवाहरलाल मूर्तिमान भारत हैं। सरदार पटेल के शब्दों में, "पं० नेहरू ने संकट-काल में देश का नेतृत्व किया और अपने महान् नेतृत्व द्वारा भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई।"

चीन और भारत दोनों महान प्राचीन राष्ट्र हैं। दोनों का सांस्कृतिक सम्बन्ध सदियों पुराना है। समय-समय पर दोनों ने अपने ज्ञान-आलोक का आदान-प्रदान कर एक दूसरे को दिव्य ज्योति से आह्लादित एवं स्पंदित किया है। आज भी दोनों राष्ट्रों के हृदय में ये पुरानी मधुर स्मृतियाँ हो, एक दूसरे की प्रेरणाओं की ज्वलंत प्रतीक बन दोनों को मित्रता सूत्र में आबद्ध देखना चाहती हैं।

चीन और भारत, दोनों देशों ने समान रूप से साम्राज्यवादियों के शोषण तथा पद-दलन का वेदनापूर्ण अनुभव किया है; दोनों के हृदय में गुलामी के घाव और फफोले अभी सूखे नहीं हैं। जापानी ताक़त से अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए लड़ते चीन के युद्ध स्वर में ३५ कोटि

भारतीय जनता की बुलंद आवाज मिलाते हुए पं० नेहरू ने उसके न्याय-पूर्ण स्वातंत्र संग्राम का हमेशा समर्थन किया था तथा नैतिक साथ दिया था। जापानियों के इस बर्बर स्वार्थपूर्ण प्रयास में उन्हें उन प्रवृत्तियों का गला घुटता हुआ दिखलाई दिया था जो चीन के अभ्युदय की जननी है, और जिसका विकास बाद में एशिया का मस्तक ऊँचा करने वाला सिद्ध हुआ।

चीन और भारत दोनो देश एशिया के महान प्राचीनतम राष्ट्र हैं। प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से दोनों देश सम्पन्न हैं। दोनो देशों की जन-शक्ति विशाल है। एशिया में इन दोनो देशों की मैत्री साम्राज्यवाद का जनाजा उठा देने वाली सिद्ध होगी, एवं उनका पारस्परिक ऐतिहासिक सम्बन्ध एशिया मे भ्रातृभाव के विकास में सहायक होगा। इस महा प्रयास की नीव पंचशील के सिद्धान्तों पर आधारित होगी।

अक्टूबर सन् १९४९ में नये चीन की साम्यवादी गणतंत्र सरकार का अभ्युदय हुआ। चाग काई शेक की सरकार के पतन के पश्चात् माओत्से तुंग की सरकार की प्रतिष्ठापना हुई। अविवेक पूर्ण राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कटूक्तियों तथा आलोचनाओं के पश्चात् भी नेहरू-सरकार ने नयी सरकार से भी अपना पूर्ववत् मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखा, क्योंकि भारत, सरकार नहीं बल्कि जनता की मूर्त भावनाओं, उनके विश्वास को अधिक महत्व देता था। वह उस सरकार से अपना निकट सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हमेशा प्रस्तुत था जिसे उसकी अपार जनता का सहयोग तथा मान्यता प्राप्त हो। चीन ऐसे महान राष्ट्र के अभ्युदय के क्रम की ओर दुनिया की सशंक आँखे लगी थी। विश्व के राष्ट्र यह जानना चाहते थे कि भारत साम्यवादी चीन की सरकार को मान्यता प्रदान करेगा या नहीं। भारत की नीति स्पष्ट थी। आर्थिक क्षेत्र मे परमुखापेक्षी होते हुए भी भारत अपने नैतिक आधार को गिराकर, किसी विशेष राष्ट्र की स्वार्थपूर्ण गंदी, कूटनीतिक आँखों में प्रसन्नतापूर्ण चमक देखने की लालसा से ही आत्म-हनन कर एशिया में जो क्रान्तिकारी घटनायें घट रही थी उनकी उपेक्षा

नही कर सकता था। अतः प्रतिकूल परिस्थितियों की उपेक्षा करते हुए नेहरू-सरकार ने ३० दिसम्बर १९४९ को लाल चीन की साम्यवादी सरकार को मान्यता दे दी।

पं० नेहरू ने चीन को प्रभुता-सम्पन्न राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधान का पात्र मानते हुए सिर्फ मान्यता ही नही प्रदान की, अपितु उसे अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, विशेषतः संयुक्त राष्ट्रसंघ मे महत्वपूर्ण तथा न्यायोचित स्थान दिलाने का भी उन्होंने प्रयत्न किया, किन्तु अमेरिका के स्वार्थपूर्ण गुटबंदी के कारण चीन वहाँ स्थान न पा सका। इससे क्षुब्ध हो पं० नेहरू ने कहा था, "सार्वभौमिकता के जिस सिद्धान्त को लेकर सयुक्त राष्ट्र संघ का उदय हुआ था उससे वह अलग हट गया है।........'यह उसी प्रवृत्ति का परिचायक है जिससे 'लीग आफ नेशन्स' का पतन हुआ।'..... स्पष्टतः इस दृढ तथा शक्तिशाली राष्ट्र को सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता तथा स्थान न प्रदान किये जाने के कारण नयी समस्यायें उत्पन्न हो गयी हैं।" सचमुच विश्व की शान्ति तथा न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व के लिए यह घातक बात है।

चीन के पक्ष का हर स्थान पर जोरदार समर्थन करने, कोरिया के विध्वंसक युद्ध को विश्व-शान्ति तथा मानव-कल्याण के विरुद्ध समझ उसे बद करने के प्रयत्न से, तथा कोरिया-युद्ध के बंदियों की अदला-बदली में अध्यक्ष-पद से एक तटस्थ राष्ट्र की भाति निष्पक्ष तथा न्यायपूर्ण कार्य करने के फलस्वरूप, भारत की ओर से सशंक चीन अब उसे मित्र के रूप में देखने लगा है तथा उसके विशेष निकट आ गया है। भारत-स्थित सोवियत रूस के राजदूत के शब्दों मे, "कोरिया का युद्ध समाप्त करने मे भारत सरकार ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लिया है, यह असंदिग्ध है। एशिया के शान्तिपूर्ण निपटारे में भारत का जो भाग है उसे विस्मृत करना कठिन है।" स्वयं चीनी प्रधानमंत्री चाओ एन लाई ने पं० नेहरू के शान्ति-प्रयास की सराहना की थी। यह मैत्री-सम्बन्ध १९५४ मे तिब्बत की समस्या के हल-स्वरूप हुई भारत-चीन सन्धि से और भी अधिक दृढ़ हो गया।

चीन से सम्बन्धित समस्याओं के प्रति नेहरू जी की व्यापक दृष्टि से यह स्पष्ट हो गया है कि वे विश्व-शान्ति के लिए, एवं विशेष रूप से एशिया की शान्ति तथा एशियाई देशों के विकास के लिए, भारत-चीन की मैत्री तथा आपसी सहयोग को आवश्यक समझते हैं। यही कारण है कि उन्होंने भारत-चीन-मैत्री की दो हजार वर्ष पुरानी परम्परा को बनाये रखने का बराबर प्रयत्न किया।

नेहरू-सरकार की मित्रवत् नीति से अत्यधिक प्रभावित चीन के प्रधान मंत्री एवं पराराष्ट्र मंत्री श्री चाओ एन लाई ने २५ जून सन् १९५४ को भारत में पदार्पण कर पारस्परिक मित्रता की शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी जोड़ी। उनकी इस ऐतिहासिक यात्रा की अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गहरी प्रतिक्रिया भी हुई थी। यह छिपी हुई बात नहीं है कि चाओ-नेहरू के हार्दिक मिलाप को अमेरिका ने, जो पाश्चात्य देशों की नीति का काफी हद तक नियंता है, संदेह की दृष्टि से देखा था। इस सम्मेलन के अवसर पर दोनों राष्ट्र—चीन और भारत—के प्रधान मन्त्रियों ने २८ जून सन् १९५४ को एक संयुक्त घोषणा प्रकाशित की थी; जिससे एशिया को बल प्राप्त हुआ तथा उसे कार्य के लिए एक नयी दिशा मिली। इस घोषणा के फलस्वरूप उसकी छिपी हुई संचित शक्ति निखर उठी तथा पश्चिमी राष्ट्रों की एशियाई राष्ट्रों के मामले में हस्तक्षेप करने की प्रवृति को गहरा धक्का लगा। एशिया की अंतरात्मा से उठी हुई इस पहली बुलंद आवाज ने पश्चिमी राष्ट्रों की नकेल को अपने हाथ में रखने वाले अमेरिका के कान खड़े कर दिये। चीन तथा भारत के इस संयुक्त रुख से असन्तुष्ट अमेरिका का प्रतिक्रियात्मक प्रतिवाद मनीला-समझोते में उपस्थित विपरीत सिद्धान्तों के रूप में प्रकट हुआ।

सितम्बर सन् १९५४ में आठ देशों के बीच मनीला-समझौता, दक्षिण-पूर्व-एशिया-प्रतिरक्षा-सगठन के नाम से सम्पन्न हुआ। इस समझौते के कूटनीतिक तात्पर्य से सतर्क भारत, चीन, बर्मा, लंका, हिन्दएशिया आदि प्रधान एशियाई राष्ट्रों ने इसमें भाग लेने से इन्कार करते हुए इसका

तीव्र विरोध किया। वास्तव में सन् १९४८ में अमेरिका के इशारे पर फिलीपाइन्स के तत्कालीन राष्ट्रपति के द्वारा प्रस्तुत प्रशान्त-संघ-योजना का ही परिवर्तित रूप मनीला-समझौता है। इस समझौते द्वारा अमेरिका का उद्देश्य एशियाई राष्ट्रों की राजनीति में कूटनीति पूर्ण हस्तक्षेप कर तथा उनमें फूट उत्पन्न कर एशिया की नवोदित शक्ति को कमजोर बनाते हुए अपनी महत्वाकांक्षा का उल्लू सीधा करना था। यथार्थतः मनीला-संधि सुरक्षा के बजाय अरक्षा तथा संदेह के वातावरण को जन्म देती हुई, दक्षिणी-पूर्वी एशिया के राष्ट्रों के स्वअस्तित्व सम्बंधी भय तथा आशंका की स्थिति से लाभ उठाकर, पूर्व में मुनरो-सिद्धान्त की पुनरावृत्ति है। लगता है पश्चिम के शक्तिशाली राष्ट्र एकबार फिर अपने पुराने साम्राज्यवादी नारे, "श्वेत मनुष्यों के पवित्र दायित्व" (White men's Burden) तथा "उन्नत का अनुन्नत के प्रति कर्तव्य" (Big Brother Policy) के मधुर मायावी शब्द-जाल को बिछा कर एशिया महाद्वीप में, उसकी दुर्बलता से लाभ उठा कर, अपनी पकड़ और अपना प्रभाव-क्षेत्र फिर से स्थापित करना चाहते हैं।

चीनी गणतंत्र के प्रधान मंत्री श्री चाओ एन लाई का आग्रहपूर्ण निमंत्रण पाकर पं० नेहरू ने १९५४ के अक्टूबर में चीन की भूमि पर पदार्पण किया। इससे न केवल चीन-भारत-मैत्री के बन्धन ही दृढ हुए, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर भी इसका गहरा असर पड़ा। जिन कारणों से पं० नेहरू की चीन-यात्रा महत्वपूर्ण मानी गयी है, उसका उल्लेख चीनी गणतंत्र के प्रधान मन्त्री चाओ एन लाई तथा चीनी गणतंत्र के अध्यक्ष श्री माओत्से तुंग ने स्वयं अपने वक्तव्यों में किया है। जवाहरलाल के आगमन पर लाखों की संख्या में चीनी जनता ने हार्दिक उल्लास प्रकट करते हुए सड़क पर अनुशासित ढंग से एकत्र होकर उनका अभिनंदन तथा स्वागत किया था। मंचूरिया और दरेन स्थित चीन के इस्पात और नौसेना के कारखानों का निरीक्षण करने का अवसर चीन-सरकार ने नेहरू जी को दिया जबकि रूसियों के अलावा कोई अन्य विदेशी उन्हें नहीं देख सकता था।

पेकिंग में आयोजित एक भोज के अवसर पर पं० नेहरू का स्वागत करते हुए चीन के प्रधान मंत्री चाओ एन लाई ने उनके प्रति अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये थे। "हम पं० नेहरू से भली भाँति परिचित हैं। चीनी जनता के लिए यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उसे शान्ति की रक्षा के समान ध्येय में भारत जैसा मित्रता रखने वाला पड़ोसी, तथा प्रधान मंत्री पं० नेहरू जैसा महान मित्र मिला है। भारत और चीन दोनो ही एशिया की महान शक्तियाँ हैं। दोनों ही संसार के प्राचीन तथा साथ ही साथ तरुण देश हैं। दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से भारत और चीन के बीच गहरे सास्कृतिक और आर्थिक सम्बंध रहे हैं तथा इन दोनो के बीच युद्ध होने का उल्लेख इतिहास में कहीं नहीं मिलता।

पं० नेहरू ने भी चीनी जनता तथा सरकार के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट किया। उनकी मनोभावनाओं में यदि एक ओर दोनो देशों के प्राचीन ऐतिहासिक सम्बंधो की स्मृति छाई हुई थी, तो दूसरी ओर वर्तमान की आवश्यकताओं की ओर सकेत भी था। १९ अक्टूबर १९५४ को हवाई अड्डे पर चीनियों के बीच अपना हार्दिक उल्लास प्रकट करते हुए उन्होंने कहा था, "मुझे आशा है कि चीन की मेरी यह यात्रा हमें एक दूसरे के और निकट लायेगी और हम शान्ति के लिए दूने उत्साह से कार्य करेंगे।"

२३ अक्टूबर को पेकिंग में आयोजित सार्वजनिक सभा में पं० नेहरू ने अतीत की सुखद स्मृतियों, वर्तमान के उत्तरदायित्व और भविष्य की कल्पनाओं का उल्लेख प्रभावशाली ढंग से किया था। चीन और भारत के पारस्परिक सम्बंध, और वर्तमान मे इस सम्बंध के निरूपण में नेहरू की ऐक्य की दृष्टि से यह भाषण बहुत महत्वपूर्ण था। उन्होंने अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन करने के पश्चात् कहा था, "मै इस महान देश चीन में जो स्वयं एक छोटा सा संसार है, एक दूसरे महान देश से जो खुद भी एक छोटा सा संसार है आया हूँ। दोनों की जड़े अतीत मे बहुत गहरी चली गयी हैं। इतिहास के आरम्भ से ही दोनों युग-युगान्तर में, विचार और

संस्कृति की अगणित बाह्य धाराओं को ग्रहण करते रहे हैं और उन पर अपने शक्तिशाली व्यक्तित्व की छाप डालकर उन्हें अपने रंग में रँगते रहे हैं।.........चीन और भारत मे हुए नये क्रान्तिकारी परिवर्तन, विषय वस्तु की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी एशिया की नयी शक्ति के प्रतीक हैं।.........."

"चीन और भारत का प्रभुता सम्पन्न देशो के रूप में उदय, तथा एशिया के अन्य देशों को प्राप्त स्वतंत्रता ने इस प्राचीन महाद्वीप का नकशा ही बदल डाला है। शक्तियों का वह पुराना संतुलन जिसके कारण एशिया पराधीन था, समाप्त हो चुका है और पीड़ा एवं संघर्ष के बीच धीरे-धीरे एक नया संतुलन पैदा हो रहा है।"

"आज विश्व को एक महत्वपूर्ण चुनाव करना है—शान्तिपूर्ण प्रगति या युद्ध—इनमे से एक को उसे चुनना होगा। यह युद्ध पुराने तरह के युद्धो मे न होगा बल्कि उससे बहुत अधिक बुरा तथा हानिकर होगा। यह हमारी पूरी सभ्यता को नष्ट कर सकता है और मानव को पशु स्तर-तक गिरा सकता है।"

"युद्ध को टालना ही काफी नहीं है। हमे युद्ध को जन्म देनेवाले कारणो को भी समाप्त करना है और शान्ति तथा सद्भावना के वातावरण को सक्रिय रूप से बनाना है।.........हमें विरोध के इस चक्र से बाहर निकल कर अहिंसात्मक, शान्तिपूर्ण तथा मैत्रीपूर्ण सहयोग के आधार पर एक नया ससार बनाने का प्रयत्न करना होगा—एक ऐसा संसार जिसमे एक देश पर दूसरे देश का, एक जाति अथवा वर्ग पर दूसरी जाति अथवा वर्ग का न तो शासन होगा न शोषण।"

"आज बड़े-बडे राष्ट्र एक दूसरे के विरुद्ध हैं।... ....लोग निःशस्त्रीकरण की बात करते हैं, लेकिन प्रत्येक राष्ट्र अपनी सैन्यशक्ति बढ़ा रहा है। युद्ध के नये एवं भयानकतम हथियार बनाये जा रहे हैं। यह शान्ति का रास्ता नही है। हमें यह मान लेना चाहिए कि शान्ति-स्थापन का संसार मे केवल एक ही तरीका है, वह है सहअस्तित्व का, सहयोग का,

और अपनी इच्छानुसार रहने के प्रत्येक राष्ट्र के अधिकार को स्वीकार करने का।''''''इसमे कितनी भी कठिनाइयाँ क्यो न हों, हमें इसी पथ का अनुसरण करना चाहिए।"

"मै आपके पास शान्ति और सद्भावना का दूत बनकर आया हूं। मैने यहाँ शान्ति और सद्भावना को मूर्त देखा है। मुझे अपने चारों ओर ऐक्य का अनुभव हो रहा है। सुखद भविष्य मे मेरा विश्वास और दृढ़ हो गया है। भारत और चीन मिलकर विश्व में शान्ति-स्थापित करने में सफल हों, यह मेरी कामना है।"

चीन के परराष्ट्र सम्बन्ध पर लिखा गया भावी इतिहास भारत के इस सहयोग के उल्लेख के बिना पूर्ण न हो सकेगा। भारत के सहयोग से सम्बन्धित विवरण मे कदम-कदम पर नेहरूजी के नाम का उल्लेख करना इस महत्वपूर्ण इतिहास-लेखक के लिए अनिवार्य सा हो जायेगा, क्योकि भारत-चीन के पारस्परिक सम्बन्ध के निरूपण मे नेहरू जी के योगदान मे विशिष्टता है। यह नैतिक मान्यताओं, इतिहास की शिक्षा और मानव समाज के हित की शिक्षाओं के सही मूल्यांकन पर आधारित है। चीन के जन-नेताओं ने स्वय यह महसूस किया है। इसकी आवश्यकता तब तक महसूस की जाती रहेगी जब तक मानव-समाज कायम रहेगा, और उसके नियमन, नियंत्रण तथा राष्ट्र की व्यवस्था की आवश्यकता महसूस की जाती रहेगी।

सोवियत रूस और पं० नेहरू

जून सन् १९५५ में पं० नेहरू की रूस-यात्रा का समाचार सुनकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। सफेद बालों तथा झुर्रीदार चेहरे से युक्त गंजी खोपड़ी वाले सभी देश के राजनीतिज्ञ सिर हिला हिला कर अपनी बँधी हुई विचार-शैली पर कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगे। पूर्वी तथा पश्चिमी देश आशा तथा आशंकाओं से युक्त अटकल बाजियाँ लगाने लगे। कुछ ने सोचा भारत की नीति बदल रही है, कुछ ने कहा भारत रूस और चीन का पिछू हो साम्यवादी गुट्ट से गठबंधन करना चाहता है। किन्तु कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और परिस्थिति का अध्येता तथा निष्पक्ष आलोचक यह बतला सकता है कि भारत नहीं, अपितु रूस की भारत के प्रति सशंक तथा संदेहात्मक दृष्टि में परिवर्तन हुआ है, जिसका यह शुभ परिणाम है कि दोनों सशक्त पड़ोसी राज्य मित्रवत् एक दूसरे के नजदीक आ रहे हैं।

आज से सात वर्ष पूर्व रूस के प्रमुख समाचार-पत्र भारत और भारत की नीति के विरुद्ध अपने मत प्रकट करते थे। रूस की शिक्षित जनता तथा उसके नेताओं के विचार में, "भारत का तत्कालीन आर्थिक विकास कृत्रिम और भ्रष्ट था, तथा जानबूझ कर भड़काने वाले मतभेदों के फल स्वरूप उसका (भारत का) राजनीतिक जीवन अस्त-व्यस्त था। भारत में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना और स्वतंत्र परराष्ट्र तथा गृह-नीति निर्धारित करने का उसका कार्य बाह्य शक्तियों के प्रभाव से संचालित था।" उनके ये विचार, दक्षिणी-पूर्वी-एशिया-युवक-सम्मेलन में भाग लेने वाले एक रूसी युवक के. रम के प्रमुख पत्र 'न्यू टाइम्स' में, अप्रैल १९४८ में प्रकाशित

'भारत मे दो सप्ताह' शीर्षक एक लेख के निम्नलिखित अंशो मे व्यक्त उद्गारों से और भी स्पष्ट हो जाते हैं। "बृटिश शासक भारत से 'हट गये' हैं। उन्होंने भारत और पाकिस्तान में 'तथाकथित 'राष्ट्रीय नेताओं' को 'सत्ता हस्तान्तरित' कर दी है; किन्तु विदेशी साम्राज्यवादियों ने भारत की नीति, आर्थिक व्यवस्था और उद्योग पर पूरा नियंत्रण रखा है।" उनके विचारानुसार भारत की कोई अपनी स्वतंत्र आर्थिक नीति तथा राजनीतिक दृष्टिकोण न था। इतना ही नही सोवियत रूस की भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के सम्बन्ध में भी भ्रामक तथा नितान्त गलत धारणा थी। यहाँ तक कि रूसी विश्व-कोषे (Encyclopedia) मे भी उनके सम्बंध में ये आधार हीन बातें प्रकाशित हो चुकी थीं, कि गाधीवाद के प्रतिक्रिया-वादी सिद्धान्तों का प्रणेता गाधी साम्राज्यवादियों का पिट्ठू और पूँजीपतियो का मित्र है; तथा जब भारत मे जन-आन्दोलन ने क्रांतिकारी-आन्दोलन का रूप धारण किया, इस 'तथाकथित' गाधी ने जनता के साथ विश्वास-घात कर उसके विरुद्ध साम्राज्यवादियों का साथ दिया। आज इन विचारों का भ्रामक जाल रूसियों के मस्तिष्क से छिन्नभिन्न हो गया है। वे अपनी भयंकर गलती महसूस करने लगे हैं। जिन गाधी जी के सम्बंध मे ऐसे निम्नकोटि के विचार प्रकट कर भारत की आत्मा का अपमान किया गया था उन्हे सुधारा जा रहा है। आज रूस के समाचार-पत्रों एवं नेताओं ने एक स्वर से गाधी जी को प्रगतिशील नेता मानते हुए, 'उन्हें अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष करने वाले लोकतत्र वादी' महामानव के रूप में स्वीकार कर लिया है। वे एक स्वर से कह रहे हैं, 'प्राच्य के सम्बन्ध मे सोवियत विशेषज्ञों के पुराने दृष्टिकोण पर पुनः विचार किया जाना चाहिए।' यह इस बात का प्रमाण है कि रूस स्वय लौह पर्दे से बाहर आकर, और वस्तु-स्थिति को अपनी आँखों से देखकर वास्तविकता को स्वीकार करने लगा है। ५ जनवरी के 'न्यू टाइम्स' में प्रकाशित 'भारत की प्रगति के ५ वर्ष' शीर्षक लेख मे उल्लिखित बातों को देखकर भारत के सम्बन्ध मे उनकी युगकारी परिवर्तित मनोवृत्ति की

ओर इंगित किया जा सकता है, "एशिया और विश्व में शान्ति बनाये रखने मे भारत के लोगों की गहरी दिलचस्पी है।........विशिष्ट राजनीतिज्ञ जवाहरलाल नेहरू ('तथाकथित राष्ट्रीय नेता' नहीं) के नेतृत्व मे अपने राष्ट्रीय हितों के पक्ष मे काम करते हुए सरकार, न केवल दूसरे देशों द्वारा शान्ति की दिशा में उठाये गये अगले कदम का समर्थन करके, वल्कि स्वयं शान्ति को वढ़ाने के उपायों के सम्बंध में अगला कदम उठा कर शान्ति की नीति का अवलम्वन कर रही है।" सन् १९४८ में रूसी जिन्हें 'तथाकथित राष्ट्रीय नेता' कहकर सम्वोधित करते थे, आज उनके पथप्रदर्शक गाधी जी तथा पं० नेहरू को वे 'विश्वशान्ति के प्रतिनिधि' तथा 'प्रगतिशील' कहते नहीं अघाते।

अव हमे देखना चाहिए कि कुछ वर्ष पूर्व भारत के प्रति रूस की भ्रामक तथा असत्य वात फैलाने की इस नीति तथा दृष्टिकोण का क्या वास्तविक कारण तथा तात्पर्य था, एवं किन विशिष्ट परिस्थितियों ने इस विषाक्त वातावरण को छिन्न-भिन्न करने मे सहायता दी। यह समझने के लिये हमे तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे भारत के कार्यों तथा उसकी नीति एवं उससे उत्पन्न प्रतिक्रिया का सिंहावलोकन करना होगा। सर्वतंत्र स्वतंत्र गणराज्य भारत की स्थापना के वाद भी उसके राष्ट्र मंडल (Common. wealth) से सम्बन्ध वनाये रखने के निश्चय ने; पं० नेहरू के १९४९ मे अमेरिका पदार्पण ने; तथा कोरिया के सम्बंध मे आरम्भ में उनकी रूस से सीधी मुठभेट आदि ने, उसे (रूस को) यह विश्वास दिला दिया कि भारत परोक्ष रूप से पूँजीवादी गुट्ट के साथ है। सयुक्त राष्ट्र संघ मे आक्रमणकारी उत्तरी कोरिया के विरुद्ध प्रस्तुत शान्ति-भंग के दोषारोपण के प्रस्ताव का भारत द्वारा समर्थन, तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने, जिसमे भारत ने हिस्सा लिया था, रूस की इस धारणा को और भी दृढ़ किया। रूसी दूध से पले कम्युनिस्ट तथा उनके समाचार-पत्रों ने पं० नेहरू पर भारत की किस्मत का सौदा करने तक का दोषारोपण किया। हिन्दुस्तान की 'बूर्जुआ तथा निम्न कोटि की,' 'सड़ास से युक्त' सस्कृति तथा सभ्यता के

'गंदे कीचड़' से बचने की गरज से, पजामा उठाकर चलने वाले वहाँ के पाक दामन कम्युनिस्टों ने भी, जो मास्को की 'उच्च संस्कारयुक्त' रूस से लाल संस्कृति को आदर्शोत्तम तथा ग्राह्य समझते थे, तथा जिनके दिल यहाँ और जिगर 'सच्चे स्वतंत्री' मास्को के 'स्वच्छ वातावरण' में विचरण करते थे, वस्तुस्थिति को अंधकार में देखते हुए और भारत की वास्तविक नीति तथा सही स्थिति का जिक्र न करते हुए रँगी घटनाओं के प्रचारार्थ जो विष उगला उसने भी रूस को भारत के विरुद्ध गलत धारणा बनाने के लिए प्रेरित किया।

स्टालिन के शासन-काल तक रूस के सोचने और समझने का एक खास तरीका था। मार्क्सवाद में उसकी कट्टर आस्था ने रूढ़िवाद का रूप धारण कर लिया था। उसकी समझ में मार्क्सवाद मानव मात्र की सभी समस्याओं का समाधान न होकर स्वयं साध्य हो गया था। यही कारण था कि किसी देश द्वारा विश्व-शान्ति तथा मानव-कल्याण के लिए पकड़े गये किसी भी दूसरे रास्ते को रूस संदेह तथा घृणा की दृष्टि से देखता था, और उसे विश्व की सर्वहारा जनता की दृष्टि में नीचे गिराने में वह कोई प्रयत्न बाकी न रखता था। भारत जो गांधीवादी नीति का अवलंब लेकर उस महान लक्ष्य तक पहुँचना चाहता था, उसके साथ भी रूसी सरकार इसी नीति से पेश आयी। किन्तु स्टालिन की मृत्यु के पश्चात् यह वातावरण तथा दृष्टिकोण छिन्न-भिन्न हो गया।

इस विचार-परिवर्तन का दूसरा कारण था भारत की तटस्थ तथा शान्तिमय वैदेशिक नीति, जिसने अंत में सशंक राष्ट्रों को अपनी सद्भावना तथा सदुद्देश्य का कायल करा दिया। भारत ने विश्व, विशेषतः एशिया के संघर्षरत दलित राष्ट्रों की उन्नति तथा स्वतंत्रता का पक्ष लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जिस प्रकार अपनी सशक्त आवाज बुलंद की तथा उसने कोरिया के प्रश्न पर, जब कि विश्व-शान्ति खतरे में थी, संसार को युद्ध की विभीषिका से बचाने के लिए जो अद्भुत शान्तिमय प्रयत्न किया, उसके आशा पूर्ण प्रतिफल ने सम्पूर्ण विश्व के शान्ति-प्रेमी राष्ट्रों की भाँति रूस

को भी इस बात का कायल करा दिया कि भारत सही माने में शान्ति का रक्षक है, तथा वह किसी भी शक्ति गुट के साथ गठबंधन नहीं करना चाहता। इसके अतिरिक्त जुलाई १९५३ की कोरिया-युद्ध-विराम-संधि के अनुसार भारत ने बन्दी-प्रत्यार्पण-आयोग के अध्यक्ष-पद से जिस दायित्व तथा ईमानदारी से अपना कार्य पूर्ण किया उसने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसके प्रति और भी विश्वास उत्पन्न कर दिया। पुनः जुलाई सन् १९५४ में जेनेवा-सम्मेलन में भाग लेने का अधिकार न रखते हुए भी भारत ने कोरिया और हिन्दचीन में शान्ति के स्थापनार्थ जो प्रयास किया उससे भी रूस प्रभावित हुआ। मनीला-संघ का भारत द्वारा एशिया के हित के लिए खतरनाक समझकर विरोध भी चीन तथा रूस ने अत्यधिक पसन्द किया। इसके पश्चात् नेहरू की चीन-यात्रा ने रूस के समक्ष उसकी स्थिति और भी स्पष्ट कर दी। चीन और भारत ने पंचशील के सिद्धान्त पर आधारित सह अस्तित्व के सिद्धान्त को मान्यता देकर एक दूसरे को मित्रता के बंधनों में आबद्ध कर लिया था। रूस एशिया में भारत के महत्व से भली भाँति परिचित था। वह यह जानता था कि भारत से सहयोग-प्राप्ति के लिए, तथा चीन और भारत का मैत्री-संबंध अधिक दृढ़ करने के लिए यह आवश्यक है कि रूस अपनी भारत के प्रति पूर्व-नीति में परिवर्तन करे। वह यह भी जानता था कि एशिया, प्रशान्त और सुदूर पूर्व के क्षेत्रों की समस्याओं को, जिससे युद्ध का खतरा उत्पन्न हो गया है, भारत की मध्यस्थता से हल किया जा सकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रूस तटस्थ भारत की मैत्री को विश्व-शान्ति के उद्योग में आवश्यक समझने लगा था, इसलिए उसकी ओर मैत्री का हाथ बढ़ाना उसके लिए स्वाभाविक था। ऐसी दशा में उसके लिए यह आवश्यक था कि वह अपने देश में भारत के सम्बन्ध में फैली भ्रान्त धारणाओं का पहले निराकरण करे तथा अपने दृष्टिकोण को बदले।

७ जून सन् १९५५ में रूसी प्रधान मंत्री के आग्रह पर भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरू मास्को के केन्द्रीय हवाई अड्डे पर पहुँचे। उनके

साथ उनकी पुत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी, परराष्ट्र मंत्रालय के सचिव श्री एन० आर० पिल्ले तथा सयुक्त सचिव श्री एम० ए० हुसेन थे। मास्को का केन्द्रीय हवाई अड्डा सोवियत संघ और भारत के गणतंत्र की राष्ट्रीय ध्वजाओं से सुशोभित था। रूस के प्रधान मंत्री श्री बुलगानिन, मंत्री मंडल के अन्य सदस्यों, सेना तथा शासन के सर्वोच्च अधिकारियों, प्रमुख सम्पादकों, गण्यमान्य व्यक्तियों तथा प्रेस-प्रतिनिधियों ने उनका भव्य स्वागत किया। भारतीय गणतत्र के राष्ट्रीय गान की गम्भीर ध्वनि के पश्चात् सोवियत संघ के राष्ट्रीय गान के भव्य तराने गूँज उठें। श्री बुलगानिन तथा पं० नेहरू ने 'गार्ड आफ आनर' का निरीक्षण किया। पं० नेहरू ने मित्रतापूर्ण हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "मै अपने को एक यात्री समझता हूँ और आपकी सरकार और जनता के लिए महान् शुभेच्छाएँ लिए हुए एक यात्री के रूप मे यहाँ आया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे आने से हमारे मित्रता के बंधन और दृढ़ होंगे।"

श्री बुलगानिन के पार्श्व में बैठे पं० नेहरू उस प्रासाद की ओर चले जहाँ मास्को में उनका आवास स्थित किया गया था। लेनिनग्राड राजमार्ग के दोनों ओर कतार बाँधे हजारों लोगो ने शान्ति के दूत पं० नेहरू का अभिनन्दन किया, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई सोवियत-भारत-मैत्री के सम्मान मे हर्ष-ध्वनि की, तथा भारत की जनता की समृद्धि एवं शान्ति के लक्ष्य की सफलता के लिए शुभकामनाये प्रकट कीं। गोर्की-मार्ग भी अत्यधिक जनाकीर्ण था। बहुतों के हाथ में फूलों के गुलदस्ते थे। सड़क के एक किनारे से दूसरे किनारे तक लगी बृहत् पताकाओं पर ये शब्द अंकित थे। 'भारत के प्रधान मंत्री श्री नेहरू का अभिवादन। स्वागतम्!'

उसी दिन रूस के प्रमुख साम्यवादी पत्र 'प्रावदा' ने आगत अतिथि पं० नेहरू का अभिनन्दन करते हुए उनके तथा शान्ति प्रिय महान भारत के मित्रतापूर्ण राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकलापो पर प्रकाश डाला। उसने गौरवमय भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालते हुए, भारतीय

जनता की सोवियत उन्नति और प्रगति के प्रति व्यक्त सहानुभूति तथा संवेदना के लिए कृतज्ञता यापन किया था, तथा बतलाया था कि विश्व-शान्ति तथा मानव-कल्याण के सम्बन्ध में दोनों राष्ट्रों के उद्देश्य एक से हैं। अंत में उसने यह विश्वास प्रकट किया था कि भारत के प्रधान मंत्री की सोवियत-यात्रा दोनों देशों के बीच मैत्री सम्बन्ध और भी सुदृढ़ बनाने में योग देगी तथा विश्व-शान्ति के लक्ष्य के लिए एवं सारे संसार में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने में हितकारी सिद्ध होगी।

८ जून को पं० नेहरू ने रूसी प्रधान मंत्री श्री बुलगानिन से, तत्पश्चात् अन्य उच्च साम्यवादी नेताओं से राजनीतिक वार्ता की। उन्होंने वर्तमान सोवियत रूस के प्रणेता लेनिन तथा स्टालिन की समाधि पर जाकर पुष्पाञ्जलि अर्पित की। उसी दिन उन्होंने मास्को का भव्य क्रेमलिन देखने के पश्चात् स्टालिन मोटर-कारखाना भी देखा।

९ जून को सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के अध्यक्ष श्री वोरोशिलोव से वार्तालाप करने के पश्चात् उन्होंने वायुयान बनाने के एक कारखाने का निरीक्षण किया। आज ही उन्होंने श्री वोरोशिलोव तथा श्री बुलगानिन द्वारा आयोजित भोज में भी भाग लिया। इस अवसर पर वहाँ के उच्च अधिकारी, राजनीतिज्ञ तथा पत्रकार उपस्थित थे। उन्होंने सोवियत रूस की विशाल कृषि, सिंचाई, जल-विद्युत-स्टेशनों आदि का तथा उनमें प्रयुक्त होने वाले आधुनिकतम यन्त्रो का भी निरीक्षण किया।

१० जून को पं० नेहरू ने मास्को नगर, बाल स्कूलों, भू गर्भ-स्थित रेलवे स्टेशनों आदि का परिदर्शन किया। वहाँ से वे मास्को-विश्वविद्यालय पहुँचे। वहाँ के वातावरण तथा सर्व सम्पन्न अध्ययनालयों को देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। शिक्षकों तथा विद्यार्थियो को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था, "आपसे मिलकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। आपका देश अति विशाल है; लेकिन आपके मस्तिष्क और हृदय की महानता देश की विशालता से भी बड़ी है।"

पं०नेहरू सदल-बल ११ जून को स्टालिनग्राड पहुँचे। वहाँ के उच्च

नेता तथा जनता के हार्दिक अभिनन्दन के बीच अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "स्टालिनग्राड शब्द और उसकी कीर्ति से विश्व परिचित है। यह वही नगर है जहाँ की जनता ने अपनी वीरता न सिर्फ युद्ध में वरन् शान्ति-काल में भी दिखलाई है।......मैं अजित एवं विजयी स्टालिनग्राड को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने यहाँ आया हूँ।" मास्को की भाँति यहाँ भी उन्होंने रूसी आर्थिक प्रगति के निर्माण में सहायक तथा तत्पर क्षेत्रों तथा कारखानों का निरीक्षण किया।

पं० नेहरू वायुयान से यूक्रेन पहुँचे जहाँ उनका सर्वोच्च अधिकारियों ने हार्दिक स्वागत किया। इसके अतिरिक्त पं० नेहरू ने सिम्फेरोपोल, क्रीमिया, आलूप्ता आदि प्रदेशों का भी भ्रमण किया। आर्तेक के मासूम बच्चों ने उन्हें विशेष रूप से मोहित किया। याल्टा में पहुँच कर उन्होंने मजदूरों के अनेक स्वास्थ्य-सदन भी देखे।

१३ जून को पं० नेहरू सदल-बल तबिसीली पहुँचे। हवाई अड्डे पर वहाँ की सरकार के उच्च अधिकारियों, पत्रकारों तथा नागरिकों ने उनका स्वागत किया। पं० नेहरू ने अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए कहा, "आपके इस हार्दिक स्वागत से मैं भारत और सोवियत संघ की जातियों के बीच समानता का अनुभव करता हूँ।" रुस्तवी नगर में पं० नेहरू ने विशाल औद्योगिक कारखाने देखे। उन्होंने जार्जियाई-जनतंत्र की मंत्री परिषद् के अध्यक्ष जावाखिश्विली के निमंत्रण पर अपने सम्मान में आयोजित एक भोज में भी भाग लिया।

सोवियत राष्ट्र के इन भव्य प्रान्तों तथा नगरों का निरीक्षण करने के पश्चात् पं० नेहरू ने तुर्कमेन, ताशकंत, उजबेक, समरकंद, अल्ताई, लेनिनग्राड आदि प्रान्तों तथा नगरों का भी निरीक्षण किया। हर एक स्थान पर कृषि, नद-घाटी योजनायें, जल-विद्युत-संचालन प्रधान औद्योगिक कारखानों आदि का परिदर्शन करने में उन्होंने विशेष दिलचस्पी दिखलायी। उन्होंने सोवियत किसान, मजदूर तथा साधारण जनता की वास्तविक स्थिति का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने का प्रयत्न किया। हर स्थान पर उनका तथा

भारत के विश्व-शान्ति के प्रयत्नों का हार्दिक स्वागत हुआ। एक स्थान पर एक बूढ़े कृषक ने भारत के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा था, "हम जानते हैं कि भारत की जनता और उसकी सरकार युद्ध नहीं चाहती तथा विश्व-शान्ति के लिए प्रयत्नशील है। हम भी युद्ध नहीं चाहते, हम उन्हें प्यार करते हैं जो शान्तिप्रिय हैं।"

३० जून को पं० नेहरू रूस का परिदर्शन करने के पश्चात् सदल-बल मास्को लौट आये। २१ जून को मास्को के सबसे बड़े डिनामो स्टेडियम में आयोजित सोवियत-भारत-मैत्री-सभा में मास्को की अपार श्रमिक जनता तथा बुद्धिजीवियों की हर्षध्वनि के बीच उन्होंने अपना संक्षिप्त भाषण दिया, "·········आपके हार्दिक प्रेम और स्वागत के लिए हम असीम कृतज्ञता प्रकट करते हैं।······हम इस महान् देश की जनता के प्रति भारतीय जनता का अभिवादन एवं शुभेच्छायें प्रकट करने आये थे। हम अपने देश और अपनी जनता के प्रति आपके प्रेम और सद्भावों से लदे हुए वापस जा रहे हैं।"

"·········यद्यपि हमने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में अपने स्वातंत्र्य-संघर्ष में एक भिन्न मार्ग का अनुसरण किया है, फिर भी हम लेनिन की प्रशंसा करते हैं और उनके दृष्टान्त से प्रभावित हुए हैं। हमारी पद्धतियों में इस अंतर के बावजूद भी, हमारी जनता के भाव सोवियत संघ की जनता की तरफ कभी भी अमैत्रीपूर्ण नहीं रहे।······ ···"

"हम जनवाद एवं स्वतंत्रता में, तथा विशेषाधिकार के उन्मूलन में विश्वास रखते हैं। हमने अपने देश में शान्तिपूर्ण पद्धतियों द्वारा समाजवादी ढग से समाज के निर्माण करने का लक्ष्य अपने सामने रखा है।"

"·········भारत तथा चीन की लोक सरकार ने······पंचशील के सिद्धान्त स्वीकार किये हैं। ये सिद्धान्त हैं; एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता एवं प्रभुसत्ता के प्रति सम्मान, अनाक्रमण, एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप, समानता, पारस्परिक लाभ तथा शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व।·····सोवियत-सरकार ने भी इसे मान लिया है। इसमें सन्देह नहीं

है कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय आचरण सम्बन्धी ये सिद्धान्त संसार के सभी देशों-द्वारा स्वीकृत एवं कार्यान्वित हो जायँ, तो बहुतहद तक भय और आशं-कायें दूर हो जायँगी जिनकी काली छायाएँ संसार पर पड़ रही हैं।"

"यदि इस दुनिया को प्रगति करना है, वस्तुतः यदि इसको जिन्दा रहना है तो राष्ट्रों के लिए शान्ति का प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। हमारे विचार में शान्ति का अर्थ केवल युद्ध से विरत रहना नहीं है, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की ओर सक्रिय एवं क्रियात्मक रुख अपनाना, समझौता-वार्ता की विधियों द्वारा अपनी समस्याओं के सुलझाने का प्रयास करना, तथा इसके बाद विविध प्रकार से राष्ट्रों के बीच बढ़ते हुए सहयोग से शान्ति स्थापित करना है।......युद्ध, युद्ध के खतरे, या युद्ध की अबाध तैयारियों से शान्ति कभी भी स्थापित नहीं हो सकती। भय को दूर करने और शान्ति को सुनिश्चित बनाने के लिए निःशस्त्रीकरण आवश्यक है।"

"हम एक जीवन्त विकासशील संसार में रहते हैं, जो नूतन आवि-ष्कार एवं नूतन विजय के पथ पर बढ़ता जा रहा है, जहाँ मानव को अधिकाधिक शक्ति प्राप्त है। हम आशा करते हैं कि यह शक्ति, बुद्धिमानी एवं सहिष्णुता द्वारा नियंत्रित एवं परिचालित होगी और हर राष्ट्र सामूहिक हित के लिए योग दान करेगा।"

"मानव जाति के हित के लिए हमारे देश की जनता तथा संसार के अन्य देशों के बीच मैत्री एवं सहयोग चिरजीवी हो।"

पं० नेहरू के वक्तव्य के पश्चात् सोवियत-मंत्री-परिषद् के अध्यक्ष श्री बुल्गानिन ने सोवियत-सरकार और सोवियत-जनता की ओर से भारत, भारतीय जनता तथा भारत के राष्ट्रनायक का अभिवादन किया, तथा भारत के विकास एवं समृद्धि की सफलता के लिए शुभकामनायें प्रकट कीं।

नेहरू जी ने इसी दिन सोवियत संघ के मंत्री-परिषद् के आर्थिक-आयोग के अध्यक्ष से बातें कीं, तथा बाडुङ्ग सम्मेलन में भाग लेने वाले देशों के मास्को-स्थित कूटनीतिक प्रतिनिधियों द्वारा आयोजित भोज में भी शरीक हुए।

२२ जून को सोवियत संघ की मंत्री-परिषद् के अध्यक्ष श्री बुल्गानिन ने क्रैमलिन-प्रासाद में भारतीय गणतंत्र के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल से वार्ता की, तथा उसी दिन उन्हें एक भोज भी दिया, जिसमें प्रख्यात सोवियत राजनीतिज्ञ, पत्रकार तथा नेता उपस्थित थे। यहीं दोनों देशों के अधिनायकों ने मैत्री पूर्ण वातावरण में एक संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर किया। इस वक्तव्य में विश्व की तात्कालिक राजनीतिक घटनाओं पर दृष्टिपात करते हुए, तथा पंचशील के सिद्धान्तों पर आस्था प्रकट करते हुए दोनों देश के प्रधान अधिकारियों ने उसे अपनी राष्ट्रीय नीति में स्थान देने की प्रतिज्ञा की थी। उसमें यह विश्वास प्रकट किया गया था कि ये सिद्धान्त जितने अधिक राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत किये जायेंगे, शान्ति का क्षेत्र उतना ही विस्तृत होगा, राष्ट्रों में पारस्परिक विश्वास उतना ही बढ़ेगा और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का मार्ग उतना ही प्रशस्त होगा। इस प्रकार शान्ति का जो वातावरण पैदा होगा, उसमें अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ शान्तिपूर्वक वार्ता और सुलह–समझौते से हल की जा सकेंगी।

इस प्रकार पं० नेहरू द्वारा विश्व-शान्ति तथा मैत्री के सदुद्देश्य से की गई संसार की यह प्रदक्षिणा कुशलतापूर्वक पूर्ण हुई। सचमुच आज जन-आस्था प्राप्त पं० नेहरू विश्व के ऐसे महान नेता हैं, जो विनाश के मुख पर खड़े विश्व को स्वर्गीय शान्तिदूत की भाँति जीवन का सन्देश दे रहे हैं। तिमिराच्छन्न विश्व के भाग्याकाश में वे शान्ति के शशि की भाँति शीतल किरणें बिखेर रहे हैं। वे विश्व के महान देशों की बिखरी हुई संहारक शक्तियों को मानवता की विजय के लिए, शान्ति पथ पर चलने का सफल संदेश देने के लिए, अमेरिका गये, रूस गये, चीन गये, तथा विश्व के अन्य भागों में अपना संदेश लेकर पदार्पण किया। उनके सत् प्रयत्नों का ही परिणाम है कि युद्ध के प्रलय की घटायें छटने लगी हैं। दिनोत्तर आकाश स्वच्छ होता जा रहा है, तथा शान्ति की आभा प्रकाशमनी होती जा रही है।

———

नेहरू-सरकार की वैदेशिक नीति

वैदेशिक नीति से तात्पर्य किसी राष्ट्र की उस नीति से होता है जिसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय जगत में वह अन्य सार्वभौम सत्ता युक्त (Sovereign) राष्ट्रों से अपना कूटनीतिक सम्पर्क निर्धारित करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर अपना मन्तव्य प्रकाशित करता, अथवा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसमें हस्तक्षेप करता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के प्रधान मन्त्री तथा परराष्ट्र मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने निम्नलिखित शब्दों में भारत की वैदेशिक नीति के प्रधान तत्वों का निर्देशन किया, "भारत दूसरे राष्ट्रों के ऊपर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करना नहीं चाहता। हमारा प्रधान उद्देश्य सुव्यवस्थापूर्ण ढग से अपनी समस्याओं का हल करना, तथा यदि सम्भव हो सके तो दूसरो की सहायता और उनके साथ सहयोग करना है। ऐसा करते समय हम यह प्रयत्न करेंगे कि हम अविवेक और क्रोध के प्रवाह मे न बह जाये तथा शान्तिमय प्रस्तावों का वातावरण बनाये रखें। भारत की वैदेशिक नीति का आधारतत्व विश्व के सभी राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण सबंध बनाये रखना है।"

यही कारण है कि आज भारत विश्व के अधिकतम राष्ट्रों से अपना मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने मे सफल हुआ है। दोनों ही शक्ति गुट उसे शान्ति का सच्चा रक्षक तथा मानव-कल्याण का इच्छुक मानकर, कम से कम प्रत्यक्ष रूप मे, उसके प्रति मित्रता प्रदर्शित करते हैं। हमारे राजदूत करीब-करीब विश्व के सभी प्रभुसत्ता युक्त देशों में हैं तथा उनके

राजदूत भारत में हैं। हमारा सौहार्दपूर्ण सम्पर्क अमेरिका और बृटेन से है। हमारा मित्रतापूर्ण सम्बन्ध साम्यवादी चीन तथा लाल रूस से भी है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पं० नेहरू का कुछ दिवसों पूर्व इन देशों के राष्ट्र-नायकों और उनकी कोटि-कोटि जनता द्वारा साग्रह आमन्त्रण तथा अभूतपूर्व भव्य स्वागत, एवं शान्ति के अग्रदूत के रूप में उनके द्वारा विश्व-शान्ति के हेतु उपस्थित निस्वार्थ पंचशील नीति का संसार द्वारा समर्थन तथा ग्रहण है। आज दुनिया के सभी देश हमें मित्रवत् देखते हैं। हमारी किसी भी राष्ट्र के प्रति विरोधी भावना नहीं है। हम सभी राष्ट्रों की उन्नति की कामना करते हैं। जब तक कोई राष्ट्र हमारे स्वार्थों के हनन का प्रयत्न नहीं करेगा हमारा उससे ऐसा ही सम्बन्ध बना रहेगा।

यद्यपि भारत की वैदेशिक नीति की रूप-रेखा में अपनी बुद्धि की तूलिका से रंग भरने का कार्य, स्वतंत्रता के पश्चात् पं० नेहरू ने ही किया था, किन्तु उसका प्रस्फुटन और उन्नयन बहुत पहले ही भारतीय इतिहास के पृष्ठों और कांग्रेस के रंग-मंच से हो चुका था। स्वयं नेहरू जी के ही कथनानुसार, "यह नीति हमारे अतीत तथा वर्तमान इतिहास, हमारे राष्ट्रीय संघर्ष तथा उन विभिन्न आदर्शों के समूह से प्रवाहित हुई है, जिन्हें हमने समय-समय पर घोषित किया था।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारत की अपनी कोई अलग वैदेशिक नीति नहीं थी। उसकी वैदेशिक नीति लंदन-स्थित बृटिश राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षा के अनुरूप उन्हीं द्वारा निर्धारित होती थी। इसमें शक नहीं कि समय-समय पर कांग्रेस के मंच से इस बात का संकेत अवश्य हो जाया करता था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की किस प्रकार की परराष्ट्र नीति होगी, यद्यपि उस समय उन संकेतों की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया जाता था। स्वतंत्रता के अभ्युदय के पश्चात् महान भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत तथा उसकी अस्थिर घटनाओं से अपना संपर्क स्थापित किया। उसने विश्व के अन्य प्रभुसत्ता

युक्त स्वतंत्र राष्ट्रो से अपना कूटनीतिक दौत्य सम्बन्ध भी स्थापित किया, तथा गाधीवादी आधारभूत सिद्धान्तो पर अपनी वैदेशिक नीति का निर्माण किया। सितम्बर १९४६ मे जब अन्तःकालीन सरकार बनी थी तभी पं० नेहरू को उनके अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के ज्ञान के कारण परराष्ट्र विभाग का कार्य सौंपा गया था। भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के पश्चात् भी प्रधान मन्त्री के दायित्व के साथ-साथ परराष्ट्र मन्त्री का कार्य-भार भी उन्होंने ही सम्हाला।

किसी भी राष्ट्र की वैदेशिक नीति को सक्षेप में ही पूर्णतः वर्णित कर देना अत्यन्त कठिन कार्य है। इस गतिशील ससार मे किसी राष्ट्र—जो स्वयं सम्पूर्ण विश्व का एक एकाई मात्र है—की वैदेशिक नीति भी हमेशा स्थिर, एक ही तरह के रूढ़िवादी सिद्धान्तों से पोषित रह कर नहीं पनप सकती। दुनिया की बदलती समस्याओं तथा नये वातावरण से उत्पन्न प्रक्रियाओं के बीच अपना राष्ट्रीय हित सतुलित बनाये रखने के लिए उसे आवश्यकतानुसार अपना रूप परिवर्तित करते रहना पडता है।

प्रधान मन्त्री-पद से समय-समय पर दिये गये पं० नेहरू के भाषणो में भारत की वैदेशिक नीति के आधारतत्वों का निर्देशन हुआ है। सत्य पर आधारित हमारी परराष्ट्र नीति के ये आधारतत्व काफी स्पष्ट रहे हैं। पं० नेहरू ने साफ शब्दों मे कहा है कि भारत की वैदेशिक नीति का उद्देश्य अपने भरसक विश्व के अन्य राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुव्यवस्था के लिए प्रयत्न करना है। उनका विचार है, "विश्व की मुक्ति, युद्ध, घृणा या क्रोध से नहीं, बल्कि शान्ति से होगी, क्षमा से होगी, दया से होगी, अहिसा से होगी।" भारत मानव मात्र के कल्याण के लिए इन आदर्शों की प्राप्ति तथा पूर्ति के लिए प्रयत्नशील है तथा हमेशा रहेगा।

किन्तु इस कथन का यह तात्पर्य कदापि न समझना चाहिए कि भारत अन्याय तथा अत्याचार का सशक्त विरोध नहीं करेगा। शान्तिपूर्ण

ढग से विरोधी तत्वो का निवारण करने मे असफल होने पर भी शान्ति की लीक पीटता हुआ वह चुपचाप अपने आत्मसम्मान तथा अधिकारो की निर्मम बलि खड़ा देखता न रहेगा। "स्वतन्त्रता के खतरे में पड़ने पर, न्याय के संकटापन्न होने पर, और आक्रमण की दशा मे न तो हम तटस्थ रह सकते हैं, न रहेंगे।" अतः यदि कोई देश अपने शत्रुतापूर्ण कार्यों द्वारा भारत को हानि पहुँचाने अथवा उसे नीचा दिखलाने का प्रयत्न करेगा तो वह कभी भी हाथ पर हाथ धरे चुपचाप कायरो की भाँति बैठा न रहेगा। भारत और पाकिस्तान के अमित्रतापूर्ण सम्बन्ध तथा घटित कार्यकलापों से हमारी यह नीति पूर्णतः स्पष्ट है। भारत पाकिस्तान से बराबर सहभ्राता की भाँति मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न करता रहा। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए कभी-कभी पं० नेहरू ने सीमोल्लंघन भी कर दिया, जिसके फलस्वरूप उन्हें अपने देश-भाइयो, मित्रों-सहयोगियों तथा समाचार पत्रों की कटु आलोचना भी सहन करनी पडी, फिर भी पाकिस्तानी नेताओं ने उनकी पुचकार का जवाब दुलत्ती से दिया। जनता की इच्छा के विपरीत भी पाकिस्तान ने जब काश्मीर की शस्य-श्यामला कुँआरी भूमि पर सैनिक-अत्याचार प्रारम्भ किया तब नेहरू-सरकार तथा भारत की जनता क्षुब्ध हो उठी। काश्मीर-सरकार की सहायता की प्रार्थना पर पं० नेहरू ने पाकिस्तान को अपने अनैतिक तथा बर्बरतापूर्ण कार्यों को बन्द करने की चेतावनी दी। उन्होंने काश्मीर को भारत के एक अग के रूप में स्वीकृत कर उसे सैनिक सहायता देने की माँग को स्वीकार किया। इस समस्या को लेकर वह आज भी विश्व मे व्यङ्ग बाणो का अडिग हो साहस पूर्वक सामना कर रहा है तथा शरणागत काश्मीर को हर तरह की मदद करने के लिए प्रस्तुत है। इससे यह प्रतिपादित होता है कि भारत की 'शान्ति और सुव्यवस्था की नीति' निष्क्रिय नहीं है, वह सकारात्मक है।

भारत साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा जातिगत विभेदों का विरोधी

है। हमारी इस नीति और भावना का उद्भव तथा विकास, सदियो के कटु स्वानुभाव के फलस्वरूप हुआ है। हम साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए इसलिए बाध्य हुए क्योंकि हम स्वयं बृटिश साम्राज्यवाद के शिकंजों मे जकड़े रहकर उसके भयानक कष्ट का अनुभव कर चुके हैं। स्वानुभव के फलस्वरूप हम यह भली-भाँति जानते हैं कि साम्राज्य-वादी राष्ट्र परतंत्र जाति का किस प्रकार शोषण करते तथा उसकी सस्कृति और सभ्यता को नष्ट कर उसे पतन की ओर ढकेलते हैं। परतंत्र राष्ट्र की जनता का चरित्रबल तथा नैतिकता गिर जाती है और वह पद-पद पर देश और विदेश मे अपमानित होती है।

आज भी भारत भूमि पूर्णतः उपनिवेशवाद से मुक्त नहीं हो पायी है। स्वतंत्रता के पश्चात् भी डच तथा फ्रेंच साम्राज्यवादी सत्ता भारत के अधिकृत प्रदेशों से तीव्र विरोध के पश्चात् भी अपने शासन का जूआ हटाने के लिए तैयार न थी। भारत-सरकार तथा उन प्रदेशों की जनता स्वतंत्रता के लिए शान्तिपूर्ण कोशिश करती रही। भारत के आदर्शों के शान्तिपूर्ण नैतिक तेज, जनता के असहयोग तथा शक्तिशाली राष्ट्रों के दबाव से फ्रेंच सरकार ने तो भारत स्थित फ्रेंच उपनिवेशो को भारत-सरकार को हस्तातरित कर अपना मित्रता पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखा। किन्तु दुनिया की बदलती मनोवृत्ति तथा जनता की अहिंसात्मक क्रान्ति ने भी अब तक डच सरकार की आँखे नही खोलीं। सत्ता मदान्ध गोआ-सरकार, अपने जन्मसिद्ध अधिकारों की प्राप्ति के लिए कटिबद्ध जनता को अपनी पाशविक शक्ति से आज कुचल डालना चाहती है, परन्तु सत्ता की कालिमा पर छाता हुआ सत्याग्रह का तेज कुण्ठित होने के स्थान पर और भी प्रखरतर होता जा रहा है। दुनिया की आँख बरबस इस तेज की ओर खिंची जा रही है। अपने आधारभूत शान्ति के सिद्धान्तों तथा अपने अपेक्षाकृत अल्प सैनिक साधनों के फलस्वरूप, मौखिक रूप से गोआ-सरकार की नीति की विरोधी होते हुए भी भारत-सरकार उसकी जनता को विशेष सहायता करने में असमर्थ है। गोआ

मे भारत तथा गोआ-स्थित भारतीयो की स्वार्थ रक्षा के अवलोकनार्थ भारत ने मिश्र को नियुक्त किया है।

भारत ने सिर्फ अपनी भूमि पर स्थित पर-सत्ता-आक्रान्त जनता के ही पक्ष मे नहीं, अपितु उन सभी पद-दलित राष्ट्रों की जनता के पक्ष में, जो अपने साम्राज्यवादी स्वामियों की अवांछित सत्ता को उतार फेकने मे सक्रिय हैं, आवाज बुलन्द कर नैतिक सहायता दे रहा है तथा उनकी मॉगो और कार्यों को मानवोचित बतलाते हुए उनका समर्थन कर रहा है। काग्रेस के ये विचार नये नहीं हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही वह इनका समर्थन करता रहा है।

इसी सिद्धान्त तथा मनोभावना की पूर्ति के लिए आज से पूर्व प्रथम महायुद्ध के अन्त के पश्चात् तिलक ने एक पत्र द्वारा १९१९ के शान्ति-सम्मेलन के अध्यक्ष (फ्रान्स के तत्कालीन प्रधान मत्री) के समक्ष उनकी कार्यवाहियों के विरोध मे भावी भारत की नीति प्रस्तुत की थी, "भारत अपने ईश्वर प्रदत्त साधनों से ही संतुष्ट है, दूसरे देशो के आन्तरिक कार्यकलापो में हस्तक्षेप को न तो वह प्रश्रय देता है और न उसकी वाह्य जगत के प्रति कोई महत्वाकाक्षा ही है। अपने विस्तृत क्षेत्रफल, विशाल साधनो तथा अपार जन-सख्या के बल पर ही वह एशिया की प्रधान शक्ति हो सकता है।"

स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत अपने इस पूर्व कथित सिद्धान्त से स्वार्थ हानि की सम्भावना होते हुए भी नहीं डिगा। जब चीन ने अपने प्राचीन स्वत्वों के अनुसार अवसर पाकर तिब्बत को बल पूर्वक अपने राज्य मे मिला लिया तब आर्थिक, प्रादेशिक, राजनीतिक हानि होते हुए भी भारत ने उसके अधिकार को ऐतिहासिक दृष्टि से न्याय पूर्ण होने के कारण प्रसन्नता पूर्वक मान्यता देना स्वीकार कर लिया। भारत के इस नैतिक त्याग से चीन अत्यधिक प्रभावित हुआ तथा वह प्राचीन-काल की भॉति फिर उसका प्रिय मित्र बनने का इच्छुक हो गया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत अपने इन आदर्शों से डिगा नहीं

और वह स्वयं अपनी भूमि पर स्थित तथा दुनिया के अन्य भागों में प्रचलित उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद का प्रबल विरोध कर रहा है। राष्ट्रनायक पं० नेहरू के कथनानुसार, "संसार में स्थायी शान्ति तभी स्थापित हो सकती है जब विश्व के समस्त राष्ट्र स्वतंत्र हो जायें एवं सभी जातियों को स्वतंत्रता और सुरक्षा प्राप्त हो।" यही नहीं, शान्ति की स्थापना तब तक नहीं हो सकती जब तक साम्राज्यवादी मनोवृत्ति सुख-पूर्वक साँस ले रही है। "शान्ति और साम्राज्य! मूल में ही एक दूसरे के विरोधी शब्दों का अनोखा मेल है।......मैं समझता हूँ कि जब तक साम्राज्यवादी विचार दूर न होगा तब तक हम इस संसार में शान्ति नहीं पा सकेंगे। जब तक साम्राज्य फूलते-फलते तथा शक्तिशाली रहते हैं; तब तक सम्भव है उनमें खुली लड़ाई न हो, पर तब भी शान्ति नहीं रहती क्योंकि तब संघर्ष और युद्ध की तैयारी भीतर ही भीतर चलती रहती है।" साम्राज्यवाद-विरोधी तथा युद्धविरोधी भारत की इस नीति का प्रचलन बहुत पहले ही हो चुका था। इसका कारण भी था। शान्ति, सत्य और अहिंसा ही हमारे स्वातंत्र्य युद्ध के अस्त्र थे। अतः बाह्य और आन्तरिक मामलों में पृथक्-पृथक् विचार कर हम दुरंगी नीति नहीं अपना सकते थे। भारत की इस नीति में स्वतंत्रता के पश्चात् भी परिवर्तन नहीं हुआ।

यह एक सर्वविदित सत्य है कि जब डच गवर्नमेंट इन्डोनेशिया पर फिर से अपनी अधिकार-सत्ता स्थापित करना चाहती थी, पं० नेहरू ने इन्डोनेशिया के निवासियों का पक्ष लेकर इसका पूर्ण विरोध किया तथा उस असहाय प्रदेश के पक्ष में समस्त राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसी प्रश्न को हल करने के लिए उन्होंने दिल्ली में परराष्ट्र मंत्रियों की एक कान्फ्रेन्स भी बुलाई थी। पं० नेहरू के प्रयत्न स्वरूप डच सरकार पर अपने इस साम्राज्यवादी विचार को त्याग देने के लिए दबाव डाला गया; फलस्वरूप इन्डोनेशिया की स्वतंत्रता कायम रही। इन प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप इन्डोनेशिया हमें विश्वासी मित्र

के रूप में देखता है। वहाँ के राष्ट्रपति ने भारतीय जनतंत्र के समारम्भ के शुभ अवसर पर भारत में पदार्पण भी किया था।

भारत की यह नीति सिर्फ इन्डोनेशिया तक ही सीमित न रही, वह एशिया में स्थित अन्य साम्राज्यवादी उपनिवेशों को भी स्वतंत्रता के स्वच्छ वायु में विचरण करते देखना चाहता है। पं० नेहरू ने समय-समय पर अपने भाषणों में इसकी ओर संकेत भी किया है, "भारत एशियाई उपनिवेशों को परतंत्रता के क्रूर बंधन से मुक्त राष्ट्रीयता के विशुद्ध वातावरण में विकसित होते देखना चाहता है। वह इन देशों की जनता का शोषण और उत्पीडन बर्दाश्त नहीं कर सकता।" "एशिया में विदेशी राष्ट्रों की औपनिवेशिक सत्ता समाप्त होनी चाहिए और वह समाप्त होकर ही रहेगी।" सचमुच अपने जन्मसिद्ध अधिकार स्वतन्त्रता के लिए अग्रसर वीर सेनानियों को साम्राज्यवादी घृणित भौतिक ताकत कब तक पद दलित कर सकती है! भारत ने अपनी इस उपनिवेशवाद-विरोधी, शान्तिप्रिय नीति का प्रतिपालन विश्व के अन्य दलित प्रदेशों के पक्ष में भी किया।

प्रधान मंत्री पं० नेहरू ने ट्यूनीशिया के प्रति भी, जो फ्रेन्च गवर्नमेंट के क्रूर हाथों से स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील था, प्रत्यक्ष रूप से खुल कर अपनी इस नीति का सम्पादन करते हुए सहानुभूति प्रकट की। अखिल भारतीय कॉंग्रेस महासभा ने परतंत्र ट्यूनीशिया के पक्ष में स्पष्टतः समवेदना प्रकट करते हुए एक प्रस्ताव भी पास किया था। अतः भारत आज भी दलित देशों के प्रश्न को अपनी नीति में प्रश्रय दे रहा है, तथा उनकी शोषित शापित जनता की स्वार्थ-रक्षा का प्रयत्न कर रहा है।

जब कि ईरान की सरकार ने अपने तेल के उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण करने के उद्देश्य से कानून बनाये, (जो बृटेन के स्वार्थ पर आघात करते थे) भारत ने उनके इस कार्य के साथ बृटेन से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध होते हुए भी सहानुभूति प्रकट की। यद्यपि भारत ने डा० मुसद्दिक की

अतिरेकता पूर्ण नीति को पसन्द नहीं किया और उन्हें अपने देश में धीरे-धीरे वैधानिक रूप से सुधार करने की सलाह देता रहा; फिर भी उसने ईरान की इस समस्या के प्रति समवेदना की नीति अपनायी तथा अंग्रेजों के उठे गलत कदम की तीव्र भर्त्सना की।

यही नीति मिश्र की समस्या के साथ भी कार्यान्वित की गई। भारत ने मिश्र देश की जनता की, बृटेन से अपने सैनिकों को वहां की भूमि से हटा लेने की, मॉग को वैध बतलाया। हम इस बात में विश्वास करते हैं कि हर एक राष्ट्र को अपनी आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने का स्वयं अधिकार होना चाहिए, तथा उस देश की अनुमति के बिना किसी भी विदेशी शक्ति को उसमे हस्तक्षेप करने का बिल्कुल अधिकार नहीं होना चाहिए। इन्ही सिद्धान्तों के प्रतिपादन-स्वरूप आज पं० नेहरू पंचशील नीति को शान्ति का विधायक बतला अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में स्थान दिलाना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि हमने उन सभी राष्ट्रों की नैतिक सहायता की तथा उनके संघर्ष के प्रति क्रियात्मक समवेदना प्रकट की जो अपने साम्राज्यवादी स्वामियो से अपने जन्मसिद्ध अधिकार—स्वतन्त्रता प्राप्ति—अथवा अपनी गृहनीति में सबल राष्ट्रों के बलात् हस्तक्षेप से त्राण पाने की दिशा में उन्मुख थे। इस दिशा में कदम उठा कर हमने विश्व-शान्ति के पथ पर स्थित कंटकों को दूर करने का प्रयत्न किया।

भारत की वैदेशिक नीति जातिगत विभेदों (Racial discrimination) की विरोधी है। जब हम अमेरिका की उन्नति की प्रशंसा करते हैं, तब वहाँ हब्शियों के साथ किये जाने वाले बर्ताव को अन्याय पूर्ण कहते भी नहीं हिचकिचाते। भारत मानवीय अधिकारों के प्रस्ताव-पत्र (Charter of Human Rights) का सबसे बड़ा समर्थक है। हमारी सरकार ने दक्षिणी अफ्रिका में डा० मलान की सरकार द्वारा जातिगत विभिन्नता के नाम पर किये गये अत्याचारों का खुलकर विरोध किया। भारत ने दक्षिणी अफ्रिका में जातीय पृथक्करण के कानून के

विरोध में संघर्ष करते हुए भारतीयों के प्रति समवेदना प्रकट की। भारतीय स्वतन्त्रता दिवस (सन् १९५२) के अवसर पर भारतीयों के समक्ष भाषण देते हुए पं० नेहरू ने कहा था कि विश्व में शांति स्थापना तब तक सम्भव नहीं हो सकती जब तक डा० मलान अपनी इस निरंकुश और अत्याचारपूर्ण नीति का त्याग नहीं करते। सिर्फ अफ्रिका में ही नहीं, जातिगत विभेदों के नाम पर विश्व के जिस किसी हिस्से में असहाय अल्पसंख्यकों पर अत्याचार हो रहा है, भारत उनका नैतिक साथ देना अपना कर्तव्य समझता है।

शान्तिप्रिय भारत की परराष्ट्र नीति तटस्थता (Neutrality) की भावना से विशेष अनुप्राणित है। आज जब कि सम्पूर्ण संसार दो शक्ति गुट्टों में विभाजित हो गया है तथा छोटे-बड़े प्रत्येक राष्ट्र ने लाल या सफेद गुट्ट से अपना चोली-दामन का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, भारत ने दोनों ही गुट्टों से अलग रहकर विश्व-शान्ति की रक्षा में प्रयत्न-शील रहने का निश्चय किया है। उसने न तो सोवियत गुट्ट में ही अपना नाम लिखाया है और न आंग्ल-अमेरिकन गुट्ट से हो गठबन्धन किया है। वह आपसी घृणा से दग्ध दोनों प्रतिद्वन्द्वियों की 'स्वार्थपूर्ण नीति से अलग रहना चाहता है। किन्तु, इसके बावजूद भी वह दोनों दलों से अपनी नीति के अनुसार मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने में सफल हुआ है। अमेरिका की प्रतिनिधि सभा में वक्तव्य देते हुए पं० नेहरू ने स्वयं स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है, "आज विश्व दो शक्ति-गुट्टों में विभाजित है, एक आंग्ल-अमेरिकन गुट्ट तथा दूसरा सोवियत रूस का गुट्ट। पर भारत इसमें से किसी 'दल' से अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहता। वह भ्रातृत्व चाहता है, मैत्री चाहता है, और चाहता है मानव-समाज की स्वतन्त्रता।"

नेहरू-सरकार की तटस्थता की नीति की सिर्फ विरोधी दल के नेताओं द्वारा ही नहीं अपितु अन्य राष्ट्रों द्वारा भी तीव्र आलोचना हुई, जो उसे दलों के गन्दे दलदल में फँसा देखना चाहते थे। एक ओर तो वे हमारी

वैदेशिक नीति पर 'मूर्खतापूर्ण पलायनवादी नीति' कहकर कटूक्ति कसते थे तथा दूसरी ओर उसे अतल के गर्त के मुख पर आँख बन्द कर बैठने की नीति बतलाते थे। परिवर्तन के विरोधी कट्टर पंथी राजनीतिज्ञों को यह समझ में ही नहीं आ रहा था कि मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में दोनों दलों से बचकर नवोदित अशक्त भारत अपने अलग व्यक्तित्व के स्थापन में कैसे सफल होगा। भारत के किसी भी गुट्ट में सम्मिलित होने से इनकार करने पर दोनों ही दल उसकी ओर सशंक दृष्टि से देखते थे। दोनों ही गुट्ट की यह धारणा थी कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से उसने किसी भी दल से अपना हाथ नहीं मिलाया है फिर भी परोक्ष रूप से किसी न किसी गुट्ट से उसका अवश्य सबंध है। जिस प्रकार पीलिया के रोगी को सभी चीजें पीली ही दिखाई पड़ती हैं, उसी प्रकार घृणा और प्रतिहिंसा की गर्हित भावना में परिप्लावित ये शक्तिगुट्ट इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि उनके द्वारा उत्पन्न इस वातावरण से बच कर कोई राष्ट्र अपनी आदर्शमय शांतिपूर्ण सिद्धांतों की दुनिया अलग भी बसा सकता है, तथा सच्चे हृदय से उसे मानव कल्याण के लिए हितकर समझ कर उसमें हिस्सा बटाने के लिए अन्य राष्ट्र युद्ध विरोधी राष्ट्रों का आह्वान कर सकता है। दुनिया के उसी विशाक्त वातावरण में पले कुछ राजनीतिज्ञों ने तो भारत की इस नीति को 'राजनीतिक अवसरवादिता' तक कह कर सम्बोधित किया था। उनके अनुसार वह तटस्थ होकर राजनीतिक शतरंजी चालों से लाभ उठाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। इन सब गलत धारणाओं तथा शंकाओं का परिणाम यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपने मित्र बनाने तथा उनमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कर उन पर अपना पूर्ण प्रभाव डालने में कुछ समय तक भारत असमर्थ रहा। किन्तु असत्य का आवरण अधिक समय तक नहीं रह सकता। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत का मानव कल्याण, न्याय तथा शान्ति की रक्षा के लिए निस्वार्थ प्रयत्न ने उसकी तटस्थ नीति की सार्थकता को स्थापित

कर दिया। आज दोनों ही गुट्ट उसे मन, वचन, तथा कर्म से तटस्थ समझ उस पर विश्वास कर रहे हैं।

तटस्थता की नीति के फलस्वरूप आज से कुछ ही वर्षों पूर्व, अपने प्रति सशंक राष्ट्रों के सहयोगाभाव में भारत कुछ समय तक अन्तर्राष्ट्रीय जगत में तथा सयुक्त राष्ट्र संघ मे एक दम अकेला दिखलाई पड़ता था। भारत की इस घोषणा को, कि वह हर एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या को निष्पक्ष हो उसकी उपादेयता तथा न्याय की दृष्टि से देखेगा, संदिग्ध तथा असम्मति सूचक दृष्टि से देखा गया। यह पूर्णत: ज्ञात है कि जब फिलस्तीन का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के विचाराधीन था, भारत ने समस्या सुलझाने के लिए स्वतंत्र इकाइयों से बने हुए संघीय शासन स्थापन करने की राय दी थी, किन्तु अभाग्यवश भारत की इस राय को न तो अरबों ने ही और न यहूदियों ने ही माना। इसका दुष्परिणाम हुआ उस देश में भयंकर रक्त पात, अपार आर्थिक हानि और विभाजन, तथा दोनों ही हिस्सो को कमजोर बनाते हुए इसराइल नामक एक नये छोटे से देश की व्युत्पत्ति।

भारत अपने अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थ की रक्षा करते हुए सबल राष्ट्रों के विरोध के पश्चात् भी हमेशा निर्भयता पूर्वक न्याय पूर्ण कदम उठाने के लिए तत्पर रहता है। जब उत्तरी कोरिया ने दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण किया तब पं० नेहरू ने रूस और चीन की अप्रसन्नता के भाजक होते हुए भी सुरक्षा-परिषद् मे दोषी राष्ट्र के विरुद्ध उपस्थित प्रस्ताव का समर्थन किया। इसी प्रकार एशियाई राष्ट्रों पर प्रतिरक्षा संगठन के रूप मे बलात् लादी जाने वाली मनीला-संधि का, अमेरिका के विपरीत हो जाने का भय होते हुए भी, पं० नेहरू ने विरोध किया। इस सुप्रयत्न के दंड स्वरूप भारत को जेनेवा-सम्मेलन की सदस्यता से वंचित भी होना पडा था। इसके पूर्व भारत ने अमेरिका के इशारे पर प्रतिपादित प्रशान्त क्षेत्रीय राष्ट्रों के संगठन को भी पूर्णतः अस्वीकार कर दिया था। अतः हम यह कह सकते हैं कि भारत की नीति न तो अवसरवादी ही है और न पलायनवादी

ही। उसकी तटस्थता न तो निस्सार है न तत्वहीन ही, अपितु सक्रिय है। उसके कथन और कर्म मे भेद नहीं होता। उसकी नीति असंदिग्ध है। आज विश्व के समस्त राष्ट्र इस सत्य को मानने के लिए वाध्य हुए। यही कारण है कि आज भारतीय प्रतिनिधियों को शान्ति तथा न्याय का अग्रदूत मानते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ मे भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। भारत की इसी निष्पक्षता से प्रभावित चीन तथा अमेरिका दोनों ने ही उसे कोरिया-युद्ध-बन्दी प्रत्यार्पण आयोग का अध्यक्ष बनाना स्वीकार किया। यही कारण है कि आज से पूर्व सदेह की दृष्टि से देखने वाले दोनों गुट्टों के नायक अमेरिका, रूस, चीन के सत्ताधारियों द्वारा भारत की वैदेशिक नीति के प्रणेता पं० नेहरू ने सादर निमन्त्रित होकर जब उन देशो में पदार्पण किया तो अपार जनता ने शान्ति के रक्षक के रूप में उनकी वन्दना की। यह सम्मान पं० नेहरू का व्यक्तिगत नही अपितु शाति के प्रतिनिधि महान भारत के प्रधान मंत्री की हैसियत से था।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या भारत अपनी तटस्थता की नीति से आज के इस विडम्बनापूर्ण राजनीतिक युग मे अपने उन आधार-भूत अतर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों की रक्षा कर सकता है जिनके लिए वह कटि-बद्ध है। इसका यही उत्तर है कि आधुनिक जटिल विश्व मे पूर्ण तटस्थता का कोई अर्थ नहीं है। अतः हमारी तटस्थता का सिर्फ इतना ही अर्थ है कि हम उस गुटबन्दी वाली विशाल राजनीति से दूर रहना पसद करेंगे, जिससे भविष्य मे युद्ध की सम्भावना तथा विश्व की शाति भङ्ग होने की आशङ्का हो। भारत के परराष्ट्र मंत्री पं० जवाहरलाल के समय-समय पर दिये गये वक्तव्यों द्वारा इसे पूर्णतः स्पष्ट किया जा सकता है, "हमारी नीति किसी रूढिगत अप्रगतिवादी पद्धति का अनुसरण करना नहीं है; हमारी नीति कार्य की स्वतंत्रता की है। यदि हम यह कहे कि हम पूर्णतः तटस्थ नीति को मानने वाले हैं तो इसका अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ न होगा कि हम हमेशा के लिए जनकार्य से अवकाश ग्रहण

कर रहे हैं, जिसे राष्ट्रीय अर्थ मे हम संन्यास कह सकते हैं। कोई भी राष्ट्र ऐसा नहीं कर मकता, और निश्चित ही हमारी भी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओ से पूर्ण अवकाश ग्रहण करने की कोई इच्छा नहीं है।" "जब मानव की स्वतंत्रता तथा उसकी शान्ति संकटापन्न होगी हम तटस्थ नहीं रह सकते। उस समय तटस्थ रहने का तात्पर्य होगा उन आदर्शों के प्रति विश्वासघात करना जिनका हम समर्थन करते हैं, तथा जिन्हें हम मूर्त रूप मे देखना चाहते हैं।" "भारत की परराष्ट्र नीति शान्ति की खोज पर आधारित है,...यह निश्चयात्मक तथा ओजस्विनी है।" भारत की वैदेशिक नीति में 'तटस्थता' शब्द का तात्पर्य है किसी भी प्रकार के अनैतिक युद्ध से दूर रहते हुए उसे बंद करने का प्रयत्न करना। पूँजीवादी तथा साम्यवादी सत्ता द्वारा उत्पन्न यह युद्ध निष्क्रिय (Cold war) हो अथवा सक्रिय हम इससे दूर रहेंगे। निष्क्रिय संघर्ष कुछ अंशो मे सक्रिय युद्ध से भी बुरा है—बुरा भयङ्कर ध्वंस के अर्थ में नहीं बल्कि इस माने मे कि वह अधिक अपमान पूर्ण है तथा हमेशा के लिए उच्च आदर्शों से गिरा देने वाला है। हम आज के इस निष्क्रिय युद्ध में सम्मिलित नहीं होना चाहते। हमे इससे कोई मतलब नहीं, कि इसमें कौन सही है तथा कौन गलत रास्ते पर है। हम आपसी घृणा के इस प्रदर्शन मे हिस्सा लेने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं; क्योंकि इस तरह से न तो हम मानव मात्र की सेवा ही कर सकते हैं न अपने आदर्शों द्वारा संजोई शान्ति की रक्षा ही।

कुछ आलोचको ने पं० नेहरू की वैदेशिक नीति को उनकी 'अधिनायक वादी सनक की प्रतिच्छाया जो मन की मौज के साथ बदलती रहती है,' कहकर भी सम्बोधित किया है। परन्तु ऐसा कहना भारतीय स्वतंत्रता-सग्राम, कांग्रेस की पूर्व नीति तथा उसके प्रस्तावों, तथा भारतीय नेताओं द्वारा समय-समय पर दिये गये वक्तव्यों से अनभिज्ञता प्रकट करना है। स्वतंत्र भारत की वैदेशिक नीति के आधार तत्त्व किसी एक व्यक्ति के 'पागलपन की उपज' नहीं, अपितु कांग्रेस के महान अध्यव-

साथी गत नेताओं के हृदय के खून से सने आदर्शमय विचार हैं, जिन्हें पं० नेहरू ने अपनी वैदेशिक नीति के रूप मे पुनर्जीवन दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भी भारत के बृटिश राष्ट्रमंडल मे रहने के निश्चय ने, तथा अमेरिकन आर्थिक सहायता ने, अनेक राष्ट्रो को यह धारणा बनाने का अवसर दिया कि वह ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट के प्रभाव से अछूता नहीं है, किन्तु यह आरोप भी आधारहीन तथा तथ्य रहित है। कुछ आर्थिक तथा राजनीतिक स्वार्थ वश यदि भारत उक्त राष्ट्रों से अपना सम्बन्ध बनाये रखता है तो इसका यह कदापि अर्थ नहीं है कि उसने उनके हाथ अपने सिद्धान्तों को बेच दिया है और वह उनकी नीति का दास है। जहाँ हमारे सिद्धान्तों—न्याय, शान्ति, स्वतंत्रता—का सवाल होगा हम स्वतंत्रता का बन्धन तोड़कर भी सत्य का साथ देंगे।

यह कहना मूर्खतापूर्ण होगा कि हमारी विश्व के हरएक राष्ट्र से समान मित्रता है; यह प्रत्यक्ष रूप से असाध्य है। भूगोल, वाणिज्य, आर्थिक विचार, सास्कृतिक सम्बन्ध आदि अनेकों ऐसे सूत्र हैं, जो भारत को अन्य देशों की अपेक्षा कुछ राष्ट्रों से विशेष सम्पर्क स्थापित करने के लिए बाध्य करते हैं। उदाहरणतः उसका अन्य दूरस्थ राष्ट्रों की अपेक्षा एशिया के राष्ट्रों से अधिक घनिष्ठ सम्पर्क होना स्वाभाविक ही है। उसी प्रकार औद्योगिक, आर्थिक तथा वैज्ञानिक सहायता के लिए उसका अमेरिका अथवा इंगलैण्ड का मुखापेक्षी हो उन पर निर्भर रहना स्वाभाविक ही है। आज अमेरिका के अतिरिक्त कोई भी ऐसा भौतिक रूप में सम्पन्न देश नहीं है, जो भारत को उसकी सर्वतोमुखी उन्नति के लिए वैज्ञानिक यन्त्रों, विशेषज्ञों तथा पूंजी आदि अन्य साधनों से पूर्णतः मदद कर सके। इसके अतिरिक्त भारत का सुरक्षा-विभाग (Defence service) बृटिश नमूने पर ही बना है; अतः सुरक्षा के सामानों के लिए उसे बहुत कुछ बृटेन पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भारत और बृटेन दोनों में ही पार्लियामेंटरी-शासन पद्धति है, जिससे दोनो राष्ट्र एक दूसरे के और भा नजदीक आ जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भारत की

यह नीति अपने हितों तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रख-कर निर्मित की गयी है। इस सम्बन्ध का यह कदापि तात्पर्य नहीं हो सकता कि वह नैतिक रूप से भी इनकी कूटनीति से संचालित होता है। भारत की वैदेशिक नीति न तो परमुखापेक्षी है न कोरी आदर्शवाद ही, अपितु वह व्यवहारिक तथा यथार्थतापूर्ण है।

पं० नेहरू ने अपने भाषणों में समय-समय पर इस असत्य आरोप का, कि भारत की वैदेशिक नीति किसी रूप में ऐंग्लो-अमेरिकन नीति से प्रभावित है, उत्तर देते रहे हैं। गत ८ वर्षों से बृटेन तथा अमेरिका से भारत के सहयोग का यह कदापि अर्थ नहीं है कि भारत की वैदेशिक नीति इन देशों के अधीनस्थ है। यदि ऐसा होता तो भारत एक ऐसी नीति का प्रतिपादन कभी न करता जिसे ऐंग्लो-अमेरिकन गुट्ट पूर्णतः नापसन्द करते हैं। यह सर्वविदित है कि विश्व में भारत ही वह सर्व प्रथम सरकार थी जिसने लाल चीन की सरकार को, अमेरिका का विपरीत दृष्टिकोण होते हुए भी, मान्यता प्रदान की। ग्रेटबृटेन ने भी भारत-सरकार का पदानुसरण कर पेकिंग-सरकार को मान्यता प्रदान कर दी। किन्तु अमेरिकन सरकार ने चीन की इस नयी जनतंत्री सरकार को आज तक मान्यता न दी यद्यपि भारत ने उसे राह पर लाने का कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ा। अमेरिका के ही दुष्प्रयत्न से ६० करोड़ जनता की प्रतिनिधि लाल चीन की सरकार को उसके अधिकार से वंचित कर, संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्यायपूर्ण ढंग से सिर्फ कुछ लाख जनता का ही प्रतिनिधित्व करने वाली फारमोसा-स्थित च्यांग-काई शेक की सरकार को सुरक्षा-परिषद् में स्थान दिया। भारत ने इस नीति का खुलकर विरोध किया। पं० नेहरू ने इस विषय पर विचार करते हुए कहा है, "सार्वभौमिकता के जिस सिद्धान्त को लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ का उदय हुआ था उससे वह अलग हट गया है।......यह उसी प्रवृत्ति का परिचायक है जिससे 'लीग आफ नेशन्स' का पतन हुआ।"

इसी प्रकार भारत ने वियतनाम की बाओदाई सरकार को जो साम्राज्यवादी सरकारों की कठपुतली थी, मान्यता प्रदान नहीं की जबकि-अन्य यूरोपीय देशों ने सिर्फ उसे मान्यता ही नही प्रदान की अपितु उसकी सब प्रकार से सहायता भी की।

यही नहीं जब चीन के एक अंग फारमोसा का प्रश्न बुद्धिजीवी दुनिया के विचाराधीन था, तथा अमेरिका बलात् लाल चीन के जनराज्य को उस प्रदेश के जन्मसिद्ध स्वत्व से वंचित रखना चाहता था, भारत ने उसकी इस नीति के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों, तथा उसकी निष्पक्ष नीति को देखकर चीनी अधिनायकों ने पं० नेहरू को चीन में पदार्पण करने को साग्रह आमंत्रित किया। पं० नेहरू इस निमंत्रण को स्वीकार कर वहाँ गये भी। वहीं उन्होंने चीनी प्रधान मंत्री के साथ एक सयुक्त घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर भी किया, जो उनके पंचशील के सिद्धान्त को मान्यता देता था। ये सिद्धान्त हैं:—

(१) एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का पारस्परिक सम्मान।

(२) अनाक्रमण।

(३) आर्थिक, राजनीतिक और विचारधारा सम्बंधी किसी भी कारण से एक दूसरे के आन्तरिक मामलो में अहस्तक्षेप।

(४) समानता और पारस्परिक लाभ का अनुल्लघन।

(५) शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व।

आज हमारा चीनी-सरकार के साथ मित्रतापूर्ण सम्बंध है। आज रूस भी हमारी मित्रता का इच्छुक है। १९५५ मे पं० नेहरू की रूस-यात्रा के अन्तिम समय सोवियत-सरकार ने भी इन सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान कर दी। आज विश्व के अनेक शान्तिप्रिय राष्ट्र इन सिद्धान्तों के अनुसार अपनी नीति सञ्चालित करने के लिए तत्पर हैं। भारत के इस पदक्षेप की अमेरिका में अत्यधिक आलोचना हुई। कुछ व्यक्तियों ने तो अमेरिकन 'काग्रेस' में यहाँ तक प्रस्ताव उपस्थित किया कि भारत को दी

जाने वाली अमेरिकन आर्थिक सहायता बंद कर दी जाये। यदि पं० नेहरू की वैदेशिक नीति वाशिंगटन की सरकार के दबाव के अन्तर्गत होती तो वह कदापि ऐसा करने का साहस न करती।

भारत विश्व की सभी समस्याओं में अपनी टाँग नहीं अड़ाना चाहता, यद्यपि वह जानते हुए भी आँख बन्द कर शान्ति के विरुद्ध कुचक्र की मक्खी निगलने के लिए भी तत्पर नहीं है। वास्तव में इस सत्य को कोई भी इन्कार नहीं करेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं तथा अन्य देशों की समस्याओं में महत्वाकांक्षा वश होकर अधिक सिर डालना हमारे अपने राष्ट्रीय हित को संकट में डाल सकता है। दूसरों पर स्थाई प्रभाव डालने से पहले यह आवश्यक है कि हम अपने घर को सम्पन्न तथा सुव्यवस्थित करें, और जब हमारा घर, हमारा अपना देश—महान भारत—आर्थिक औद्योगिक तथा सैनिक ढंग से पूर्ण सशक्त हो जायेगा, तब वह विश्व को आवश्यक अवसरों पर बिना प्रयास प्रभावित करने में तथा उसे शान्ति का सही रास्ता दिखलाने में समर्थ हो पायेगा। भारत की यह बिल्कुल आकांक्षा नहीं है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में अवांछित रूप से हस्तक्षेप कर प्रधान 'रोल' अदा करे। यहाँ तक कि भारत द्वारा एशिया के नेतृत्व की बात भी भ्रमपूर्ण है। अधिक से अधिक एशिया के राष्ट्रों के सम्बन्ध में कार्य करने की उसकी जो इच्छा है, वह है अपने भरसक शोषण और दासता के विरुद्ध उनके संघर्ष में मित्रवत् उसकी मदद करना। हाँ, इसमें शक नहीं कि वह सत्य की नैतिक सहायता करने से कभी विमुख न होगा।

अन्त में यह प्रश्न उठ सकता है कि भारत की वैदेशिक नीति अपने कार्यक्षेत्र में अब तक सफल रही अथवा असफल। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में भारत की वैदेशिक नीति, एक विशेष रूढ़िगत पद्धति से परिचित विश्व के राजनीतिज्ञों को एक अजीब-सी घुली-मिली अव्यवहारिक काल्पनिक आदर्शवाद (Utopian) से प्रेरित लगी; और वह सिर्फ भारत के विरोधी दल के नेताओं द्वारा ही नहीं बहिष्कृत हुई,

बल्कि विश्व के अन्य तथाकथित राजनीतिज्ञों ने भी उसकी कटु आलोचना की; परन्तु आज शंका तथा अविश्वास का बादल छिन्न-भिन्न हो चुका है, आज इस विषय में दो मत नहीं हो सकते कि भारत की वैदेशिक नीति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की कसौटी पर पूर्णतः खरी उतरी है। सभी यह मानने के लिए तत्पर है कि भारत ने विश्व-शान्ति तथा मानव-कल्याण का अग्रदूत बनकर उसकी रक्षा करते हुए आज के विषाक्त धूमिल वातावरण मे उसे पुनरुज्जीवित करना चाहता है। भारत ने हमेशा अपनी नीति के अनुसार दो राष्ट्रों को विश्व-शाति भंग करते हुए युद्धरत होने से बचाने का प्रयत्न किया है। आज उसके अभिप्राय और उद्देश्य को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखने का अनुचित साहस नहीं किया जा सकता। उसकी निष्कपटता प्रत्यक्ष और खुली हुई है। विश्व के हर कोने में उसके मित्र हैं। अमेरिका और सोवियत रूस दोनों ही उस पर विश्वास रखते हैं।

किसी भी विषय अथवा नीति को उसकी उपादेयता की दृष्टि से न देखकर वाद विशेष के रंगीन चश्मे से देखने वाले, दल के गन्दे दलदल में फँसे तथा मूल्याकन की रूढ़िगत तुला को देश, जाति तथा काल की सीमा को भूलकर काम में लाने वाले तथाकथित राजनीतिज्ञों के उत्तर में हम कह सकते हैं; वर्तमान भारतीय वैदेशिक नीति मे चाहे कितनी भी त्रुटियाँ क्यों न हों वह असामयिक तथा राष्ट्र के लिए अहितकर कदापि नहीं है। भारत की वर्तमान आर्थिक, राजनीतिक तथा सैनिक अल्प सम्पन्नता को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इससे उत्तम वैदेशिक नीति देश के हित को ध्यान में रखते हुए दूसरी नहीं हो सकती। आज न तो हममें इतनी शक्ति है, और न भविष्य में स्वहित-रक्षा को छोडकर हमारी कभी यह इच्छा ही रहेगी कि हम दूसरों को जबर्दस्ती अपनी बात मानने के लिए बाध्य करें। अतः यदि इस नीति में त्रुटियाँ हैं तो भी हमें इसी नीति को, जो आज सबसे अधिक सुरक्षित है तथा जो हमारे आदर्शों द्वारा सिञ्चित हुई है, अपनाने

के अतिरिक्त कोई दूसरा चारा नहीं है। अतः प्रेसिडेन्ट ट्रूमन के उन ऐतिहासिक शब्दों को जो उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ के आलोचकों को उत्तर देते हुए कहा था, नेहरू सरकार की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में भी प्रेषित करना अनुपयुक्त न होगा, "चार्टर अपूर्ण हो सकता है, पर हमारे समक्ष कोई दूसरा रास्ता नहीं।" अन्त में पं० नेहरू की वैदेशिक नीति को पूर्णतः न्याय संगत कहकर उसका समर्थन किया जा सकता है।

यंत्रणा के कान्तार-पथ तथा विकट कूटनीति के गह्वर अन्तराल को चीर कर प्रकट हुई सन्तोष की प्रातः किरण में, आज हम यह आशा करते हैं कि महान भारत पं० नेहरू के उस विराट व्यक्तित्व तथा नेतृत्व से संचालित होकर, जो नई कल्पना, नये आदर्श तथा रचनात्मक एकता से विभूषित है; अपने स्वतंत्र दृष्टिकोण को जीवित रखकर, सभी कठिनाइयों को पार करता हुआ अपने लक्षित आदर्शों को प्राप्त करेगा, और एक बार फिर अपने प्राचीन गौरव को पुनरुज्जीवित कर विश्व का पथ प्रदर्शित करते हुए वसुधैव कुटुम्बकम् का चिर प्राचीन पाठ पढ़ायेगा।